



# Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC  
(CGPA 2.93)

Borisaniya, Niruben H., 2011, “*स्वामी प्राणनाथ और संत कबीर के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन*”, thesis PhD, Saurashtra University

<http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/680>

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service  
<http://etheses.saurashtrauniversity.edu>  
repository@sauuni.ernet.in

# स्वामी प्राणनाथ और संत कबीर के साहित्य में विचार तत्त्वों का तुलनात्मक अध्ययन

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी)

उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

प्रस्तुतकर्त्री

बोरिसाणिया निरूबहन एच.

निर्देशिका

डॉ. सुधाबहन सी. पौराणा

अध्यापिका हिन्दी विभाग

मातृश्री वीरबाई महिला कॉलेज,

राजकोट

सौराष्ट्र युनिवर्सिटी,

राजकोट-३६० ००५

वर्ष - २०११

## प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि बोरिसाणिया निरूबहन एच.ने सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट की पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए मेरे निरीक्षण और निर्देशन में **"स्वामी प्राणनाथ और संत कबीर के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन"** शीर्षक शोध-प्रबंध तैयार किया है। इस शोध-प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथाशक्ति अध्ययन-अनुशीलन एवं शोधपरक विश्लेषण-विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है – साथ ही, यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई अंश अब तक न तो प्रकाशित हुआ है और जहाँ तक मैं जानती हूँ वहाँ तक न ही इसका कहीं कोई उपयोग हुआ है।

मार्गदर्शिका

राजकोट

दिनांक :     /१०/२०११

**डॉ. सुधाबहन सी. पौराणा**

अध्यापिका हिन्दी विभाग  
मातृश्री वीरबाई महिला कॉलेज,  
राजकोट



1 **प्रथम अध्याय**

आलोच्य सन्त कवि स्वामी प्राणनाथ एवं कबीरजी का जीवनवृत्त और युगीन परिस्थितियाँ

2 **द्वितीय अध्याय :**

सन्त कवियों का संप्रदाय और साहित्य का संक्षिप्त परिचय ।

3. **तृतीय अध्याय:**

स्वामी प्राणनाथ रचित तारतमसागर और कबीर पदों का परिचयात्मक अध्ययन

4 **चतुर्थ अध्याय:**

आलोच्य संत कवियों के काव्य में वैचारिक विविधता ।

5 **पंचम अध्याय :**

आलोच्य संत कवियों के काव्यो में धर्मदर्शन, जीवनादर्श, और युगसंदेश ।

6 **षष्ठ अध्याय - उपसंहार :**

आलोच्य संत कवियों के जीवन की उपलब्धियाँ और सीमाएँ ।

## प्राक्कथन

### भूमिका:

आज भारतीय जनजीवन राजनैतिक अस्थिरता, सामाजिक जड़ता और आध्यात्मिक विचारों की अपरिपक्वता के कारण छोटे-छोटे फिरकों में बँट गया है। समाज-जीवन छल-कपट, राग-द्वेष, पाखण्ड एवं शोषण के विकराल पंजे में फँसकर नैतिकताविहीन और खोखला होता जा रहा है। राजनीति के नेता भी आगे-पीछे शोषक-शोषित और धर्म-सापेक्ष एवं धर्म-निरपेक्ष आदि लुभावनेनारे और आरक्षण के भैरवी नाद सुनाकर अपनी कुर्सी के चक्कर में समाज की एकता को नष्ट करने में लगे हुए हैं। तब आगसे सुलझते हुए जनजीवन पर सन्तों की वाणी शान्ति और क्षमता की जलधारा का काम करेगी।

सन्तों का जीवन आदर्श की ऊँचाईयों को स्पर्श करता हुआ भी वास्तविक जनजीवन से जुड़ा हुआ रहा है और ऐसे जोड़नेवाला सेतु आत्मानुभव है। यह आत्मानुभव ही समाज को तोड़नेवाली शक्तियाँ, अंध-विश्वास, पाखण्ड और भ्रष्टाचार को नष्ट कर समाज की पुनःरचना का मार्ग प्रशस्त करता है। आज के मन्दिर-मस्जिद के झगड़ों को दूर करने में उच्च न्यायालय के समाधान की अपेक्षा सन्तों के विचार अधिक सहायक होंगे।

मध्यकालीन भारतमें कबीरवाणी विषाद और किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में पड़े हुए समाज को आशा-उल्लास और आनंद से भर देती है। कबीर की वाणी आज भी दैनिक-जीवन के प्रकार के कृत्यों को सम्पादित करने के लिए मंत्ररूप में प्रयुक्त होती है। कबीरजी की वाणी में स्थित दया, करुणा, सदाचार, सन्तोष, क्षमा, सहिष्णुता, मैत्री-सेवा और सरलता जैसे नैतिक गुण पहले की अपेक्षा आज कहीं अधिक प्रासंगिक हैं।

स्वामी प्राणनाथजी की वाणी में देशकी एकता और अखण्डता को कायम् करने का स्वर है। देश की एकता को बनाये रखने के लिए राष्ट्रभाषा का सुंदर विचार है और देशप्रेम

की भावना है। ऊँच-नीच और जाति-भेद विहीन समाज की सुंदर कल्पना है और परमात्मा एवं विविध धर्मों में स्थित साम्य बतलाते हुए धर्म-समन्वय का संदेश भी छुपा हुआ है। उन्होंने अपनी वाणी में बंधुत्व की भावना को दोहराते हुए विश्वधर्म और विश्वशांति का संदेश दिया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के माध्यम से इन संतो के संदेश द्वारा सामाजिक पुनरुत्थान का जो मार्ग प्रशस्त किया गया उसकी जानकारी देने का मैंने नम्र प्रयास किया है।

### **प्रेरणा एवं विषय-चयन :**

निराकार परमात्मा के विश्वासमे विश्वास करना मैंने बचपन से ही अपने माता-पिता के पास से सीखा था । परंतु इन विचारों को विषय की सीमा में इस तरह पिरोना था संजोना, गुरुजी के साथ की गयी चर्चा परामर्श का फल है। सच ही, मेरे गुरुजी के आशीर्वाद का मीठा फल है, यह प्रेरणा इन्हीं की है।

मेरी रुचि के अनुसार ही डो. सुधाबहन पौराण।ने मुझे 'स्वामी प्राणनाथजी और कबीरजी के साहित्य में विचारों का तुलनात्मक अध्ययन' पर कार्य करने का सुझाव दिया। यह विषय बहुत ही अनुकूल हुआ और मैंने इसी विषय को लेकर अध्ययन यात्रा शुरू की।

### **सामग्री संकलन:**

साग्रगी संकलन का सुझाव सर्व प्रथम डो.सुधाबहनने ही दिया था । जिसे मैं अपनी माता के समान समझती हूँ । मेरे शोधकार्य की सीमा स्वामी प्राणनाथ एवं कबीरजी के साहित्य में स्थित उनके उच्च जीवन, विचार, आदर्श, सिद्धांत और संदेश पर प्रकाश देना है। अतः उन दोनों सन्त कवियों का संपूर्ण साहित्य मेरी सामग्री की सीमा मे रहा है। इन दोनों सन्त कवियों के सारे ग्रन्थ एवं वाणी तथा अन्य संदर्भग्रन्थ मेरी साहित्य सामग्री रही है।

स्वामी प्राणनाथजी का कुलजमस्वरूप साहब तो आसानी से उपलब्ध हो गया था और कबीरजी का साहित्य भी जगविख्यात है। इसलिए मेरे लिए यह कार्य करना मुश्किल नहीं था। स्वामी प्राणनाथजी का साहित्य जामनगर के खीजड़ा मंदिर से थोड़ा बहोत प्राप्त

हुआ और अन्य साहित्य सौराष्ट्र विश्वविद्यालय ग्रन्थालयों से प्राप्त हुआ। कबीरजी का साहित्य भी मुझे जामनगर के कबीर आश्रम से प्राप्त हुआ तथा राजकोट, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, जेतपुर बोसमीया आर्ट्स एन्ड कोमर्स कॉलेज, जूनागढ़ बहाउद्दीन कॉलेज तथा अन्य ग्रन्थालयों से प्राप्त हुआ। कभी कभी तो मुझे ग्रन्थालय में जाकर वहाँ बैठकर भी लिखना पड़ा है। वह मेरी मर्यादा है।

इसके अलावा सौराष्ट्र युनिवर्सिटी के ऑडिट विभाग के गीरीशभाई भट्ट, डॉ. सुधाबहन पौराणा आदिने भी मेरी मदद की है और विनम्रता से अपने मंतव्य भी प्रस्तुत किये हैं।

### **प्रबंध परिचय:**

प्रस्तुत शोध-प्रबंध छह अध्यायों में विभाजित है।

**प्रथम अध्याय** के अन्तर्गत दोनों आलोच्य संतों के जीवनवृत्त को आलेखित किया गया है। स्वामी प्राणनाथजी के परिवार का गहराई से अभ्यास करके उनको रघुवंशी लोहाणा संत के रूप में स्वीकारा है। कबीरजी के जीवन से सम्बन्धित प्राप्त तथ्यों से कबीरजी को जुलाहा परिवार के रूप में स्थापित किये हैं। तदुपरान्त दोनों सन्तों के व्यक्तित्व की विशाल एवं उदार क्षितिज बतलाने के लिए दोनों सन्तों के उत्तराधिकारी की नियुक्ति पर प्रकाश डाला है। दोनों सन्तों ने उत्तराधिकारी के रूप में अपने समर्थ व्यक्ति को चुना है, अपने पुत्रों को नहीं सारे विश्व को बंधुत्व की भावना से एकसूत्र में पिरोने की उनकी भावनाओं का यह प्रथम सोपान है।

तत्पश्चात् दोनों सन्तों की विचारधार को प्रेरणा देनेवाली परिस्थितियाँ पर भी विचार किया गया है। मध्य युग की राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण देने का प्रयास मैंने यहाँ किया है और संतों के साहित्य पर उनका प्रभाव डालने का भी प्रयत्न किया है। आलोच्य संतों का विचार और कर्तव्य परिस्थितियों के प्रभावानुसार दिखाई देती हुई भिन्नता का सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। दोनों सन्तों के आविर्भाव काल

की विभिन्नता होते हुए भी जो उद्देश्य की समानता दृष्टिगत होती है यह स्पष्ट किया गया है।

**द्वितीय अध्याय** में आलोच्य सन्त कवियों के संप्रदायों का विस्तृत परिचय दिया गया है। इसके उपरान्त आलोच्य सम्प्रदायों को पूर्ववर्ती भक्तिमार्ग के प्रमुख सम्प्रदायों का परिचय देते हुए नास्तिक धर्म से शुद्ध करके निर्गुण सम्प्रदाय तक के साम्प्रदायिक विचारों का आलेखन किया गया है।

प्रणामी संप्रदाय की स्थापना और उनके संस्थापक गुरु देवचन्द्र महाराज का परिचय देते हुए संप्रदाय का विस्तृत परिचय करवाया है। संप्रदाय के प्रचारक एवं प्रसारक के रूप में स्वामी प्राणनाथजी का धर्म अभियान, सिद्धांत एवं साहित्य का भी परिचय दिया गया है। धर्म अभियान के अन्तर्गत स्वामी प्राणनाथजी की यात्राओं का विस्तृत विचार प्रस्तुत किया गया है।

कबीरजी का कोई सम्प्रदाय नहीं था। कबीरजी के पंथ की स्थापना भी उनके अनुयायीयों ने किया है। कबीरजी के धर्म अभियान के अन्तर्गत उनकी यात्राओं का वर्णन किया गया है। संक्षेप में इन दोनों संप्रदाय एवं पंथ का साहित्यिक विचारों का अभ्यास करते हुए वैचारिक साम्य और वैषम्य बताने का प्रयास किया गया है।

**तृतीय अध्याय** में स्वामी प्राणनाथ के तारतमसागर और कबीरजी के पदों एवं साहित्य का विस्तृत परिचय दिया गया है। स्वामी प्राणनाथ के चौदह ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। कबीरजी के पदों, कबीरवाणी, ग्रन्थावली, बीजक, साखी, सबद(शब्द) रमैनी आदि का वर्णन किया गया है। फिर दोनों सन्तों के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

**चतुर्थ अध्याय** में आलोच्य दोनों सन्तों के जीवन की वैचारिक विविधता पर प्रकाश डाला है। जिसमें स्वामी प्राणनाथजी के देश के प्रति विचार, भाषा, जनता, मानवता, अंधश्रद्धा, बाह्याङ्गम्वर आदि के प्रति अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। कबीरजी के सदगुरु के



प्रति विचार, संमति और सेवक के बारे में, सुमिरन के बारे में प्रेम और विरह के बारे में आदि कबीरजी के विचार को प्रस्तुत किया गया है। बादमें दोनों संतो के विचारों की तुलना की है।

**पंचम अध्याय** में आलोच्य संत कवियों के काव्य में निष्पन्न धर्मदर्शन का मैंने परिचय देने का प्रयत्न किया है। दोनों सम्प्रदाय और पंथ में स्थित ब्रह्म, जीव और जगत के प्रति जो विचार एवं मान्यता दृढ़ हुई है । इनका विस्तृत अभ्यास करके इनमें स्थित समानता-असमानता प्रस्तुत की है। आलोच्य सन्त कवियों के जीवनादर्श का अध्ययन करने के बाद उभरी हुई विचारधारा मैंने स्पष्ट की है। दोनों सन्तो के काव्य में जीवनादर्शन-युगसंदेश की तुलना करते हुए दोनों की धार्मिक, सामाजिक और दार्शनिक भावना का तुलनात्मक अध्ययन मैंने प्रस्तुत किया है।

**षष्ठ अध्याय** में आलोच्य संत कवियों के जीवन की काव्य उपलब्धियाँ और सीमाएँ प्रस्तुत की हैं। जिसमें हिन्दु-मुस्लिम एकता, भारतीय समाज के एकीकरण का प्रयास किया है। महामति की उपादेयता, महत्त्व, हिन्दुस्तानी भाषा आदि का वर्णन किया गया है। कबीरजी के द्वारा मूर्ति-पूजा का विरोध, यात्रा करने का विरोध, कबीरजी का स्त्री विषयक दृष्टिकोण तथा आस्थावादी स्वर और मानवतावादी स्वर को प्रस्तुत किया गया है।

### **कृतज्ञताज्ञापन :**

प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पूर्णता तक पहुँचाना और पथ-प्रदर्शन देने के उत्तरदायित्व को निभानेवाले श्रीमती वी.एम.महिला कॉलेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं निर्देशिका गुरुवर पूज्य डॉ. सुधाबहन सी. पौराणा के प्रति मैं श्रद्धा से नत-मस्तक हूँ । उनकी मानवतापूर्ण विनम्रता से मैं प्रभावित हूँ। मैं उनके श्रीचरणों में प्रणाम करती हूँ । श्री गीरीश भाई भट्ट, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, ओडिट विभाग के सदस्य है और वो मेरी शोचयात्रा के अनुपम पाथेय रहे है।

प्रस्तुत शोधकार्य की सामग्री संकलन के लिए जिन ग्रन्थालयों से मुझे सहायता मिली है उनमें श्री मातुश्री वीरबाई महिला कॉलेज के ग्रन्थालय-राजकोट, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय

पुस्तकालय-राजकोट, जूनागढ बहाऊद्दिन आर्ट्स कॉलेज का ग्रन्थालय प्रमुख है। जेतपुर बोसमीया आर्ट्स एन्ड कोमर्स कॉलेज का ग्रन्थालय यदि सभी ग्रन्थालयों के ग्रन्थापालों का भी मैं आभार मानती हूँ।

मेरे इस कार्य में मेरे उपर आशीर्वाद बरसाने वाले मेरे माताजी-पिताजी के प्रति मेरा हृदय श्रद्धा से गद्गद् हो रहा है सचमे मैं ऐसे माता-पिता पाकर धन्य हो गई हूँ। जिन्होंने हर क्षण अपने आशीर्वाद दिये हैं। अपनी बहन पूनम के बारेमे मैं क्या कहूँ जिसने हर बार यह कार्य पूरा करने में मेरा उत्साह बढ़ाया है। जिसके बिना मेरा यह कार्य पूरा नहीं हो सकता था। मेरे भाईयों में राजेश, भावेश, शैलेश जिसने यह कहकर बार-बार उत्साहित किया कि कब तेरा पीएच.डी. पूरा होगा और हमें मिठाई खाने को मिले। इससे मैं बहुत उत्साहित होती थी। राजेश का भोला स्वभाव और मौन भाषा मेरी पढ़ाई में बहुत काम आया। आर्थिक रूपसे मदद करने वाले श्री किशोर दुधात्रा सरने हर कदम पर साथ दिया जिसकी सहायता के बिना शायद मेरा पीएच.डी. अधुरा ही रहता।

अन्तमे मैं उन सभी गुरुजनों, स्नेहीजनों और मित्रों का आभार मानती हूँ, जिन्होंने जाने-अनजाने में भी मेरी सहायता की है।

अंत में प्रस्तुत शोध प्रबंध की रूपरेखा का यंत्रणकार्य सुचारू रूपसे, सुदृढ़ और समयानुसार करने के लिए राजेशभाई सोलंकी और मयूरभाई का आभार मानती हूँ।

विनीता

**बोरिसाणिया निरूबहन एच.**

भूमिका (प्राक्कथन)

१ - ५४

## प्रथम अध्याय

१.१.१ स्वामी प्राणनाथ : जन्म, माता-पिता एवं परिवार

कबीरजी का : जन्म, माता-पिता एवं परिवार

१.१.२ स्वामी प्राणनाथ : बचपन और शिक्षा

संत कबीर : बचपन और शिक्षा

१.१.३ स्वामी प्राणनाथ : विवाह - दाम्पत्यजीवन

कबीर : विवाह - दाम्पत्यजीवन

१.१.४ स्वामी प्राणनाथ : आश्रमजीवन

कबीर : आश्रमजीवन

१.१.५ स्वामी प्राणनाथ : उत्तराधिकारी की नियुक्ति

कबीर : उत्तराधिकारी की नियुक्ति

१.१.६ स्वामी प्राणनाथ : धामगमन

कबीर : मृत्यु

१.१.७ आलोच्य संतो के जीवन संबंधी तथ्यों का तुलनात्मक

अध्ययन-निष्कर्ष

ब. आलोच्य संत कवियों, स्वामी प्राणनाथ और कबीर के जीवन को प्रभावित करनेवाली परिस्थितियाँ :

१.२.१ स्वामी प्राणनाथ कालिन

राजनीतिक परिस्थितियाँ

देशभक्ति परिस्थितियाँ

सामाजिक परिस्थितियाँ

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

धार्मिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, साहित्यिक

१.२.२ कबीर कालीन

राजनीतिक परिस्थितियाँ

देशभक्ति परिस्थितियाँ

सामाजिक परिस्थितियाँ

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

धार्मिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, साहित्यिक

१.२.३ आलोच्य संतों के जीवन को प्रभावित करनेवाली

परिस्थितियों का निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय :

५५-११३

२.१.१ भूमिका

आलोच्य संत कवियों का संप्रदाय और साहित्य

२.१.२ प्रणामी संप्रदाय की स्थापना और

गुरु देवचन्द्र महाराज का परिचय

२.१.३ स्वामी प्राणनाथ का परिचय

२.१.४ प्रणामी संप्रदाय का परिचय

२.१.५ प्रणामी संप्रदाय का धर्म-अभियान

२.१.६ प्रणामी संप्रदाय के सिद्धांत

२.१.७ स्वामी प्राणनाथ के साहित्य का परिचय

२.२.१ कबीर का परिचय

२.२.२ कबीरवाणी

२.२.३ बीजक

२.२.४ कबीर ग्रथावली

२.२.५ रमैनी

२.२.६ शब्द (शब्द)

२.३.१ आलोच्य संतों के संप्रदायों एवं

साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

स्वामी प्राणनाथ रचित तारतमसागर और  
कबीरपदों का परिचयात्मक अध्ययन  
श्री प्राणनाथजी की रचनाएँ

३.१.१ श्री रास ग्रन्थ

३.१.२ श्री प्रकाश ग्रन्थ

३.१.३ श्री षट्प्रीति ग्रन्थ

३.१.४ श्री कलश ग्रन्थ

३.१.४ श्री सनन्ध ग्रन्थ

३.१.६ श्री किरन्तन ग्रन्थ

३.१.७ श्री खुलासा ग्रन्थ

३.१.८ श्री खिलवत ग्रन्थ

३.१.९ श्री परिक्रमा ग्रन्थ

३.१.१० श्री सागर ग्रन्थ

३.१.११ श्री सिंगार ग्रन्थ

३.१.१२ श्री सिन्धी ग्रन्थ

३.१.१३ श्री मारकतसागर

३.१.१४ श्री कयामतनामा

### कबीर के पद

३.२.१ कबीर ग्रन्थावली

३.२.२ कबीर काव्य कौस्तुभ

३.२.३ कबीर

३.२.४ बीजक

३.२.५ शब्द

३.२.६ साखी

३.२.७ रमैनी

३.२.८ कबीरवाणी

- ४.१.१ स्वामी प्राणनाथजी की रचनाओं में भावपक्ष
- ४.१.२ स्वामी प्राणनाथजी का काव्य भाव एवं रस निष्पत्ति  
शान्तरस, भक्तिरस  
शृंगाररस-संयोग शृंगार एवं वियोग शृंगार  
वीररस, अद्भूतरस, बीभत्सरस
- ४.१.३ कबीरजी के पदों में विभिन्न विचार  
कबीरजी के गुरु के प्रति विभिन्ना विचार  
कबीरजी के मित्रों के प्रति विभिन्ना विचार

पंचम अध्याय :

२३० - २९९

आलोच्य संत कवियों के काव्यों में धर्मदर्शन,  
जीवनदर्शन और युगसंदेश

- ५.१.१ धर्मदर्शन  
प्रणामी धर्मदर्शन में ब्रह्म कबीरपंथ के धर्मदर्शन में ब्रह्म
- ५.१.२ प्रणामी धर्मदर्शन में जीव  
कबीर पंथ के धर्मदर्शन में जीव
- ५.१.३ प्रणामी धर्मदर्शन में जगत  
कबीरपंथ के धर्मदर्शन में जगत
- ५.१.४ प्रणामी धर्मदर्शन में माया  
कबीरपंथ के धर्मदर्शन में माया
- ५.१.५ आलोच्य संतो के काव्य में धर्मदर्शन का  
तुलनात्मक अध्ययन ।
- ५.२.१ आलोच्य संतो के जीवनदर्शन
- ५.२.२ आलोच्य संतो का युगसंदेश या उपदेश
- ५.२.३ आलोच्य संतो के जीवनदर्शन या युगसंदेश  
का तुलनात्मक अध्ययन

निष्कर्ष

षष्ठ अध्याय :

३०० – ३२७

उपसंहार

६.१.१ आलोच्य संत कवियों का जीवन और काव्य उपलब्धियाँ

६.१.२ आलोच्य संतो का जीवन और काव्य-सीमाएँ

निष्कर्ष

- परिशिष्ट-१
- परिशिष्ट-२

## प्रथम अध्याय

### प्र.१ (अ) आलोच्य सन्त कवि स्वामी प्राणनाथजी एवं कबीरजी का जीवनवृत्त और युगीन परिस्थितियाँ ।

#### (१) स्वामी प्राणनाथ : -

##### प्रस्तावना :

भारतवर्ष एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। जहाँ विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों, नसलों और भाषाओं का पवित्र संगम देखने को मिलता है। यह समन्वयात्मक संस्कृति भारतवर्ष का प्राण है। यह अनेकता में एकता भारतवर्ष इतिहास का एक विशिष्ट और अनुपम पहलू है। इस समन्वयात्मक संस्कृति की श्रृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी महामति (महान बुद्धि का प्रतिक) प्राणनाथ (१६१८-९४ ई. ) है। लेकिन उनकी इस संस्कृति की देन को इतिहासकार लगातार उपेक्षा करते रहे ।

"बहुत आश्चर्य की बात है कि इतिहासकारोंने जहाँ मध्यकालीन कबीर, नानक, दादू जैसे संत कवियों पर पूरा ध्यान दिया है वहाँ उन्होंने महामति प्राणनाथ पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि महामति के इतिहास को जानने के सारे साधन हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा में है जो देवनागरी लिपि में है।"<sup>१</sup> इसके साथ ही प्रणामी साहित्य साधारण जनता के लिये उपलब्ध नहीं था और वह बाद में उपलब्ध कराया गया।

प्रणामी संप्रदाय में आदर और श्रद्धा के साथ प्राणनाथजी को महामति के नाम से संबोधित किया जाता है।

उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। मध्यकालीन संत कवियों में वे प्रथम धर्मगुरु एवं युगदृष्टा थे। जिन्होंने हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए न केवल कार्य किया बल्कि उनके लिये सारा जीवन लगाया था। इसके अलावा उन्होंने भारतवर्ष में पहलीबार विश्व के सभी धर्मों के समन्वयात्मक दर्शन का रूप प्रस्तुत किया । जिसका व्यावहारिकरूप सर्वधर्म समन्वय है।



जिसके लिये उन्होंने जीवनभर प्रयास किया, उन्होंने इसी आधार पर एक विश्वधर्म की अवधारणा पर विचार किया और भारतवर्ष तथा भारतीय समाज के एकीकरण का प्रयास भी किया था। इस शोध-प्रबंध के अलग अध्यायोमें इसी विषयवस्तु का विस्तार से अध्ययन किया गया है।

### **स्वामी प्राणनाथजी : जन्म, माता-पिता एवं परिवार :**

स्वामी प्राणनाथजी के जीवनवृत्त के अध्ययन के लिए सर्वाधिक विश्वसनीय स्रोत "बीतक साहित्य है।" बीतक साहित्य के अनुसार प्राणनाथजी का जन्म, नवागढ़, नवानगर, जामनगर-सौराष्ट्र में वि.सं.१६७५ की आश्विन कृष्ण चतुर्दशी रविवार के दिन प्रथम पहर को हुआ था।<sup>२</sup>

"लल्लू भट्ट आदि कुछ बीतककारोंने प्राणनाथजी की जन्मतिथि तो यह दी है पर मास भादों दिया है।"<sup>३</sup>

यह अंतर संभवतः विभिन्न तिथियों से मास का प्रारंभ मानने के लिए हुआ है। कुछ पूर्णिमान्त मास मानते हैं और कुछ अमावसान्त मानते हैं। पूर्णिमान्त मास माननेवालों का जब आश्विन मास होगा, उस समय अमावसान्त मास माननेवालों का भादो मास ही रहेगा। इसीलिए लालदास आदि बीतककारों ने प्राणनाथजी का जन्म आश्विन में माना है और लल्लूजी आदि ने भादों मास माना है।

श्री प्राणनाथजी का जन्म आश्विन मास में ही मानना अधिक ठीक रहेगा क्योंकि

- (१) आज भी प्रणामी संप्रदाय के भक्त आश्विन मास में ही जन्म चतुर्दशी मानते हैं।
- (२) सम्प्रदाय में यह मान्यता है कि प्राणनाथजी का जन्म रविवार को हुआ था। रविवार आश्विन मास की चतुर्दशी को ही पड़ता है। भादों कृष्ण चतुर्दशी को नहीं विक्रम संवत् १६७५ आश्विन कृष्ण चतुर्दशी (इ.स.१६१८ अक्टूबर) को बुधवार था, पर कैलेंडर फार्मूला से गणना करने पर ७ अक्टूबर १६१८ इ. को रविवार ही ठहरता है, बुधवार नहीं और भादों कृष्ण चतुर्दशी शुक्रवार पड़ता है।<sup>४</sup>

अत एव रविवार को मान्यता देने पर प्राणनाथजी का जन्म आश्विन मास में मानना पड़ेगा।

स्नेह सखी के बीतक में प्राणनाथजी के जन्म संबंधित एक रोचक घटना में उल्लेख मिलता है। धनबाई जब ईश्वर की आराधना कर रही थी तब उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो सूर्यदेव बिम्बरूप होकर मेरे मूँह में प्रविष्ट हो गए हैं। तत्पश्चात् प्राणनाथजीने उनकी कोख से जन्म लिया श्रद्धावान भक्तों में अपने महामहिम गुरु की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए इस प्रकार की घटनाओं के प्रचलन के सेंकड़ो उदाहरण मिलते हैं। इससे अनुवर्तियों में मिहिरराज के प्रति आदर व्यक्त होता है।

डॉ.रामकुमार वर्मा, डॉ.सुदर्शन मजिठिया और मोहन श्रीनिवासने उनके पिता का नाम खेमजी क्षेमजी बताया है। प्रो.अमृत पंडयाने 'रहीमजी' नाम दिया है। उनके पिता का नाम केशवराय और माता का नाम धनबाई था ।<sup>५</sup>

स्वामी लालदास ब्रजभूषण नवरंग स्वामी और ईसराज बरूसीने इस प्रकार उल्लेख किया है....

(१) " हालार देख पूरी नौतन, उदरबाई धन,  
केशो पिता की कहियत, तहाँ राज उतपन "<sup>६</sup>

'स्वामी लालदास बीतक '

(२) " केशो ठाकुर है पिता, धनबाई निज मात,  
इन्द्रावती की बासना, सौँप्यों धन, मन, गात"<sup>७</sup>

ब्रजभूषण वृत्तान्त मुक्तावली

कहा जाता है कि जामनगर के राजा जामसताजी के समय में प्राणनाथ के पिता केशवराय राज्य में प्रधान अमात्य (दिवान) के पद पर आसित थे । जामनगर राज्य के इतिहास के अनुसार सताजी नाम के दो राजा हुए। लेकिन स्वामी प्राणनाथ के जीवनकाल को देखते हुए मुज़फ्फर तीसरे और अकबर के शासनकाल दरमियान जामनगर में राज्य करने

वाले शासक सताजी होने चाहिए । केशवरायने अपनी कार्यकुशलता के अनुरूप फल स्वरूप प्रधान अमात्य का स्थान प्राप्त किया था ऐसी क्विदन्ति है।

माता धनबाई प्राणनाथ के बाल चरित्रों को देख देखकर बहुत प्रसन्न रहती थी। कभी कभी अलौकिक चरित्रों को देखकर आश्चर्य में पड़ जाती थी । माता-पिता राधा वल्लभी संप्रदाय के अनुयायी थे । अतः बाल्यकाल से ही उनके जीवन में धार्मिक संस्कारों का समावेश स्वाभाविक ही किया गया था। प्राणनाथ एक धनी पुरुष के लड़के थे। संभव है प्राणनाथ का जन्म श्री और सरस्वतीयुक्त घर में हुआ था।

केशवराय की सन्तानों की संख्या निश्चित रूप से नहीं बतायी जा सकती। संभवतः स्वामी लालदासजीकी बीतक के आधार पर श्री कृष्ण प्रियाचार्यजीने केशवराय के छे पुत्रों में से प्राणनाथ (मिहिरराज) को सबसे छोटा पुत्र माना है। उन्होंने शालमजी, चतुर्भुज, गोविंद, ओधवजी, गोवर्धनजी ये सब श्रीजी (प्राणनाथ) के बड़े भाई थे।<sup>१०</sup> प्रा. माताबदक जायसवाल, आ.परशुराम चतुर्वेदी, मुरलीदास धामी और कवि रामजीभाई नागरदास प्रणामी ने पाँच पुत्रों की संख्या में श्यामल गोवर्धन हरिवंश मिहिरराज(प्राणनाथ) और उध्व के त्रिनाय है।<sup>११</sup> प्रो. माताबदल जयसवालने गोवर्धन को श्रेष्ठ भ्राता माना है।<sup>१२</sup> लेकिन पंडित कृष्णदत्त शास्त्री, रणछोड़दास वीरजी और ब्रजभूषणने पुत्रों का नाम-क्रम हरिवंश शामिलिया, गोवर्धन, मिहिरराज और उध्व रखते हुए हरिवंश को श्रेष्ठ भ्राता बताया है।<sup>१३</sup> इस दृष्टि से ब्रजभूषण का कथन स्पष्ट और उचित मालूम होता है।

**कबीर :**

**प्रस्तावना :**

कबीरजी हिन्दी साहित्य की एक महान विभूति थे। उनके स्वर समाज की जिहवा पर आज भी गूँज रहे हैं। जन सामान्य की भाषा में कही गई बात जनमानसके मन में गहराई तक उतर गई है। ये लोकधर्म कलाकार यद्यपि उच्चकोटि के दार्शनिक थे, परंतु अनपढ़ थे। समाज में फली धार्मिक एवं सामाजिक बुराईयों पर वे कठोरतम कुठाराघात करते थे परंतु

राम के विरह में व्याकुल होकर तड़पते रहते थे।<sup>१४</sup> उन्होंने अपनी साखियों, बानियों एवं शब्दों में काव्य का यह मधुर रस उड़ेला है जो बड़े प्रशिक्षित साहित्यकारों के लिये भी दुर्लभ काव्य है, परंतु खेद का विषय है कि ऐसे सशक्त साहित्यकार के जीवन के विषय में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं है।

वास्तव में भारत की परंपरा रही है कि मध्यकालीन भक्त अपनी रचना ईश्वर को समर्पित करते थे। इसलिए अपना परिचय देना ठीक नहीं समझते तथा अपने विषय में शायद ही बताते अन्यथा लोकहित की चिंता में लगे रहकर मानों वे स्वयं को एकदम ही भूल गये। कबीरजी के साथ भी वही हुआ था। उस काल के साहित्यकारों, इतिहास लेखकों ने भी उनके विषय में कुछ नहीं लिखा। यदि लिखा भी है तो अति अल्प था जिसके आधार पर उनके जीवन के विषय में समस्त जानकारी प्राप्त करना कठिन है।

जानकारी प्राप्त करने के दो ही स्रोत शेष रहते हैं।

(१) अंतःसाक्ष्य

(२) जनश्रुतियाँ

अंतःसाक्ष्य के आधार पर जीवन के एकाद सूत्र को पकड़ा जा सकता है परंतु कईबार जनश्रुतियाँ इतनी भ्रामक एवं पूर्वाग्रह से ग्रस्त होती हैं कि उनके आधार पर लेखक के व्यक्तित्व का वास्तविक चरित्र उभरकर आना असंभव है क्योंकि वे प्रायः अत्युक्तिपूर्ण होती हैं। अतः यही प्रयास किया जाता है कि कवि अंतःसाक्ष्य के आधार पर ही उनके जीवन के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त कर सके।<sup>१५</sup>

**कबीर का : जन्म, माता-पिता एवं परिवार :-**

संस्कृत और हिन्दी साहित्य के अन्य प्राचीन विधानों के जीवनवृत्त संबंधी प्रामाणिक प्रमाणों का अभाव रहा है। कबीर की जन्मतिथि, जीवनवृत्त के संबंध में भी विद्वान अभी तक किसी निश्चित मत पर नहीं पहुँच सके हैं। कबीर की जन्मतिथि के संबंध में परवर्ती संतो एवं टीकाकारों ने भी विभिन्न मतों का उल्लेख किया।

कबीर की जन्मतिथि निश्चित करने से पहले कबीर किस काल में हुए थे इसका विवेचन करना आवश्यक है। डॉ. त्रिगुणायक के अनुसार कबीर की रचनाओं में केवल एक ही पंक्ति ऐसी मिलती है जिसके आधार पर उनके समय का अनुमान किया जाता है।

" गुरू परसादी जैदेव नामा।

भगति के प्रेम ईन्ही ही है जाना"<sup>१६</sup>

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कबीर जयदेव और नामदेव के पश्चात् हुए थे। जयदेव का समय १२मी शताब्दी तथा नामदेव का समय १३मी शताब्दी का अंतिम चरण माना जाता है।

- डॉ. हन्टर ने कबीर का जन्म सन् १३८०
  - रेवरेन्ड वेस्टकारने कबीर का जन्म साठ वर्ष पश्चात् सन् १४४० में माना है।
  - स्वामी युगलनन्दने कबीर की जन्मतिथि १४५५ माना है।
- सम्भवतः इसी के आधार पर कबीर पंथियों में परंपरा से एक दोहा प्रचलित है.....

" चौदह सो पचपन साल गए,

चन्दवार एक ठाठ ठए

जेठ सुदी बरसायत को,

पूरनमासी प्रगट भए ।।

किन्तु यहाँ श्यामसुन्दरदास का कथन है कि संवत् १४५५ की ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार को नहीं पड़ती। ये दोहे में गेय शब्द का व्यतीत होने के अर्थ में लेते हैं, और कबीर का जन्म १४५५ के बाद यानी १४५६ में मानते हैं तथा गणना के आधार पर संवत् १४५६ में पूर्णिमा पर ही सोमवार निर्धारित करते हैं। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि एक के. पिल्ले की इन्डियन टेक्नोलजी के अनुसार संवत् १४५६ में पूर्णिमा मंगलवार पर १४५५ सम्वत् में पूर्णिमा सोमवार को पड़ती है।<sup>१७</sup> हालाँकि कबीर पंथियोने उनकी जन्मतिथि १४५५ में उनकी आयु करीबन १२० वर्ष के लगभग स्वीकारा है।

उपर्युक्त पद विधानों में प्रचलित है। इसलिए विधान इसके आधार पर उनका जन्म वि. ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को बताते हैं जो कबीर चरित बोध में दि हुई तिथि के अनुरूप है। यद्यपि बाबू श्यामसुन्दरदास, आ.रामचन्द्र शुक्ल आदिने इसे १४५६ माना है। परंतु अधिकतर विद्वान १४५५ को ही उनका जन्म संवत् मानने के पक्ष में हैं। जो भी हो, यही तिथि लोकिप्रसिद्ध है। अतः मैं तो इन सभी मत से तो कबीर का जन्म १४५५ संवत् ही मानने के पक्ष में हूँ ।

कबीर के जन्मस्थान के बारे में भी मैतक्य नहीं है। उनके साहित्य भी कोई निश्चित स्थान की गवाही नहीं देते थे तब उनके जन्म स्थान को लेकर तीन मत प्रचलित हैं। जिसमें कुछ लोग काशी को उनके जन्मस्थान के रूपमें गिनाते हैं। तो अन्य विधान मगहर तथा कुछेक विद्वान का मत बलहरा गाँव<sup>३०</sup> (जिल्ला आजमगढ़) को कबीर की जन्मभूमि मानते हैं।

कुछ विद्वान की निम्नलिखित पंक्तियों के आधार पर उनका जन्म मगहर में होना मानते हैं।

तोरे भरोसे मगहर बसियों,

मेरे मन की तड़पन बुझाई।

पहले दरसन मगहर पायो,

पुनि कासी बसे आई ।।<sup>२१</sup>

परंतु ये मत केवल अनुमान पर ही आधारित हैं। अतः सत्य से दूर भी हो सकते हैं। यहाँ पर हम परम्परानुसार काशी को ही उनकी जन्मभूमि मानेंगे फिर कबीर साहब का काशी से अनन्य अनुराग भी है। जन्मस्थान के पुष्ट अभाव में काशी को ही जन्मस्थान मानना अधिक समीचीन रहेगा। कबीरदास के जीवन की घटना संबंध में कोई निश्चित बात ज्ञात नहीं है। सभी कुछ केवल जनसाधारण और विशेषकर कबीरपंथियों में प्रचलित दन्तकथाओं पर ही आधारित है। एक जनश्रुति के आधार पर तो काशीमें एक सात्त्विक रामानंद के बड़े भक्त थे। उनकी एक कन्या विधवा थी उसे साथ लेकर एक दिन वह स्वामीजी के आश्रम पर गये। प्रणाम करने पर स्वामीजीने उसे पुत्रवती होनेका आशीर्वाद दिया। ब्राह्मण देवताने

चौककर जब पुत्री का वैधव्य निवेदन किया तब स्वामीजीने सुखद कहा कि मेरा वचन तो अन्यथा नहीं हो सकता परंतु इतने से संतोष करो कि इससे उत्पन्न पुत्र बड़ा प्रतापी और होगा। आशीर्वाद के फलस्वरूप जब इस ब्राह्मण कन्या को पुत्र उत्पन्न हुआ तो लोकलज्जा और लोकोपवाद के भय से उसने उस बच्चे को लहर तालाब के किनारे छोड़ दिया। भाग्यवश कुछ ही क्षण के पश्चात निरूनाम का जुलाहा अपनी स्त्री निमा के साथ ऊधर से आ निकला। इसे कोई पुत्र न था। बालक का रूप पुत्र के लिए लालयित दंपति के हृदय पर चुभ गया और वही बालक का भरण-पोषण कर पुत्रवान हुए और वही बालक परमभगवद कबीर हुआ।<sup>२२</sup> परंतु कबीरने अपनी जन्मभूमि के विषय में स्पष्ट रूपसे कही कुछ भी नहीं लिखा है। इसलिए परम्परानुसार कबीरदास का जन्मस्थान काशीनगरी ही लगा।

जनश्रुति के अनुसार कबीर का एक छोटा सा परिवार था। जिसमें छ व्यक्ति थे। माता-पिता, स्त्री, पुत्र, पुत्री और स्वयं कबीर। कबीर की माता का नाम निमा और पिता का नाम निरू या नूरी बताया जाता है। कहते हैं कि कबीर के प्रति उनके पिता का व्यवहार अत्यन्त स्नेहपूर्ण था। इनको स्वीकार करते हुए कबीर लिखते हैं कि.....

" बापि दिलासा मेरा कि किन्हा।"<sup>२३</sup>

इसके विरुद्ध कबीर की माँ कबीर से खिन्न रहती थी क्योंकि स्वभावानुसार घर में वे योगियों के समान रहते थे। धन संचय के विरुद्ध थे। क्योंकि कबीर मानते थे कि सबका पालन पोषण करनेवाला उपरवाला है। धन का व्यय सदैव साधु संतो को भोजन खिलाने या असहायों की मदद करने में होता है। कबीरजीने लौकिक ऐश्वर्य के लिए धनसंचय या व्यवसाय नहीं किया यह आचरण निमा के निरन्तर खेद का कारण था। इसका संकेत हमें इस पद में मिलता है.....

" कबीरों सन्त नहदी गयो बहि रे

ढाढ़ी माई करारे तेरे हैं, कोई भ्यावे गहि रें।"<sup>२४</sup>

कबीरजी के माता पिता के बारे में एक किवदंती यह भी है सुदर्शन नामक वाल्मिकीने करुणामय स्वामी को कहा था कि हे, भगवान ! मेरे माता-पिता को उपदेश देकर मोक्षभागी बनाने की कृपा करें।

कर्म परिपाकवश दोनो पति-पत्नि एक दूसरे के प्रीतिपात्र तथा परस्पर के हित में तत्पर होकर रहते थे। पुरुष का नाम गौरीशंकर और स्त्री का नाम सरस्वती देवी था। गौरीशंकर कर्मठ, धार्मिक और विद्वान थे। वे सतत शिवभक्तिरत थे। वे सदाचारी और ब्रह्मवृत्ति से आजीविका चलाते थे। उन दोनों का इस प्रकार सतत शिवनामपरायण देखकर मार्ग के आसपास रहनेवाले यवनलोग अन्तर से इनके साथ द्वेष करने लगे और पुष्टिलोग का बहुत प्रचार करता है। हमें कदम उठाना शीघ्र लेना चाहिए। ऐसा विचार करके कुछ म्लेच्छ दुष्ट सोचने लगे कि यह ब्राह्मण प्रतिदिन हिन्दु धर्म का बहुत प्रचार करता है। अतः एकत्र होकर उसने वेग से गौरीशंकर के घर जाकर हमला किया और बलपूर्वक इन्हे अपना जल पिलाकर जाति भ्रष्ट कर दिया। उन म्लेच्छोंने दोनों के नाम भी बदल दिये । गौरीशंकर का नाम निरू और सरस्वतीदेवी का नाम निमा रख दिया। इससे दोनों का धर्म भ्रष्ट हो गया। धर्म भ्रष्ट होने से दोनों पति पत्नीने विचार कि यह शरीर अब अपवित्र हो गया है अतः भगवान शिव की भक्ति करने के योग्य नहीं रहा। अतः दोनो शरीर का आत्मघात करने के लिए गंगा तट पर गये। उस समय अकस्मात ही आकाशवाणी हुई कि,.....

" है ब्राह्मण व्यर्थ परित्याग मत करो

आत्मघात से अधोगति होती है।"<sup>२५</sup>

इस प्रकार का आश्वासनमय वचन सुनकर दोनों विचार करने लगे कि... यह शब्द साक्षात परमात्मा के ही है। हमारे दुःख दूर करने के लिए ही परमेश्वरने आकाशवाणी की है। इतने में उनकी दृष्टि एक कमल के पुष्प पर देखते हुए महान तेजोमय बालक पर पड़ी। बालक को देखते ही सरस्वती(निमा) देवी का हृदय ममता, प्रेम तथा उत्पन्न उल्लास से भर गया। वह एकदम दौड़कर कमल के पास गई और उसने कमल पर से बाल स्वरूप श्री कबीर साहब को मातृभावके अनेक मनोरथों से भरकर प्रेमपूर्वक अपनी गोद में उठा लिया।



उस माता सरस्वतीदेवी का लाखों धन्यवाद है कि.... जिसने अपने पूर्व पुण्य के प्रभाव से भूमंडल पर सर्वप्रथम उस पर ब्रह्म परमात्मा संत कबीर साहब के दर्शन किये और अपने मनुष्यशरीर को कृतार्थ किया।

पहले तो निरूने सोचा कि यह किसी दूसरे का बालक होगा। उसने चारों ओर आवाज लगाई किन्तु कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। निरूकी शंका मिटाने के लिए बाल स्वरूप सद्गुरु बोल उठे.....

अब हम अविगति से चलीआये,  
मेरा भेद मरम नहीं भाये,  
नहीं हम जन्मे गरभ बसेरा,  
बालक है दिखलाये काशी शहर जंगल बीच डेरा।  
तहाँ जुलाहा पाये, अगले जनम हम कौल किया था,  
तब तेरे घर आये।<sup>२६</sup>

निमाने अपने पति को मना लिया कि वह उसे इस बाल स्वरूप को घर ले जाने की अनुमति दे। दोनों बालक को घर ले आये। इस तरह निरू और निमा बालस्वरूप के पालक माता-पिता बन गये ।

कबीरजी के परिवार के बारे में ठोस रूप से कुछ नहीं कहा जाता कि उसके परिवार में कितने सदस्य थे और कौन कौन था। लेकिन एक बात सही रूप से बतायी जा सकती है कि कबीर को पारिवारिक सुख कभी नहीं मिला। इसका प्रमाण उनकी ही एक साखी है....

" जदि का भाई जनमिया,  
कहूँ न पाया सुख ।  
डाली डाली में फिरा  
पाती-पाती दुःख ।।<sup>२७</sup>

## स्वामी प्राणनाथः बचपन और शिक्षा :

स्वामी प्राणनाथजी को बचपन से ही ईश्वर के प्रति अनुराग था । एक दिन वि.सं.१७२२ में उनके जीवन में जो अविस्मरणीय घटना घटी, उसने उन्हें हमेशा के लिए संसार को त्यागकर परमात्मा की शरण में जाने के लिए बाध्य किया। उन्होंने अनुभव किया कि संसार में कुछ सार जैसा नहीं है तुम प्रभु की शरण में जाओ और उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित करो, प्रभु दया के सागर है, गुण के सागर है । वे प्रत्येक मानव पर दया करते हैं।

वैसे तो प्राणनाथजी का बचपन बड़ा राजीव ठाठ बाठ से व्यतीत हुआ। परंतु उन्होंने अपना जीवन सन्यासी की तरह जीना स्वीकार किया। अपने जीवन में उन्होंने सभी तरह के कष्ट पहले से ही सहन करना सीखा था। स्वामी प्राणनाथजी ने अपना बचपन बहुत धैर्य से बिताया। अन्य बालकों की तरह उनका बचपन नहीं था। वे सबसे अलग थे। छोटे थे तभी वे छोटे मोटे चमत्कार दिखाते थे परंतु कोई उसे अवतारी पुरुष न मान ले इसलिए उन्होंने अपनी लीला समाप्त कर दी और आम बच्चों की तरह जीवन व्यतीत करने लगे । लेकिन उसकी माँ तो उसे समझ गई थी, कि उसका बेटा कोई आम बालक नहीं है। वे उसका बड़ा प्यार से जतन करती थी । इस तरह स्वामी प्राणनाथजी बचपन से ही नज़र संसार से दूर रहते थे।

स्वामी प्राणनाथजी के गुरु देवचन्द्रजी अर्थात् निजानंद स्वामी अपनी १४वर्ष की अवस्था में जामनगर आये थे। यहाँ १४ वर्ष तक एकनिष्ठा से भगवद् का श्रवण, मनन, निदिध्यास किया। अंत में स्वयं भगवान श्रीकृष्णने साक्षात् दर्शन देकर उन्हें तारतममंत्र की शिक्षा दी।<sup>२८</sup> कृष्णदर्शन और कृष्णासा के बाद उन्होंने प्रणामी संप्रदाय की स्थापना की और संप्रदाय के तत्त्वों का प्रसार कथा-कीर्तन द्वारा किया। उन्होंने ये सारी बातें प्राणनाथ के घर में बताईं। उस समय प्राणनाथजीने गुरु देवचन्द्रजी के प्रथम दर्शन किये। उस समय प्राणनाथजी की आयु १२ वर्ष २ मास और १० दिन थी।

" बारह बरस दो मास,, तो उपर भए दस दिन

तब देवचन्द्रजी सो मिल, तब पहचान मोमिना।।"<sup>२९</sup>

श्री प्राणनाथजी की लौकिक शिक्षा के बारे में समस्त बीतककार मौन है। परवर्ती प्रणामी साहित्य में ही उनकी शिक्षा-संबंधी भिन्न उल्लेख मिलता है।

जब प्राणनाथजी की पाँच वर्ष की अवस्था हुई तो आज संपूर्ण चमत्कारी लीलाओं का संवरणकर प्राकृत बालक की तरह बाललीला करने लगे। कुछ काल में कुलचित राष्ट्रोचित तमाम विद्याओं को आपने हाँसिल कर दिया।<sup>३०</sup> एक दिवान के पुत्र और क्षत्रिय बालक को उस समय जो शस्त्र-शास्त्र और राजनीति की शिक्षा दी जा सकती थी। वही प्राणनाथजी को मिली। इनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि इन्हें हिन्दी और गुजराती के अतिरिक्त संस्कृत और फारसी का भी अच्छा ज्ञान था। ये भाषाएँ इन्होंने व्यवहार से ही सीखी। पंडित या मौलवी से उन्होंने इसकी शिक्षा नहीं ली। प्रणामियों की धारणा है कि प्राणनाथ अवतारी पुरुष थे। वे जहाँ जैसी भाषा की आवश्यकता होती, सहज ही उसका प्रयोग कर लेते थे। उनके अनुसार समस्त जग को शिक्षित करनेवाले परमात्मा के अवतार को शिक्षा की क्या आवश्यकता थी।<sup>३१</sup>

### **संत कबीर: बचपन और शिक्षा :**

कबीर के बचपन के विषय में आश्चर्यजनक कथाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनसे उनमें लोकोत्तर शक्तियों का होना सिद्ध किया जाता है। महात्माओं के विषय में प्रायः ऐसी कल्पनाएँ की जाती हैं। यद्यपि युग में इस प्रकार की बातों पर शिक्षित और समझदार लोग विश्वास नहीं करते। कबीरदास के बाल्यकाल के प्रसंग के बारे में डॉ. पारसनाथ तिवारी कहते हैं कि ... जब बिना कुछ खाए-पिए ही वे पड़े रह जाते थे तब निरू-निमा की चिंता बढ़ जाती थी। उन्हें दुःखी देखकर कबीरजीने दूध पीना आरंभ किया किन्तु यह दूध भी विलक्षण ढंगसे निकाला जाता था। एक अनब्याही बछिया के नीचे मिट्टी का कोरा बर्तन रख दिया जाता था। कबीर की दूध की इच्छा से ज्योंही उस बछिया की ओर देखते थे बर्तन तबातब भर जाता था। वही दूध वे नित्य पिया करते थे।

कबीरजी अपने धरेलू व्यवसाय में बचपन से ही लग गये थे किन्तु रामनाथ का जादु उन पर इतना असर कर चूका था कि कभी-कभी कताई-बुनाई का धंधा छोड़ देते थे। इस मनोवृत्ति की परिचायक कुछ पंक्तियाँ कबीरजी की रचनाओं में भी मिलती हैं।

तनना बुननां तज्यो कबीरा ।

राम नाम लिखि लियो शरीर ।

मुसि-मुसि रायें कबीर की माई ।

यह बाहिक कैसे जीवे सादई ।

जन लगति तागा बाहों य ही ।

तब लगि विसेर रोग स्नेही ।

कहत कबीर सुनह मेरी भाई ।

पूरन हारा त्रिभुवनराई ।।<sup>३२</sup>

अतः कबीरजी के बचपन की बातें कुछ विशेष नहीं मिलती।

कबीरने शिक्षा प्राप्त करने के लिए शाला का सहारा नहीं लिया। वे कभी किसी स्कूल-कालेज नहीं गये। कबीर को धुमक्कड इसलिए कहा जाता है कि उन्होंने पर्यटन द्वारा ही शिक्षा प्राप्त की । उन्होंने कभी किसी गुरु से विद्या ग्रहण नहीं की अतः उनके कोई विद्यागुरु नहीं थे। कबीरजी के पास जितना ज्ञान था वो सब भजन-कीर्तन, पर्यटन-तीर्थटन नाम स्मरण या फिर साधु संगति से प्राप्त किया था।

कई किवदंतियों के अनुसार रामानन्दने कबीर को रामनाम का गुरुमंत्र तब दिया जब वे प्रातः पंचगंगाघाट पर स्नान के लिए जा रहे थे। कबीर वहीं किनारे पर बनी सिढ़ियों पर लेट गए जिससे कि स्वामीजी को अंधेरे में वे दिखाई न पड़े और पड़ने पर रामानंदजी के मुख से "राम-राम" निकल पड़ा और कबीर ने इसे गुरुमंत्र समझकर ग्रहण किया, किन्तु कबीर के राम रामानंद के राम से भिन्न हो गए थे। कुछ इतिहासकार रामानंद के गुरु नहीं मानते परंतु जनश्रुतियों का यदि आधार माना जाए तो रामानंद ही गुरु माने जाएँगे। कबीरने एक पंक्ति में स्वयं कहा है.....

" काशी में हम प्रकट भए है,  
रामानंद चेताए।  
रामानंद रामनाम भानै,  
कहाहे कबीर हम कहि-कहि चाके।।"<sup>३३</sup>

इससे हम केवल इतना कह सकते हैं कि कबीरजी चाहे रामानंद के शिष्य रहे हो या ना रहे हो परंतु उनके सिद्धांतों में वे बहुत हद तक प्रभावित अवश्य थे। शिक्षा के बारे में कबीर स्वयं लिखते हैं कि...

" मसि कागद छुपो नहीं  
कमल गहयो नहीं हाथ"<sup>३४</sup>

कबीरने सदैव सत्संगति को महत्त्व दिया है, और पुस्तकिय ज्ञान को तुच्छ माना है। इसलिए वे कहते हैं कि....

"पोथि पढ़ी पढ़ी कई जग मुआ, पंडित भया न कोई ।  
ढ़ाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय ।"<sup>३५</sup>

अपनी इसी मान्यतावश या शायद प्रतिकूलता वश अन्य सन्त कवियों समान उन्होंने बकायदा पढ़-लिखकर अपने विचार नहीं बताया बल्कि स्वानुभावों के बल पर अपनी विचारधारा को माँझा व सँवारा है जो न केवल सराहनीय है अपितु अनुकरणीय भी है-पोथी को बहाकर बावन अक्षर के मध्य में 'हमै ममै' में रूचि को रमा देने के ज्ञान के उच्चतम सोपान को उन्होंने आत्मसात कर लिया था।

### **स्वामी प्राणनाथ: विवाह-दाम्पत्यजीवन :**

स्वामी प्राणनाथजी के विवाह या दाम्पत्यजीवन के बारे में निश्चितरूप से कहना कठिन है। साम्प्रदायिक ग्रंथों में बीतकों में भी इस संदर्भ में समान उल्लेख नहीं मिलते। माना जाता है कि प्राणनाथ का विवाह फुलबाई के साथ बाल्यावस्था में ही हो गया था। रणछोडदास वीरजी के अनुसार गुरु-आज्ञा से अरबस्तान गये हुए प्राणनाथ सं.१७०७ में

जामनगर वापस आ गए और बाद में तुरंत दी सं. १७०८ फाल्गुन शुक्ल पंचमी के दिन फुलबाई की मृत्यु हो गई।<sup>३६</sup> पं. कृष्णदत्त शास्त्रीने इस संदर्भ में संभवतः ब्रजभूषण पर आधार रखा है। गुरु के धामगमन के बाद प्राणनाथ ने गुरुपुत्र बिहारी से हुए अनमेल को कम करने के लिए जामनगर राज्य का वजीर पद ग्रहण कर लिया था। वे हररोज सुबह शाम संप्रदाय के अनुयायीओं समक्ष धर्मचर्चा करते थे । इस प्रकार अनुयायीओं में उनके बढ़ते हुए प्रभावने बिहारी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न की । उन दिनों में बिहारीने अनुयायियों में धर्म जागृति उत्पन्न करने के लिए प्रत्येक अनुयायियों के लिए धर्म चर्चा में सुबह-शाम नियमित रूप से उपस्थित होने का नियम बना लिया था। आज्ञा भंग करनेवाले को धर्म बहिष्कृत की सजा मिलती थी।

एकबार दूर गाँव से आनेवाले अनुयायी को इस हेतु धर्म से बहिष्कृत कर दिया गया। नौ दिन तक वह अनुयायी बिहारी के द्वार पर अन्न-जल त्याग कर खड़ा रहा। और दसवें दिन प्राणनाथ के घर पर गया। उस समय प्राणनाथ दरबार में थे। अतः उनकी पत्नी फुलबाईने उसको समजाया और भोजन दिया। इस बात को सुनकर बिहारीजी क्रोधित हो गये और उन्होंने द्वारपाल को प्राणनाथ को मंदिर में प्रवेश नहीं करने की आज्ञा दी । शाम को वहाँ पहुँचने पर प्राणनाथ को बताया गया कि अब आप हमको चाहते हो तो धर्म पत्नी का परित्याग कर दीजिए या हमारा त्याग कर दीजिए । उन्होंने गुरुपुत्र की आज्ञा का पालन किया। अतः पत्नी फुलबाई का त्याग कर दिया। फुलबाईने पति वियोग में अन्न-जल का त्याग किया और छःमास पयँत उनकी निरन्तर स्मरण कर अपने निर्मलात्मा को पति स्वरूप में मिला दिया। मृत्यु समय पर अपनी ईच्छा व्यक्त की कि अंतिम संस्कार का स्थान पति के चरणों से पवित्र किया जाए।<sup>३७</sup> इस प्रसंग में ब्रजभूषणने ईनकी पत्नी का नाम फुलबाई नहीं दिया, "बाईजू" दिया है।<sup>३८</sup> कवि रामजीभाई नागरदास प्रणामी ने बताया कि उनकी प्रथम पत्नि का नाम तेजबाई था और उसकी मृत्यु १४ साल की उम्र मे हो गई थी। प्राणनाथ बसरा गये उससे पहले तेजबाई के साथ उनकी शादी हो गयी थी और उनकी मृत्यु के दो वर्ष बाद बाईजीराज के साथे उनकी दूसरी शादी हुई थी। यह भी कहा जाता है कि प्रातःकाल के

समय धोराजी नामक गाँव के पास छोटी सी नदी में वे स्नानध्यानादि विधि कर रहे थे। तब वीरजी भाणजी नामक क्षत्रिय की लड़की तेजकुंवरी अपने पिता को साथ में लेकर पानी भरने के लिए नदी पर आयी लेकिन प्राणनाथ को देखकर उसने घुंघट कर लिया। उसका विवाह कहीं पर निश्चित नहीं हुआ फिर भी पुत्री का इस समय घुंघट निकालना पिता के लिए आश्चर्य बन गया। इसका कारण बताते हुए लड़की ने मेरे पूर्वजन्म के पति बैठे हैं तदन्तर अपने प्राणनाथ के परिवार का पूरा परिचय कह सुनाया। नवरंग स्वामीने फूलबाई और तेजबाई नामों का सिर्फ उल्लेख किया हैं । प्रो. माताबदल जायसवाल ने उनकी पत्नी का नाम राजबाई माना है वे लिखते हैं कि मिहिरराजने विवाह करके अपनी पत्नी राजबाई के साथ रही ।<sup>४१</sup> इतना स्पष्ट लगता है कि उनका दाम्पत्यजीवन फुलबाई और तेजबाई के साथ व्यतीत हुआ था। संप्रदाय के अनुयायीयों तेजबाई को ही आदरसूचक बाईजीराज के नाम से पुकारते थे।<sup>४२</sup> लेकिन फुलबाई और तेजबाई के साथ उन्होंने कब विवाह किया यह सप्रमाण नहीं कहा जा सकता। 'बाईजीराज' नाम तो सन्मानसूचक है।

इस प्रकार ठोस रूप से नहीं कहा जा सकता है कि स्वामी प्राणनाथजी की एक पत्नी है या दो पत्नी हे। या फिर उन्होंने दोनों पत्नीयों के साथ जीवन व्यतीत किया। विविध विधानों के अभिप्रायों से यह जरूर तय हुआ है कि स्वामी प्राणनाथ विवाहित थे।

#### **कबीर : विवाह-दाम्पत्यजीवन :**

डा. त्रिगुणायत के अनुसार कबीर वैरागी होते हुए भी गृहस्थ थे । उन्होने वैवाहिक जीवन व्यतीत किया था तथा संतान भी थे । कई विद्वान उनकी दो पत्नीयाँ थी ऐसा बताते हैं। एक का नाम लोई था और दूसरी का नाम धनिया था, यह देखते तो उसमें उनकी दोनों पत्नीयों का नाम उल्लेख हैं।

" पहली कूरुपि कुजापि कुलेक्षणी साहुरे पैहुए बुरी,  
सब का सूरुपि सुजाति सुलक्षणी सहजे उतरि धरी,  
भल सही मुई मेरी। पहिली बरी जुग जुग मेरी अब की धरी।"<sup>४३</sup>

कबीर की इन दो पत्नीयों में से धनिया कबीर को अत्यंत प्रिय थी ऐसा माना जाता है। इस धनिया को रामजनियाँ भी कहा जाता है। शायद यह नाम महात्मा रामानन्द के प्रभाव से रखा गया था। पहली स्त्री जल्दी मर गई थी। उनकी संतानों के संबंध में पुष्टप्रमाण न मिलने से केवल यही माना जा सकता है कि कबीर के संतानों में केवल एक पुत्री है जिनके नाम कमाल और कमाली कहते हैं। एक मत ऐसा भी है कि उनके पुत्रको जमाल और पुत्री जमाली भी कहते हैं। कबीर लगभग पुत्र कमाल से संतुष्ट नहीं थे।

"डूबावेश कबीर का।

उपजा कपूत कमाल"<sup>४४</sup>

महंत श्री जगदीशदासजी का अभिप्राय यह है कि कबीर ने विवाह नहीं किया था। वे चमत्कारी पुरुष थे। बचपन से लेकर बड़े हुए वहाँ तक उन्होंने किसी रूप में चमत्कार दिखाए हैं। कबीर का पारिवारिक सुख कभी नहीं मिला था इसका प्रमाण उनकी ही एक साखी है.....

" जदि का भाई जनमिया,

कहूँ न पाया सुख।

डाली डाली में फिरा

पाती पाती दुःख।।"<sup>४५</sup>

इस तरह कबीर के विवाह के बारे में किसी विद्वान ने निश्चित रूपमें नही बताया है।

एक मत यह भी है कि कबीर के विवाह के संबंध में दो दृष्टिकोण हैं। उन्हें कुछ विवाहित और कुछ अविवाहित मानते हैं। विवाहित माननेवाले इनके समस्त परिवार का उल्लेख करते हैं। इनके ग्रंथों के आधार पर धनियाँ, लोई, रामजनियाँ इनकी तीन पत्नीयों का पता चलता है।

इस विवाह के संबंध में एक प्रसंग प्रसिद्ध है। लोई वनखण्डी वैरागी की पालिता कन्या थी। गंगा स्नान के समय उन्होंने किनारे पर लोई में लपटी एक बालिका कन्या देखी



और उसे उठा के अपने घर ले गये. उनको पालपोषकर बड़ा किया । दुलार में उन्होंने उसका नाम लोई ही रखा । उसका असली नाम धनिया था। जब वैरागी की मृत्यु हुई तब लोई को आश्वासन देने के लिए कबीर उसकी कुटिया पर गये। उस समय वहाँ अनेक साधु-संत भी आते जाते रहते थे। लोईने सबको दूध पीने को दिया तब कबीरने अपने हिस्सेका दूध यों ही छोड़ दिया । लोई ने उनके दूध न पीने का कारण पूछा तब कबीरने कहा "गंगा पर से साधु आ रहे हैं उनके लिए यह सुरक्षित रखा है।"<sup>४६</sup>

यह सुनकर लोई को आश्चर्य हुआ। उसे कहीं कोई दिख नहीं रहा था। कुछ समय बाद सचमुच साधु आये । इसी प्रसंग पर लोई को कबीर की सिद्धि का परिचय मिला और उसने कबीर से विवाह करने का निश्चय किया। लोई को कबीर में पूर्ण श्रद्धा थी इसलिए विवाह के बाद उसने कबीर की सत्संग एवं साधु सेवा की प्रवृत्ति में पूरा सहयोग दिया। साधु संतोने उनकी ईश्वर प्राप्ति को देखकर ही उसका नाम रख दिया 'रामजनिया'।

यह भी कहा जाता है कि कबीरने विवाह ही नहीं किया। इस आधार पर कहा जाता है कि कबीरने नारी के प्रति उपेक्षा भाव दिखाया है।

नारी की झाई पडंत अंधा होत भुजंग

कबीरा तिन की कौन-गति, नित नारी को संग ।

यह बात सिर्फ विवादास्पद रही है। उसकी पत्नी के संबंध में किसी प्रमाणिक सामग्री का अभाव है।

### **स्वामी प्राणनाथ: आश्रम जीवन:**

स्वामी प्राणनाथजी का जीवन बड़ा सरल, और सीधा-सादा रहा है। वे किसी एक जगह पर कहीं स्थित नहीं हुए। बचपन से ही उन्हें परिवार से धार्मिकवृत्ति के संस्कार अपने माता-पिता से मिले थे। वे बड़े धार्मिक हुए। बड़े होकर उन्होंने अपने गुरुदेवचन्द्रजी से मिलकर धर्म का प्रचार प्रसार कार्य शुरू किया स्वामी प्राणनाथजी पहले जामनगर के दिवान थे बाद में उन्होंने राजकाज से तंग आकर सत्गुरुदेवचन्द्रजी के आदेश अनुसार स्वामी

प्राणनाथजी धर्म के प्रचार-प्रसार की प्रवृत्तियों में लग गये। उन्होंने विविध स्थानों पर आश्रम की स्थापना की। स्वामी प्राणनाथजी धुम्मक्कड स्वभाव के थे। वि फिरते रहते और एकता का संदेश देते रहते थे। भिन्न-भिन्न स्थानों पर उन्होंने चर्चा सभा और धर्म गोष्ठियों का आयोजन किया और लोगों को धर्म का सही स्वरूप समजाया। प्राणनाथजी ने अपने आश्रम में ही धर्म के प्रति अपने विचार सब लोगों के सामने प्रस्तुत कर देते थे। जिन जिन स्थानों पर वे गये उसका ब्योरा संक्षिप्त में निम्नानुसार है।

पन्ना, दीवबंदर, पोरबंदर, मांडूवी, जामनगर था कोम तथा धर्म को भेद के बिना धर्मप्रचार किया। अपने आश्रम का जीवन वे खुद तय करते थे जैसे कि सबके साथ मिलकर खाना, सबके साथ मिलझुलकर रहना, ऊँचनीच का भेदभाव न रखना आदि सब अनेकता में एकता का प्रतीक वे बताते थे। साथ में खाना, खाना उसे सुंदर लगा इसलिए उन्होंने उसे "सुंदरसाथ" नाम रख दिया था। तब से प्रणामी संप्रदाय को 'सुंदरसाथ' के नाम से भी पहचाना जाता है।

### **कबीर: आश्रम जीवन:**

कबीर जहाँ भी गए आश्रम बन गया कहीं पर जाकर उन्हें आश्रम बनाने की जरूरत नहीं पड़ी। वे जहाँ भी जाते लोगों की भीड़ एकत्रित हो जाती। कबीर स्वयं पढ़े-लिखे न थे किन्तु उन्हें विभिन्न धर्म, संप्रदाय और विविध भाषाओं के शब्द का शुद्ध ज्ञान था। इसके लिए दो चीजें कारणभूत थी सत्संग एवं देशाटन देशभ्रमण से ही विविध संप्रदायों एवं धर्मों के विद्वानों का सत्संग प्राप्त होना संभव है। हालाँकि कबीर को तीर्थयात्रा से कोई विशेष प्रेम तो न था परंतु उनकी संत महात्माओं से मिलने तथा ज्ञानार्जन की आकांक्षा कुछ अधिक ही तीव्र थी और तभी तो अपने जीवन का अधिकांश भाग काशी में बिताते हुए भी वे समयान्तर देशाटन करते रहे और सत्य की खोज करते रहे। वे पद उनके लिए दृष्टव्य है।....

" वृन्दावन ढुँढ़यो हो जमुना के तीर ।

राम मिलन के कारणे जल खोजते फिर कबीर।" <sup>४६</sup>

आ. क्षितिमोहन सेनने उनकी गुजरात यात्रा का समर्थन दिया है तो दक्षिण पंढरपुरम् 'मानिकपुर' बड़े तथा झाँसी इत्यादि स्थलों पर उनके जाने का भी अनुमान है। रतनपुर, मंडोल, जगन्नाथ पुरी आदि जगह पर भी कबीरजी के पदचिन्ह का प्रमाण प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त कबीरजी का एकाध पंक्ति के आधार पर उनका मक्का-मदीना जाने का अनुमान तो अतिरंजित दृष्टिकोण है और उनके मगहर जाने तथा वहीं पर शरीर त्याग की बात तो सर्वविदित है और गोमती तीर निवासी पिताम्बरपीर से मिलने वे अकसर जाया करते थे।"४७

आज जो सब जगह कबीर के आश्रम दिखाई देते हैं वे सब कबीर के शिष्यों ने कबीरजी के नाम से बनाए हैं। कबीर के जीवित कहीं पर भी उनका आश्रम नहीं था।

### **स्वामी प्राणनाथ: उत्तराधिकारी की नियुक्ति :**

कहा जाता है कि स्वामी प्राणनाथजी की अपनी संतान नहीं थी। उनके देवचंद्रजीने अपने पुत्र बिहारी से अधिक प्यार स्वामी प्राणनाथजी को किया था क्योंकि पुत्र बिहारी घमंडी स्वभाव के थे। स्वामी प्राणनाथजी का स्वभाव सीधा-सादा और सरल प्रकृति का था। जब गुरुपुत्र बिहारीजी से बात न बनी तो स्वामी प्राणनाथजी तंग आकार वहाँ से चले गये बुंदेलखंड, बुंदेलखंड में छत्रसाल की स्वतंत्रता का युद्ध आरंभ हो चुका था। उनकी प्रारंभिक सफलताओं के कारण स्वाभिमानी बुंदेलखंडी उन्हें धर्म और स्वतंत्रता के रक्षक समझकर उनके झंडे के नीचे शीघ्रता से एकत्र हो रहे थे। छत्रसाल के पथने प्राणनाथ को बुंदेलखंड की ओर आने को प्रेरित किया। छत्रसालने सैनिक शक्ति संग्रह करली थी। परंतु उन्हें और उनके सैनिकों अभी नैतिक और आध्यात्मिक बल की आवश्यकता थी। स्वामी प्राणनाथ के बुंदेलखंड आने से उनकी यह कमी भी दूर हो गई। छत्रसाल और प्राणनाथजी की महत्वपूर्ण भेंट-मऊ के पास ही आकस्मिक रूप से १६८३ ई में ही किसी समय हुई। छत्रसाल द्वारा उनको बहुत प्रेम मिलने लगा। भेंट के पश्चात स्वामी प्राणनाथजी स्थायी रूप से बुंदेलखंड में निवास करने लगे।

छत्रसाल और स्वामी प्राणनाथजी के संबंध शिवाजी और समर्थ गुरु रामदास जैसे ही थे । प्राणनाथजीने छत्रसाल को नैतिक और आध्यात्मिक बल देकर राजनीतिक उद्देश्यों का महत्त्व बुंदेलखंडियों की दृष्टि में बहुत बढ़ा दिया। शिवाजी पर स्वामी रामदास का प्रभाव तो राजनीतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक ही अधिक था परंतु प्राणनाथ राजनितिक क्षेत्र में भी वे छत्रसाल के बहुत बड़े सहायक सिद्ध हुए । छत्रसाल के स्वतंत्रता संग्राम में पूर्णयोग देने के बाद उसे सफलतपूर्वक उकसाया। अपने एक ऐसे ही उपदेश में वे चुनौती सी देते हुए कहते हैं कि.....

" बात सुनी रे बुंदेल छत्रपालने । आगे आय पड़ा ले तलवार

सेवा ने लई रे सारी सिंच के । साँईये किया सेनापति सिरदार।।"<sup>४८</sup>

स्वामी प्राणनाथजी को राजा छत्रपाल में वे सब गुण दिखाई दिये जो उनमें होने चाहिए । इसलिए जब उनका धामगमन का समय आया तब उन्होंने छत्रसाल को ही उत्तराधिकारी के रूप में नियुक्त कर दिया। सारा कारभार छत्रसाल को सौंपकर प्रणामी को आगे बढ़ाने का और प्रचार-प्रसार करने का उपदेश दिया। छत्रसालने भी गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य मानकर वैसा ही किया जैसा गुरु स्वामी प्राणनाथजी उन्हें बताकर गया। इस तरह स्वामी प्राणनाथजीने अपना अंतिम समय शिष्य छत्रसाल के साथ बुंदेलखंड में गुज़ारा और साँस पन्ना मे ली।

**कबीर : उत्तराधिकारी की नियुक्ति :**

संत कबीरजी फक्कड़ व्यक्ति थे। वे जहाँ जाते वहाँ उनके शिष्यों का ढेर लग जाता ऐसा भी कहा जाता है कि उनके एक पुत्र और एक पुत्री थी जिनका नाम कमाल और कमाली था । बाद में लोग उसे जमाल और जमाली कहने लगे । पंडित महंत श्री जगदीशदासशास्त्री कबीर का कहना है कि कबीरजी की कोई संतान नहीं थी । वे निःसंतान थे। कमाल है जो लोग उसके पुत्र के नाम से जानते है वे तो एक शिष्य था जिसकी पहले गंगाघाट में उसकी लाश मिली थी लेकिन सिकंदर के गुरु शेखतकी ने कबीर को नीचा

दिखाने के लिए उस लाश को जीवित करने की चुनौती दी वे यह समझते थे कि कबीरजी ढोंग करते हैं उसका पर्दाफास कर ताकि सिकंदर उसे सजा देकर यहाँ से निकाल दे लेकिन ऐसा नहीं हुआ । कबीरजीने परमात्मा का नाम लेकर उस शव पर पानी की अंजली छींटकी और जगाया । उस समय वह शव खड़ा हुआ और सब लोग कहने लगे कि कबीरजी ने तो कमाल कर दिया। 'वाह क्या कमाल किया है आपने' तब कबीरजीने इस शब्द से लड़के का नाम कमाल रख दिया और कमाल संत कबीरजी का शिष्य बन गया। कमाली के बारे में भी यह बात प्रस्तुत की गई है कि वे कबीरजी की पुत्री नहीं हैं। वे शेखतकी की बेटी हैं। जब उसकी मृत्यु हुई तो शेखतकी ने उसे दफ़ना दिया। फिर कबीरजी सिकंदर और सबके सामने दरबार में लाया गया। शेखतकी फिर से कबीरजी को तंग करने लगे और सबके सामने कहने लगे कि तुम परमात्मा के परम भक्त हो तो दफ़नाई हुई मेरी बेटी को जीवित कर के दिखाया। कबीरजीने उससे कुछ नहीं कहा और लड़की को जहाँ दफ़न किया था वही सब गये और कबीरजीने कहा शेखतकी की बेटी उठजा, लड़की खड़ी नहीं हुई । फिर कबीरने कहा ओ मेरी बेटी खड़ी हो जा फिर लड़की जीवित हुई । जीवित बेटी को पाकर शेखतकी की आँखे छलछला आई कबीरजी से माफी माँगी। कबीरजी के इस दूसरे परचे को देखकर लोग फिर से कहने लगे कि आपने तो कमाल कर दिया। कबीरजीने तब उस लड़की का नाम कमाली रख दिया। शेखतकी लड़की को घर ले जाना चाहते थे लेकिन कमाली ने कहा कि अपने पिता के रूप में मुझे दिया था। तब ही हमारा रिस्ता पूरा हो गया था। अब कबीरजीने मुझे जीवित किया है तो मैं उसीकी बेटी अर्थात् शिष्या बनकर रहूँगी। तब से कमाली उनकी शिष्या बनकर उनकी भक्ति करने लगी । इस प्रकार कहा जाता है कि कबीरजी की उत्तराधिकारी की नियुक्ति के रूप में कबीरजीने किसी एक को उत्तराधिकार नहीं अपने शिष्यों को एकता में परमात्मा प्रसन्न रहते हैं । सब मिल जुलकर रहे ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये ।

**स्वामी प्राणनाथः धामगमन**

चित्रकूट से वापस पन्ना आ जाने के बाद प्राणनाथजी को अपने अंतिम समय का ज्ञान हो चुका था । अतः वे रात-दिन निरन्तर ब्रह्मज्ञान की चर्चा में ही लगे रहते थे। अपने अंतिम दिनों में उन्होंने छत्रसाल को क्षर, अक्षर और अक्षरातीत ब्रह्म का पूर्ण परिचय कराया। तदन्तर उन्होंने स्वधाम को ध्यान में लीन होने के निर्मित सोचना शुरू किया। मुरलीदास धामी लिखते हैं..... " मृत्यु से पहले ही उन्होंने सारी व्यवस्था कर डाली थी और धर्म अभियान की जिम्मेदारी छत्रसाल को तथा धर्म अभियान के इतिहास का काम स्वामी लालदास को सौंप दिया था । लेकिन पं.कृष्णदत्त शास्त्री के मतानुसार यही संभव है कि ये सारी व्यवस्था बाद में ही हुई हो क्योंकि जब उनका धामगमन हुआ तब छत्रसाल "मऊ" में थे।

" चरोचर सर्व संग्रह" में उनकी मृत्यु का समय सं. १७९१ बताया है।

डॉ. रामकुमार वर्माने सं.१७७१ का उल्लेख किया है। डॉ. अंबाशंकर नागरने इनकी अंतिम लीला का समय सन. १९७६ और डॉ.उपाध्यायने १७१४ ई. माना है।<sup>५१</sup>

प्रो. कृष्णमूर्ति अय्यरने शुक्रवार २६ जून इस. १६९४ का समय दिया है ।<sup>५२</sup> आ.परशुराम चतुर्वेदीने कहा है इनका देहान्त सं. १७५१ की श्रावण कृष्णा ३ को रात की पीछली दो घड़ी रहते हो गया।<sup>५३</sup> प्रो. माताबदक जायसवाल के अनुसार १७५१ वि.आषाढ वदी ४ को रात्रि के चार बजे इनकी देहलीला समाप्त हुई । पं. कृष्णदत्त शास्त्रीने वि.स.१७५१ श्रावण तृतीया की रात्री के अंतिम प्रहर में इनका परमधामवास होना बताया है।<sup>५४</sup> हमे श्रीजीलाल शास्त्री, मुरलीदास धामी, पं.कृष्णदत्त शास्त्री का मत ही समीचीन जान पड़ता है।

इसी तिथि को संप्रदाय में मान्यता प्राप्त है। चूं कि रात के बारह नवीन तिथि लगती है। कुछ लोगो ने श्रावण के तृतीया माना और कुछ ने चतुर्थी।

स्वामी लालदासने लिखा है.....

"तिन भई रात घड़ी चौद लो

उपरांत मई चोथ जब

दोई घड़ी बाकी रही

समयो अर्न्तर्धनिको तब।"<sup>५५</sup>

प्रो. अमृत पंड्या, मणिशंकर करशनजी दवे और चरोत्तर सर्वसंग्रह के अनुसार उनकी देहलीला समाप्त जामनगर में थी। उनका परमधाम वास पन्ना में ही हुआ है।

### निष्कर्ष:

अतः हम कह सकते हैं कि महामति का व्यक्तित्व विराट था और चिंतनशैली उन्मुक्त। जिसमें हमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना और उसका संदेश मिलता है। उनको आदर्श चिरंतन सत्रहवीं शताब्दी में जितना महत्वपूर्ण था, उतना ही वह आज भी है महामति केवल प्रणामी संप्रदाय के लिए ही सीमित नहीं वरन सारी मानवता के चिरंतन आदर्श के प्रतीक है। वे भारत वर्ष की समन्वयात्मक संस्कृति की आत्मा हैं जिन पर भारतवर्ष को गौरव और गर्व है।

### कबीर: मृत्यु :

जिस प्रकार कबीर के जन्म के बारे में संगत मत प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार कबीर की मृत्यु के बारे में भी विविध पूर्ववत् है। संवत् १५७५ में मैथिल पंडित से सद्गुरु की चर्चा हुई। पंडितने काशी मोक्षदायिनी और मगहर को गंधे का पुनर्जन्म देनेवाली बताया।

सद्गुरुने कहा सच्चा संत काशी और ऊसर मगहर में फर्क नहीं करता। मनुष्य को अपने कर्म-भक्ति के अनुसार ही मोक्ष अथवा पुनर्जन्म मिलता है। सभी स्थान समान हैं। यह सिद्ध करने हेतु अन्त समय सद्गुरुने काशी से माध शुक्ल एकादशी को मगहर में प्रस्थान किया। वास्तव में सद्गुरु को मगहर का कलंक मिटाना था। जब लोगोंने सद्गुरु के मगहर जाने की बात सुनी तब हजारों लोग सद्गुरु के दर्शन के लिए वहाँ आ पहुँचे। सद्गुरुने मगहर को हराभरा करने हेतु आमी नदी को प्रकट किया लगभग दस महिने सद्गुरु मगहर में रहे और अन्त में.....

" संवत पन्द्रहसो पाँच मगहर कियो मौन,

अगहन सुदी एकादशी रल्लौं पौन मे पौन।<sup>५६</sup>

अन्त में मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष एकादशी को सदगुरु ने अपने हिन्दु-मुस्लमान सभी शिष्यों को अंतिम दिव्य संदेश सुनाया । प्रेम और सौहार्द का वातावरण बनाये रखने के लिए कहा । पश्चात सदगुरु कुटिर में प्रविष्ट हो आसन पर लेट गये। शिष्योंने उनको चादर ओढ़ाई । द्वार बन्द किया। शिष्य बाहर आये । सभी शिष्योंने आँखो से चकाचौंद करनेवाले प्रकाश को आकाश में विलीन होते देख। ।

सभी शिष्य अंतिम क्रिया हेतु विचार करने लगे । हिन्दु अग्निसंस्कार करना चाहते थे और मुसलमान दफ़नविधि करना चाहते थे । थोड़े दिनों में सदगुरु पर अपना अधिकार बताया । वे सदगुरु का अंतिम संदेश भूल गये । दोनों दलों मे युद्ध ठन गया। उसी समय आकाशवाणी हुई "खोलो परदा है नहीं मुरदा युद्ध मिथ्या तुम कर डारी।<sup>५७</sup> यह सुनते ही सब स्तब्ध रह गये । उन्होंने अंदर जाकर देखा चादरको नीचे केवल कमल पुष्पों का ढ़ेरा था शरीर नहीं था। सदगुरु कमल पुष्प पर प्रकट हुए थे। अन्त में कमल पुष्प ही छोड़ गये। सब सदगुरु की महानता जानते थे किन्तु उपदेश भूल गये थे। हिन्दु और मुसलमानों ने चादर और फूलों को आधा-आधा बाँट लिया। हिन्दु शिष्योंने विधिपूर्वक फूलो की समाधि बनवाई, मुसलमानों ने कब्र । आज भी समाधि और कब्र सत्यपुरुष परमात्मा सदगुरु कबीरजी की अंतिम लीला की गवाही देते हुए मानव को प्रेम और एकता का संदेश सुनाती है।

### निष्कर्ष :

इस प्रकार कबीरजी का व्यक्तित्व अत्यंत जटिल एवं महान है। एक और से परम संतोषी, उदार, नीर्भिक बाह्याङ्ग-विरोधी सात्त्विक प्रकृतिवाले संत थे तो दूसरी ओर वे नागपंथियों और योगियों के सिद्धांतो पर भी गहरा विश्वास रखते थे।

आलोच्य संतो के जीवन संबंधी तथ्यों का तुलनात्म अध्ययन :



युगों से मनुष्य धर्म को प्राणस्वरूप मानता रहा है । उसी धार्मिकता को लेकर वह ईश्वर के अस्तित्व एवं स्वरूप के संदर्भ में अपने मंतव्य को व्यक्त करता रहा है।

डॉ. राधा कृष्णने कहा है.....

"धार्मिक अनुभूतियाँ उतनी ही पुरातन है जितना मुस्कुराना और रोना, प्यार करना और क्षमा करना । विचारों की कोई भी गंभीर साधना, विश्वासो की कोई भी खोज, सद्गुणों के अभ्यास का कोई भी गंभीर प्रयत्न ये सब उन्ही श्रोतों से उत्पन्न होते हैं जिनका नाम धर्म है।

भारत के मध्यकालीन इतिहास के हृदयस्थान पर धर्म चिंतन की धारा बहानेवाले भक्तसंत ही विराजित हैं सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, कबीर, नानक आदि। मध्यकालीन संतो एवं भक्तों की कोटि में प्रणामी संप्रदाय के प्रचारक एवं प्रसारक प्राणनाथजी का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

स्वामी प्राणनाथजी का जन्म वि.सं.१६७५ की आश्विन कृष्णा चतुर्दश रविवार के दिन प्रथम प्रहर को हुआ था । उस समय औरंगज़ेब का शासन चल रहा था। भारतीय समाज उस समय हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक वैमनस्य और कटुता के कारण विदीर्ण था। हिन्दु प्रजा को न्याय दिलाने के लिये उसका विरोध किया । इसके लिए वे जेल की सलाखों के पीछे भी रहे हैं । स्वामी प्राणनाथजी से पहले संत कबीरजी का जन्म काशी में हुआ तब सिकंदर लोदी का वंश चल रहा था। सिकंदर के शासन में भी हिन्दुओं के प्रति बहुत ही उदासीनता दिखाई देती थी । हिन्दुप्रजा चैन से कहीं पर भी साँस नहीं ले पाती थी। सिकंदर के समय में भी प्रजा को मार के मुसलमान बनाया जाता था। हिन्दु पंडितों को जेल के पीछे धकेला जाता था। सिकंदर हिन्दुओं के लोगों पर अत्यंत असहिष्णु था । वह हिन्दुओं की प्रजा का बिना कारण ही अनुचित दंड दिया करता था। हिन्दु प्रजा पर उनके अत्याचार और अन्याय दिन ब दिन बढ़ते जा रहे थे।

स्वामी प्राणनाथजी के पिता केशवराय राज्य के प्रधान थे और माता धनबाई अपने परिवार से ही धार्मिक और भक्तिभाव के संस्कार लेकर आई थी। उनके घर का वातावरण पहले से ही धर्ममय था। उसका प्रभाव स्वामी प्राणनाथजी पर पड़ा। जब कि कबीरजी के माता-पिता के बारे में भी किवदन्तियाँ प्रचलित हैं। फिर भी निरू और निमा उनके पालक माता-पिता हैं। जो ब्राह्मण परिवार से हैं, जिन्होंने बड़े जतन से कबीरजी को बड़ा किया। कबीरजी के माता-पिता शिवजी के बड़े भक्त थे, जिसका प्रभाव कबीरजी पर पड़ा और वे भी धर्म में एकलीन हो गए। धर्ममय माहोल होने के कारण कबीरजी पर भक्ति का गहरा प्रभाव रहा है।

स्वामी प्राणनाथजी शिक्षा लेने कहीं नहीं गए। उन्होंने बहुत सारे प्रवास-पर्यटन किये उन्हीं के माध्यम से वे बहुत कुछ आगे निकल आए। पन्ना, अरबसागर, मद्रास आदि जगह पर बार बार पर्यटन करने पर वे बहुत सीख पाए थे और उसीकी वजह से वे धर्मप्रिय भी हो गए थे और कहीं पर भी वे अत्याचार और अन्याय देखते उसका विरोध तुरंत ही करते थे। संत कबीरजी भी कही किसी पाठशाला पढ़ने नहीं गए थे और नाहि उन्होंने कभी कलम या कागज़ हाथ में लिया था। स्वभाव से ही वे सब कर पाये थे। उन्होंने बाह्याचार का विरोध किया, धर्मान्धता, जप-माला, बांग पुकारना, रूढ़ि चुस्त रीतियाँ आदि सब का विरोध करके लोगो को सही राह दी।

स्वामी प्राणनाथजी के गुरु देवचन्द्रजी बचपन में उसके घर आया-जाया करते थे। जिसका गहरा प्रभाव उन पर रहा। १४ वर्ष की अवस्था में गुरु देवचन्द्रजीने तारतम मंत्र की दिशा दी और अपना शिष्य बनाया। कबीरजी के गुरु रामानंदजी थे जो केवल ब्राह्मण के पुत्रों को ही शिष्य बनाते थे परंतु कबीरजी के चमत्कार से उन्होंने जाति-पाँति का भेद छोड़ दिया और कबीरजी को अपना शिष्य बनाया। स्वामी प्राणनाथजी की कोई संतान न होने से उन्होंने छत्रसाल को अपना उत्तराधिकारी बनाया जब कबीरजी ने अपने शिष्य को ही ज्यादा महत्त्व दिया।

स्वामी प्राणनाथजी के वापस पन्ना आने के बाद उसे अपने अंतिम समय का ज्ञान हो चुका था । इसलिए वे रातदिन ब्रह्मज्ञान की चर्चा में ही लगे रहते थे । उन्होंने ने अपने अंतिम दिनों में छत्रसाल को अपना शिष्य बनाया और उसे क्षर, अक्षर और अक्षरातीत ब्रह्म का पूर्ण परिचय कराया। अन्त में उनका परमधामवास पन्ना में ही हुआ। संत कबीरजी का अंतिम समय मगहर बताया गया है। अपने अंतिम दिनों में उन्होंने मुसलमान और हिन्दु लोगों को एकता के सूत्र में बंधे रहने का उपदेश दिया। उन्होंने विविधता का कभी स्वीकार नहीं किया। एकता को महत्त्व देते हुए हिन्दु-मुसलमान को एक साथ रहने का ज्ञान दिया। अपने अंतिम समय में मगहर में उन्होंने हिन्दु-मुसलमान दोनों जाति के लोगों को बुलाकर चादर ओढ़ाने के लिए कहा और प्रकाश के रूप में विलीन हो गये । अन्त में कमल के फूल आधे आधे बाँट लिये । इस तरह दोनों संतो का जीवन साधारण होते हुए भी असाधारण था। लोगों के लिए उनका जीवन प्रेरणास्त्रोत था। दोनों का जीवन-सीधा-सादा और उच्चकोटि का था। जो हमें ब्रह्म का अंश होने का एहसास दिलाता हैं। जो धर्म में डूबे रहने की, ईश्वर की भक्ति करने की राह दिखाता है और प्रेरणा भी देता है।

### **निष्कर्ष :**

इस प्रकार भारत की भिन्न-भिन्न दिशाओं में जन्म होने के बावजूद भी दोनो संतो ने एक ही राह चुनी थी । अपने संप्रदाय के ज्ञान एवं लक्ष्य द्वारा जनता का कल्याण करना, उनके जीवन की राह प्रकाशित करना था। दोनों सन्तो ने अपने अपने युग में जो ज्ञानदर्शन करवाया उनमें बहुत-सा साम्य दिखाई देता है। इन दोनों संतो के जीवन की जानकारी का मुख्य स्त्रोत सांप्रदायिक ग्रंथ ही है । स्वामी प्राणनाथजी के जीवन की जानकारी 'बीतकों' में तथा 'कुलजम स्वरूप' में पायी जाती है तथा संत कबीरजी के जीवन की जानकारी बीजक नामक ग्रंथ से पायी जाती है । दोनों संतो का अंतिम समय आश्रम-जीवन या कुटिर जीवन में ही व्यतीत पाया जाता है। दोनों के जीवन का समय लोगों को धर्म के प्रति आस्था रखने का, उपदेश देने में और ईश्वर की आराधना में बीतता था। संक्षेप में दोनों संतो ने साम्प्रदायिक एकता, मानवता और बंधुत्व की भावना को उजागर किया है।

## प्र.१(ब)आलोच्य संत कवियों-स्वामी प्राणनाथ और कबीर के जीवन को प्रभावित

करनेवाली परिस्थितियाँ ।

### प्रस्तावना:

हिन्दी साहित्य के चार काल माने जाते हैं। आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल। इन चारों कालों का अलग अलग अपना-अपना दृष्टिकोण है । जिसका महत्व भी भिन्न है । मध्यकाल में भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता है। इसका कारण यह है कि उस युग में साहित्य के माध्यम से धर्म का प्रचार-प्रसार विस्तृत रूप से किया गया था। साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में जो परिस्थितियाँ घटित होती हैं । साहित्य में उनका आलेखन हुए बिना नहीं रहता । प्राणनाथजी के व्यक्तित्व और दर्शन को प्रभावित करनेवाली राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का अध्ययन मुख्यतः गुजरात, मध्यभारत तथा बुन्देलखण्ड को दृष्टि में रखते हुए किया गया है । यह परिस्थितियों का विवरण निम्नानुसार दिया गया है ।

### प्राणनाथकालीन :

#### (१) राजनैतिक परिस्थितियाँ :

स्वामी श्री प्राणनाथजी जामनगर राज्य के दिवान रह चके थे । राजनीति के खोखले दावपेंच और षड़यंत्रों से वे स्वयं परेशान हो गये थे । वे नैतिकता रहित राजनीति को प्रजा के साथ छलना समझते थे उनके जमाने की राजकीय परिस्थितियाँ इस प्रकार थी । उनके जमाने में मोगलों का शासन था। मोगल बादशाह येनकेन प्रकारेण राज्य की सीमाएँ, विस्तार बढ़ाने में व्यस्त थे । विस्तार बाद की महत्त्वकांक्षा में राजकीय नीति-नियमों का उल्लंघन होता जा रहा था। मानवता का ह्रास होता था । भारत में उस समय अनेक छोटे-मोटे रजवाड़े अस्तित्व में थे । विस्तारवाद और मिथ्याभिमान से आपस-आपस में युद्ध करते थे। अनेक युद्धों से लोगों की सुखाकारी और सुख चैन खत्म हो चुका था । चारों ओर युद्ध और आक्रमण का वातावरण था। इस्लाम शासन होने के नाते राजकीय न्याय मोगलों के पक्ष में

होता था। मोगल सैनिक और दरबारियों द्वारा लूट, अत्याचार और खाना खराबी की घटनाएँ बनती रहती थी।

उस वक्त की राजकीय परिस्थितियों को मदनजर रखते हुए विमला महेता लिखती हैं कि औरंगज़ेब की धर्म विरोधी नीति के विरुद्ध स्वामी प्राणनाथजीने भारत के समस्त राजाओं को संगठित करने का प्रयत्न किया। औरंगज़ेब की प्रचंड भयावह राजनीति से भयभित हिन्दु राजाओं को संगठित करने में असफल रहे । भारतीय इतिहासों में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसने श्री प्राणनाथजी की भाँति देश के समस्त राजाओं को संगठित करने का विराट प्रयत्न किया हो ।<sup>५८</sup>

विभिन्न राजाओं को संगठित होने की प्रेरणा देकर जागृत करते हुए स्वामी श्री प्राणनाथजी कहते हैं कि.....

राजाने मलो रे रायतणों, धर्म जाता रे कोई दोड़ो,  
जागोने जी राज धारे खड़े रहो, नींद नींगोड़ी रे छोड़ो ।  
छूटत है रे खड़ग क्षत्रियों से धर्ममाज हिन्दुआन  
सत छोड़ो रे सत्यवादियों, जोरबध्यो तुरकान ।।<sup>५९</sup>

मोगलों की नीति रही थी कि किसी भी तरह भारत में उनका शासन बना रहे। इसलिए हिन्दुओं की हर तरह की राजकीय परिस्थितियाँ दबा दी जाती थी । निर्बल राजा का राज्य हड़प करके अपने राज्य सीमाओं में शामिल कर दिया जाता था और शक्तिशाली राजाओं से संबंध जुड़े जाते थे। मोगलों की इस चालबाजी से भारत पर उनका वर्चस्व हो गया था। फिर भी कई शक्तिशाली राजाओं ने अपने सामर्थ्य से अपना राज्य मोगलों की चुंगाल से बचाये रखा था। बुंदेलखंड के महाराजा छत्रसाल ने स्वामी श्री प्राणनाथजी का शिष्यत्व स्वीकार करके उनके मार्गदर्शन में अपना राज्य सही सलामत बनाए रखा था।

बात सुनी रे बुन्देले छत्रसालने  
आगे आये खड़ा के तलवार।

सेवाने लईर सारी सिर खिंच के

सोंईये किया सेनापति सिरदार।।<sup>६०</sup>

संक्षिप्त में देखा जाए तो स्वामी श्री प्राणनाथजी की समयावधि में राजकीय परिस्थितियाँ पूरे मोड़से गुज़र रही थी । मोगल शासन अत्याचारी था और भिन्न भिन्न रजवाड़ों में विभाजित राजाओं में कुसंप था, भारत में युद्धों और लड़ाईयों का माहोल ।

## (२) देशभक्ति परिस्थितियाँ

स्वामी प्राणनाथजी सिर्फ आध्यात्मिक सन्त ही नहीं थे वे तो एक क्रान्तिकारी विचारधारा के प्रणेता भी थे । मध्ययुग की चुस्त परिस्थितियों में एक राष्ट्र के रूप में हिन्दुस्तान की स्तुति करनेवाले वे एक ही सन्त, एक ही नेता थे। उन्होंने अपने युग में अपने देश के आस-पास देशों का पर्यटन किया । उन्होंने अरबस्तान और उसके निकट के प्रदेश को नज़दीक से देखा और उसके बाद उन्होंने भारतवर्ष की भूमि को श्रेष्ठ बताया। भारत की भूमि संतो-महात्माओं की भूमि है, तप, त्याग, एवम् संयम की भूमि है, वेद-ऋचाओं की भूमि है। भारत की इस धरती पर ब्रह्म का ज्ञान सुनाने वाले अनेक महान गुरु अवतीर्ण हुए हैं। आलोच्य दोनों सन्त भी इस धरती के ही सपूत थे ।

प्राणनाथजीने भरतभूमि और इस भूमि के सर्वश्रेष्ठ धर्म हिन्दु धर्म को बहुत चाहा है और वे हिन्दु धर्म को संकीर्ण दीवारों में केद करना नहीं चाहते, इसलिए हिन्दु धर्म के सिद्धांतों से इस्लाम की तुलनाकर उन्होंने धर्म समन्वय का नया पथ हमें इंगित किया। अगर इस समन्वयवादी नीति को हमने उस समय अपनाया होता तो आज शायद धर्म के नाम पर रक्त नहीं बहता।

स्वामी प्राणनाथ छोटे छोटे फिरकों में बंधी हुई मानवजाति को ईन्ही धर्म के संकीर्ण विचारों से मुक्ति देना चाहते थे। इनके साथ-साथ छोटे छोटे साम्राज्यों बटे हुए भारत के एकसूत्र में बाँधना भी चाहते थे । उन्होंने बहुत सारी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया था और बाद में विविध भाषा का उपयोग करके अनेक धर्म विचार प्रवाहित किये जो बाद में देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध होकर ग्रन्थ का रूप पाया गया । उन्होंने भाषा की विभिन्नता को अपनाया लेकिन इसे लिपिबद्ध करने के लिए एकमात्र देवनागरी लिपि का ही उपयोग किया। उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग करके सारे भारतवर्ष की एकता के लिए भाषा की जरूरत को प्राधान्य दिया। शायद इतने बड़े देश की जनता को एकता के सूत्र में पिरोये रखने के लिए एक भाषा की जरूरत महसूस करनेवाले ये प्रथम सन्त थे । उन्होंने अपने इस विचार को प्रकट करते हुए कहा है कि.....

बिना हिसाबे बोलियो मिने सफल जहान ।

सबका सुगम जान के कहूँगी हिन्दुस्तान ।

बड़ी भाषा ऐही भली जो सबमें जाहेर ।

करने पाक सबन को अन्तर मांहे बाहेर।

इन पंक्तियों के द्वारा ही युगदृष्टा स्वामी प्राणनाथने हमें राष्ट्रभाषा की समस्या का सरल उपाय भी दिया था । आज से कई वर्ष पूर्व हमने इस महानुभाव की वाणी को समझ लिया होता तो आज शायद राष्ट्रभाषा की कोई समस्या ही न होती । उन्होंने सारे देश की जनता को वैचारिक एकसूत्र में बाँधने के लिए भाषा को ही अधिक महत्त्व प्रदान किया है।

स्वामी प्राणनाथजी ने अपने उद्देश्य को परिपूर्ण करने के लिए अपने युग की जनता को जो उपदेश दिया इसका सार यो केन्द्रविचार यही है।

### (३) सामाजिक परिस्थितियाँ :

सत्रहवीं शताब्दी में भारत के प्रमुखतः मोगल शासन था। उन दिनों सामाजिक परिस्थिति अच्छी नहीं थी । चातुर्वर्ण व्यवस्था तदुपरान्त वंश परंपरागत वर्णव्यवस्था के विकृत स्वरूप से लोगों में जातिवाद बढ़ गया था। जातिवाद के झगड़ों से लोग परेशान थे । हिन्दु और मुसलमानों में धर्म को लेकर तनाव बढ़ गया था, दुश्मानवट हो गई थी, धार्मिक झगड़े, दंगे फसाद होते रहते थे । मोगल शासन होने से मुसलमान हिन्दुओं पर जोर झुलम करते थे और बलात्कार से भी हिन्दुओं को मुसलमान बनाते थे । हिन्दुओं में ब्राह्मणों का वर्चस्व बढ़ गया था और लोगों को सही धर्म बताने के बजाय कर्मकाण्ड और विधिविधान में लगाकर समाज को गुमराह कर रहे थे । अश्वपृथता से कई लोग परेशान थे।" मध्ययुग में हिन्दु समाजने वर्ण-व्यवस्था को जन्म पर आधारित मानकर अपनी प्रगतिशीलता खो दी।" एक ऐसा सामाजिक माहोल था। जो मानवता के विकास में पूर्णरूपेण बाधक था । लोग भय और आतंक के साये में जीवन व्यतीत कर रहे थे। हिन्दु धर्म अनेक संप्रदायों में बँट गया था और लोगों की श्रद्धा अपने अपने संप्रदाय में व्यक्त होती



थी। परिणाम यह आया कि लोगो में झगड़े होने लगे और एक दूसरे पर सर्वोपरिता स्थापने के लिए संघर्ष पर उतर आए। सामाजिक एकता टुट चुकी थी। पारिवारिक जीवन में स्त्रीयों का महत्त्व कम था, वे अपमानित होकर जीवन जीती थीं। बालविवाह अस्तित्व में था। मुसलमानों के अत्याचारों से बचने के लिए स्त्रीयों में परदा प्रथा थी। स्त्रीयाँ घर की चार दिवारों में बन्द थी।

स्वामी प्राणनाथजी उपरोक्त सामाजिक माहोल देखकर बहुत दुःखी हुए। अश्रुपृथ्वी के बारे में वे लिखा है कि.....

"एक भेष जो विप्रकाव, दूजा भेष चांडाल,  
जाके छूएलोग, ताके संग कौन हावले।  
चांडाल हिरदे निरमल, खेले संग भगवान,  
देखलावे नहीं, काहू की, गोप राखे नाम।"<sup>६१</sup>

श्रीमति बिमला देवी ने लिख है कि.....

"मध्यकालीन अधिकांश संतो' का दृष्टिकोण पारिवारिक जीवन के प्रति नकारात्मक ही बना रहा। किन्तु स्वामी श्री प्राणनाथजी इस दृष्टि से भी अन्य मध्यकालीन संतो से प्रगतिशील तथा उदारवादी हैं।<sup>६२</sup> प्राणनाथजी एक अच्छे समाज सुधारक थे उस वक्त चलते कुरिवाजों पर कुरुढियों पर उन्होंने अनेक कुठाराघात किए हैं।

#### (४) धार्मिक परिस्थितियाँ :

स्वामी प्राणनाथजी के समय में मोगल शासन कर्ता और ईस्लामशाही धर्म था। स्वाभाविक था कि धर्म का वर्चस्व बढ़ाने के लिए दरबारी लोग हो सके इतने प्रयत्न में व्यस्त थे। उन दिनों हिन्दु, इस्लाम और ईसाई मुख्य धर्म प्रचलित थे। ईसाई धर्म का चलन केवल दक्षिण भारत में शुरू हुआ था। इसलिए दक्षिण को छोड़कर पूरे भारत में हिन्दु और इस्लाम धर्म के बीच संघर्ष चल रहा था। स्वामी प्राणनाथजी इसके बारे में लिखते हैं कि....:

"ब्राह्मण कहे हम उत्तम, मुसलमान कहे हम पाक

दोऊ एक ठोर की , एक राख दूजी खाक " <sup>६३</sup>

धार्मिक युद्ध, दंगे -फसाद होते रहते थे। धर्म के आधार पर प्रत्येक कोमों के बीच धार्मिक द्वेष, इर्षा और एक दूसरे के साथ बैरवृत्ति पनप रही थी। गैरमुस्लिमों को काफिर समजा जाता था और जबरदस्ति से उनको मुसलमान बनाए जाते थे । या इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर कतल कर दिये जाते थे। अत्याचार बढ़ गया था। हिन्दु की पूज्य एवं पवित्र गाय का कत्ल किया जाता था। और गौमांस का भक्षण और 'उसका रूधिरपान' किया जाता था। स्वामी श्री प्राणनाथजी लिखते हैं कि.....

"जुलम करे कै जालिम मुर्दी आँस गुमान

खुन करते न डरे, कोई हम मुसलमान।" <sup>६४</sup>

हिन्दु मंदिर तोड़ दिये जाते थे और उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण किया जाता था। अनेक पवित्र मूर्तियों का बेनमून शिल्प कलाकृतियों का खंडन किया जाता था। द्वारका, सोमनाथ और खजूराहों के मंदिर उसका उदाहरण हैं। स्वामी श्री प्राणनाथजी बढ़ते हुए अत्याचार के बारे में कहते हैं। कि "जोर बढ़यों तुरकान ।" <sup>६५</sup> औरंगज़ेब शाही फरमान जाहिर करके नये मंदिरों के निर्माण पर रोक लगा दी थी । धार्मिक स्थानों की यात्रा पर कर वसूली की जाती थी। इसके बारे में दुःख व्यक्त करते हुए स्वामी श्री प्राणनाथजी कहते हैं कि.....

" अमूर लगाए रे हिन्दुओं पर जजिया

वाको मिले नहीं खान पान,

जो गरीब न दे सके जजिया

ता पर मार करे मुसलमान ।" <sup>६६</sup>

हिन्दु की यज्ञयोगादि, पूजा विधियों पर रोक लगा दी थी । दूसरे धर्मों के अलावा अन्य छोटे-छोटे संप्रदाय अस्तित्व में थे। इस कारण से हिन्दु धर्म को अनेक छोटे-छोटे संप्रदायों में बंटवारा हो गया था। धार्मिक संगठन और एकता टूट चूकी थी और सब अपने अपने संप्रदाय को सर्वोपरि सिद्ध करने में एक दूसरे के साथ स्पर्धा में उपर आए थे। हिन्दु के

कर्मकांड और मुस्लिमों की शरीयतने लोगों को कट्टरवादी बना दिया था। इस बारे में स्वामी श्री प्राणनाथजी लिखते हैं कि.....

"दोऊ बन्दे एक साहब के, पर लड़त बिना पाए भेद"<sup>६७</sup>

ऐसे धार्मिक माहोल में स्वामी श्री प्राणनाथजीने सर्व धर्म समानता और धार्मिक एकता के सिद्धांत का निरूपण किया। उन्होंने समजाया कि धर्मों के मूलतत्त्व एक हैं, धार्मिक सिद्धांत भी सभी धर्मों में एक हैं केवल भाषा और देशकाल की भिन्नता से धार्मिक मूल्यों में फर्क नहीं पड़ता। सनातन सत्य अटल और अफल है। इस बात को समझने के लिए वे कहते हैं कि.....

"एक नजरों देखहो" सबका खाविंद पीऊ।"<sup>६८</sup> धार्मिक एकता प्रस्थापित करने में स्वामी श्री प्राणनाथजी प्रशंसनीय प्रयत्न किए थे । ऐसी धार्मिक परिस्थितियों में से नक्सलवाद अस्तित्वमें आया था। रहीम, दादु, नानक, कबीर आदि संतो में धार्मिक एकता की विचारधारावाले सूफीवाद को समर्थन दिया था और तदनुसार तत्कालीन समयानुरूप साहित्यसर्जन भी किया था।

संक्षिप्त में देखा जाए तो स्वामी श्री प्राणनाथजी के समय में धार्मिक परिस्थितियाँ बहुत खराब थी । लोग धार्मिक भय से चिंताग्रस्त थे। धर्म के वास्तविक और सही स्वरूप की पहचान के बिना लोग गुमराह हो गए थे । अंधश्रद्धा, वहेम, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, धार्मिक बाह्याङ्गम्वर जैसे अनिष्टों से लोग प्रभावित थे।

#### (५) आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ :

उस समय की आर्थिक स्थिति शाहजहाँ के समय में तो भारतीय संपत्तिने विदेश के लोगों तक को प्रभावित किया था। बुरखा, फारसी तुर्की, अरब आदि के राजदूत तथा फ्रांस और इटली से आनेवाले यात्रियों आदि आँखों को यहाँ की संपत्ति और ऐश्वर्यने चकाचौंध पैदा कर दी थी । 'कोहिनूर' और 'तखते ताऊस' उनके लिये आश्चर्य की वस्तु थी । औरंगज़ेब के शासन में निरंतर युद्धों में लगे रहने और युद्ध में होनेवाले खर्चों आदि के कारण

उसके शासन के अंतिम काल में आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं रह गयी थी । औरंगज़ेब के समय में १/२ हिस्सा कुल उपज का दे दिया जाता था।

आर्थिक व्यवस्था केवल संतो पर ही निर्भर नहीं थी इसका संबंध व्यापार से भी था। उस समय के व्यापार कताई-बुनाई धातु, कार्य, बढ़ईगीरी, मिट्टी के बर्तन बनाना, चमड़े का काम आदि थे। यह व्यापार छोटे पैमाने पर था जो कि ग्रामोद्योग की व्यवस्था कहा जाता है।

व्यापार बड़े पैमाने पर भी होता था यहाँ कि व्यापारिक वस्तुओं की बहुत ही ख्याति पाप्त थी। व्यापारिक क्षेत्र में कपड़े की मिलों का भी बहुत बड़ा महत्त्व था। गुजरात में मुख्य केन्द्र थे अहमदाबाद और सूरत । पायरार्द (Pyrrard of Lavas) जिसने पूर्वी प्रदेश की यात्रा की थी । भारत के व्यापार और संस्कृति के बारे में लिखते हैं कि खंभात, सूरत तथा अन्य देश भारत के अन्य मार्गों से अच्छे हैं। ये यातायात तथा व्यापार में अन्य भागों को सुविधा प्रदान करते हैं।

इससे स्पष्ट है कि मध्ययुग के बड़े पैमाने पर होनेवाले व्यापार में गुजरात का महत्त्व पूर्ण स्थान था। उस युग में आज की तरह बैंक आदि नहीं थे । धनी व्यापारियों के वर्ग थे जो कि व्यापार में धन लगाते थे और छोटे व्यापारियों की आर्थिक सहायता करते थे।

मोगल शासन के कड़े रूख से स्वामी प्राणनाथजी के समय में सांस्कृतिक गतिविधियाँ कम दिखाई देती थी । धार्मिक भय और तनाव के वातावरण में सूफीवाद की तरह भजन-कीर्तन के घरेलू कार्यक्रम पक्ष योगादि, पूजा-विधि आदि पर रोक लगा दी थी। मनोरंजन के कार्यक्रम भी शायद होते थे। फिर भी कभी कबीर धर्मसभाएँ, धार्मिक गोष्ठियाँ या चर्चा सभाओं का आयोजन होता था। स्वामी श्री प्राणनाथजी हिंमतवान और उच्चकोटि के समाज सुधारक थे । विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी उन्होंने अनेक धार्मिक चर्चा-सभाओं का आयोजन किया था। हिन्दुओं के त्योहार भय के साये में सम्पन्न होते थे और कभी कबीर मेले का आयोजन भी होता था। हरद्वार के कुंभमेले में स्वामी श्री

प्राणनाथजी ने भिन्न-भिन्न लोगों के साथ विचार-विमर्श किया था और तत्त्वज्ञान में सर्वश्रेष्ठ साबित हुए थे।

श्री प्राणनाथजी का आविर्भाव काल सं. १६७५-१७५१ है। इस युग की अधिकांश रचनाएँ धार्मिक प्रेरणा से रची गयी है। धार्मिक प्रेरणा से रचे गए इस काव्य की प्रमुख तीन धाराएँ प्रवाहित हो रही थी जिसमें एक धारा थी मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा कृष्ण के लोकरंजन और लोकरक्षण स्वरूप को लेकर चलनेवाली वैष्णव साहित्य की धारा। दूसरी राम रहीम एक कहकर हिन्दु-मुस्लिम तथा ऊँच-नीच का भेदभाव मिटानेवाली सन्त साहित्य की धारा और तीसरी थी इश्कमिजाजी से इश्क हकीकी की और बहनेवाली सूफी साहित्यकी धारा इन धाराओं के अलावा एक और धारा प्रवाहित हो रही थी वह थी रीति काव्य की। रीतियुगीन साहित्य में कृष्ण के लोकरंजक रूप को ही अधिक महत्त्व मिला है, क्योंकि कृष्ण के इस रूपमें भक्ति के साथ रीतिकालीन साहित्य के मूलतत्त्व श्रृंगारिकता और अलंकार प्रियता के लिए भी स्थान था। श्रृंगारिकता के अलावा इस युग में वीरगाथाओं की भी मंदाकिनी प्रवाहित हो रही थी। मतिराम और बिहारीने श्रृंगारिता के प्रधान काव्य की रचना की है तो शिवराजभूषण शिव बावनी छत्रशाल और शिवाजी) को लेकर वीर काव्य की रचना की।

#### **निष्कर्ष :**

अतः हम कह सकते हैं कि स्वामी प्राणनाथजी का युग ऐसे शासकों का युग था जो विधर्मी था। वे शासक सदा ही हिन्दुओं के प्रति विधर्मी का रवैया अपनाते थे और भारतीय संस्कृति को अपने अनुसार परिवर्तित करना चाहते थे। भारतभूमि न जाने कितने धर्मों, संस्कृतियों को अपने में समेट लिया था। उसी भारत की पवित्र भूमि को ये शासक रक्तकी प्यास और कट्टरता से अपवित्र कर रहे थे। आर्थिक स्थिति उतनी ही धराशाय प्रतीत होती थी।

#### **1.2.2 कबीरकालीन परिस्थितियाँ :**

#### **प्रस्तावना:**

प्रत्येक कवि युगीन परिस्थितियों से अवश्य प्रभावित होता है। जहाँ वह समाज से प्रेरणा ग्रहण करता है वहीं वह समाज को भी प्रभावित करता है। कबीर के व्यक्तित्व-निर्माण में तत्कालीन परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कबीरकालीन परिस्थितियों की रूपरेखा निम्न प्रकार है.....

### (१) राजनैतिक परिस्थितियाँ :

भक्तिकाल का आरंभ मोगल के मुहम्मद बिन तुगलक के राजकाल से होता है। इसके पूर्व देश को अनेकबार विदेशी आक्रमणों को सहना पड़ा जिससे हिन्दु जनता का जीवन दुर्भर हो गया था। जनता तुगलक वंश की योजनाएँ जैसी राजधानी-परिवर्तन, फारसविजय कामना, ताम्र सिक्कों के प्रचार, नृवंश मानवहिंसा आदि के परिणाम भुगत रही थी। इस्लामी शासन के इतिहास में प्रथमवार बादशाह ने ब्राह्मणों पर टैक्स लगाया।<sup>६९</sup> इन्हीं परिस्थितियों में तैमूरलंग का आक्रमण हुआ जिसका उद्देश्य ईस्लाम का प्रचार तथा हिन्दु जनता को विनिष्ट करना था। उसमें असंख्य हिन्दुओं को मौत के धाट उतार दिया। इस युद्ध में भीषण नरसंहार हुआ। जिसकी वेदना से मानवता रो पड़ी। निश्चये ही यह आक्रमण अत्यंत विनाशकारी तथा भयानक था। इतिहासकारों का कहना है कि भारत से लौटते समय उसका एक सिपाही सौ-स्त्री-पुरुष और बच्चों को गुलाम बनाकर ले गया था। इसके पश्चात भी प्रायः सभी क्रूर और सत्तारूढ़ विलासी शासक हुए। कुछ समय के बाद दिल्ली का शासन लोदीवंश के हाथ में चला गया। बहलोल लोदीने देश को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया, किन्तु उसके उत्तराधिकारी सिकंदर लोदी अदूरदर्शी तथा धर्मान्ध सिद्ध हुआ। कबीर इन्हीं के समकालीन थे। उसके अत्याचारों का वर्णन करते हुए किटसने लिखा है कि "ईस्लाम धर्म के प्रवाह में उसका उत्साह इतना अधिक था। कि उसने एक-एक दिन में १५०० हिन्दुओंकी हत्या करवाई।" इन वर्षों का इतिहास भारत के लिये अत्यंत अशांति तथा अनिश्चित परिस्थितियों का इतिहास था। राजनीतिक दृष्टि से इस संपूर्ण काल को अस्थिरता एवं अव्यवस्थाका युग कहा जा सकता है। इस प्रकार समग्र भारत विकेन्द्रित था। छोटे-छोटे राज्यों की भरमार थी जिनके नरेश (राजा) अपने आपको सर्वस्व समझते थे।

दिल्ली पर मुसलमान बादशाहों का शासन था । धीरे-धीरे उन्होंने अपने राज्य का विस्तार दक्षिण तक किया और राजकीय शक्ति को प्रांतीय शासकों के हाथों में बाँट दिया। परिणाम स्वरूप वे राजा अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करने लगे और मालवा, गुजरात, बंगाल आदि में स्वतंत्र रियासत बनी । ऐसे ही बुंदेलखण्ड और उड़ीसा में भी स्वतंत्र राज्य बने । इस तरह राजनीतिक परिस्थितियों प्रायः हिन्दु जाति के लिए हताशा एवं निराशा का कारण बनी।

### सारांश यह है कि....

सारांश यह है कि कुछ अपवादों को छोड़कर दिल्ली के सभी सुलतानों का मूल उद्देश्य काफ़िर की भूमि को इस्लाम की भूमि में बदलना था। परिणाम स्वरूप उनका अधिकांश समय आत्मरक्षा विद्रोह के दमन एवं राज्य तथा धर्म के विस्तार आदि से संबंधित युद्धों में ही व्यतीत होता था। इस्लामकी राजनीतिक गतिविधियों का मुख्य केन्द्र उत्तरी भारत ही रहा था। ऐसी विकट परिस्थितियों में ऐसे उजाले की आवश्यकता थी जो भारतीय जनता की आन-बान एवं धर्म को प्रदीप्त कर सके उस युगमें कबीर को प्रेरित करके कुमार्ग की गहनता से बचा लिया । इस तरह कबीर युगीन राजनीतिक परिस्थितियों में प्रजा को कोई राष्ट्रीय संगठन न था, देश के अधिकांश भाग पर मुसलमानों का शासन रहा । समग्र देश में किसी एक प्रकारकी शासन व्यवस्था का अभाव था।

हिन्दु-मुस्लिम दोनों में जातीय विद्वेष सदियों से चलता आ रहा है। कबीरने दोनों को अध्यात्म के एक धरातल पर लाकर वह विद्वेष कम करने का प्रयत्न किया। उन्होंने उपदेश दिया कि अल्ला-ईश्वर एक ही है और हम दोनों उसकी संतान हैं। इसलिए आपसमें झगड़ना व्यर्थ है। माना जाता है कि कबीर मुसलमान जाति में पैदा हुए थे इसलिए मुसलमान धर्म से वे परिचित थे और हिन्दु संस्कार में वे पले होने के कारण उनको हिन्दु-धर्म का ज्ञान था, दोनों की बुराईयो और ढोंग वे भलीभाँति जानते थे। उनकी निरीक्षण शक्ति सूक्ष्म थी । हिन्दु और मुसलमान दोनों को उन्होंने फिटकार, उनके पाखंडों को, ढोंग का उपहास किया और बाह्याचार का खंडन किया। उनके हाथमें सदा विवेक बुद्धि की तलवार थी । उससे

दोनों के बाह्याचार पर आघात किया। उनकी बुराईयों को हटाकर प्रेम और एकता की भावना की प्रतिस्थापना की।

मुसलमान एकश्वरवादी थे और हिन्दु ब्रह्मवाद में विश्वास रखते थे। हिन्दु अनेक देवाताओं की पूजा करते थे। कबीरजी ने आपसी विद्वेष मिटाने का प्रयत्न किया है। मुसलमान एक ही खुदा को मानते हैं। लेकिन ये सब एक तत्त्व के ही अन्यान्य नाम हैं। कबीरदास का परमेश्वर राम तो घट घट में समा गया है।

इस विश्व में एक ही परब्रह्म व्याप्त है। उसकी उपासना करो। उसको राम कहो, रहीम कहो या अल्लाह कहो लेकिन वह एक सत्य तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। उसमें न कोई हिन्दु है न कोई मुसलमान अतः धार्मिक संघर्ष छोड़कर एक निर्गुणराम का जप करना चाहिए " कहै कबीर एक राम जपहूँ रे हिन्दु तुरक न कोई।" इस प्रकार सर्वत्र एक ही परमात्मा की ओर व्याप्त है। ऐसा उपदेश देकर कबीरदासजी ने देश के प्रति अपनी देशभक्ति प्रस्तुत की है। अपनी देश भक्ति के रूपमें कबीरजीने हिन्दु-मुसलमान दोनों में एकता प्रस्थापित की और आपस में होनेवाले धार्मिक संघर्ष मिटाए। कबीरदास के इस उपदेश तथा प्रयास के फल-स्वरूप अनेक मुसलमान उनके शिष्य हुए और उन्होंने कबीर धारा प्रतिपादित सिद्धांतों का प्रचार किया। इस तरह कबीरजी हिन्दु और मुसलमान दोनों की कट्टरता तथा जातीय विद्वेष की भावना पर बड़ा तीव्र और तीखा आघात करते हुए उन्हें चेताया है कि हिन्दु और मुसलमान में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। एक ही परमज्योति से दोनों उत्पन्न हुए हैं।

" एक बुंद एक मल मूतर, एक चाम एक गूदा

एक ज्योति थे सब उतपना को ब्रह्मन को खुदा।।"<sup>७०</sup>

### (३) सामाजिक परिस्थितियाँ :

कबीरजी के समय में सामाजिक दशा अत्यंत सोचनीय थी। अनिश्चित राजनैतिक परिस्थितियों के कारण जनजीवन अत्याचारों, उत्पीड़न तथा शोषण की करुण-गाथा बन गयी थी। सामाजिक व्यवस्था के रूपमें पनपी वर्णव्यवस्था यवनों के आगमन से और दृढ़



हो गयी । मुसलमानों से अलग रहने के लिए उन्होंने अपने सामाजिक नियमों और विधानों को अधिक कठोर बना लिया। हिन्दुओं में अनेक जातियाँ, उपजातियाँ बन चुकी थी । छोटे बड़े का भेदभाव चरम सीमा पर था। यह समाज और मनुष्यता के लिए अभिशाप सिद्ध हुई । वर्ग-विभाजन की आलोचना करते हुए प्रो. हमायुं कबीरने लिखा है इसके कारण भारतीय जीवन की एकता नष्ट हो गयी। इससे लोकतंत्र के विकास में बाधा पड़ी उच्चवर्णों में इसके कारण दिखावे और अहंकार की भावना पैदा हुई । निम्नवर्गों में इसकी हिनता और दासत्व की भावना को जन्म दिया।<sup>७१</sup> यही नहीं मुसलमानों के आगमन के कारण भारतीय वर्ण-व्यवस्था को धक्का लगा। उच्चवर्ग जहाँ संकीर्णता एवं पाखण्ड में लुप्त हो गया वही बहुत ही अस्पृश्य जातियों ने स्वेच्छया, इस्लाम धर्म को स्वीकार किया । मुस्लिम समाज भी अपनी विलासिता एवं आचरण-हीनता के कारण अवनति के गर्त में ही जा रहा था। यवन जाति इस कालमें अपना पुरुषत्व खोकर आचरण भ्रष्ट हो गयी थी और उसका बाहुबल जिसके आधार पर उसने भारत में प्रमुखता स्थापित की थी, नष्ट हो गया था। दोनों जातियों में धर्म के नाम पर बाह्याचार और आड़म्बर बढ़ रहा था।

समाज में छूआछूत, विधवा-विवाह, भ्रुण-हत्याएँ, वध आदि का अधिकाधिक प्रचलन था। रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में कोई यह नहीं सोचता कि छूआछूत मनुष्यता के लिए घोर पाप है, विधवा-विवाह नहीं होने देना नारीजाति के प्रति अन्याय है कि शूद्र और नारी को वे ही अधिकार मिलने चाहिए जो उच्च वर्ग के पुरुषों को प्राप्त है। समाज में भ्रुण हत्याएँ चलती थी, बालिकाओं का वध चलता था। जहाँ तहाँ सती की प्रथा भी कायम थी और लोग छिपकर नीच जाति की स्त्रियों से संबंध रखते थे। किन्तु इन बातों के खिलाफ समाज में कोई नहीं सोचता था। तीर्थ व्यभिचार के अड्डे बने थे किन्तु इन बातों को रोकने वाला कोई नहीं था।<sup>७२</sup> समाज में नारियों की स्थिति बड़ी सोचनीय थी। उनकी दीन-हीन अवस्था के अतिरिक्त बालविवाह, दहेज-प्रथा अनेक विवाह एवं बहुविवाह जैसी सामाजिक कुरीतियोंने समाज को और भी गंदा कर रखा था। कबीर के समय हिन्दु-समाज व्यवस्था

बहेतर थी। उसमें न तो स्फूर्ति रह गई, नहीं किसी प्रकार का उत्साह यवनों के यहाँ बस जाने से उनमें हेयता और निराशा की भावना घर कर गई थी ।

डॉ. त्रिगुणायत ने इसे रेखांकित करते हुए लिखा है। यवन बादशाहों की स्वेच्छाचारित, अत्याचारों और क्रूरता आदि दानवी वृत्तियों ने हिन्दु जाति को और भी अधिक हेय बना दिया था। उनमें अब न तो स्वाभिमान ही रह गया था और न आत्म-प्रतिष्ठा की भावना ही। मुसलमान बादशाहों द्वारा आमने-समाने अपने उपास्य देवताओं की प्रतिमाओं को तोड़ा जाता देख उनका ईश्वरीय विश्वास भी शिथिल हो चल।<sup>७३</sup>

#### (४) धार्मिक परिस्थितियाँ :

कबीर के समय में धार्मिक स्थिति भी दयनीय थी। उस समय भारतीय धर्म-व्यवस्था अत्यंत अस्तव्यस्त विश्रंखल थी । उपासना-भेद के आधार पर अनेक मत-मतान्तर प्रचलित थे । मुसलमानों के आगमन के साथ ही देश में प्रचलित धार्मिक आंदोलन को दो वर्गों में बाँटा गया। ऊँच जातियों का संबंध वैष्णवधर्म से था और निम्न वर्गों का संबंध वज्रयानी और नाथ-पंथियो से। आचार्य शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्याचार्य, वल्लभाचार्य (११ वी शताब्दी से १४ वी शताब्दी) आदि ने अपने अपने सिद्धांतों के द्वारा भक्ति का प्रचार और प्रसार किया, किन्तु ज्ञातव्य है कि इस भक्ति साधना में भी बाह्याचारो, कर्मकाण्डो की प्रधानता रही है।<sup>७४</sup> धर्म का पवित्र रूप असत्य तथा अंध विश्वासो के आवरण से आच्छादित था। हिन्दुओं में बहुदेवोपासना और मूर्ति-पूजा का प्रचलन बढ़ गया था। बाह्याचार अपनी चरमसीमा पर पहुँच चुका था। मुसलमानों के आगमन के साथ ही हिन्दु धर्म प्रधानतः आचार-प्रवण हो गया था। तीर्थ, व्रत, उपवास और होमाचार की परम्परा ही उसका केन्द्रबिन्दु हो गई थी।<sup>७५</sup> हिन्दु धर्म के साथ ही अन्य धर्मों में भी इस प्रकार की विकृति आई । इस्लाम की सांस्कृतिक मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ। इस्लाम वेदान्त और योग से प्रभावित हुआ। उस समय इस्लाम धर्म में भी बाह्याचारों और अंध विश्वासों का महत्त्व बढ़ता जा रहा था।

निरन्तर पद-दलित और प्रताड़ित जनता पाखण्डों से धिरी हुई थी। योग भी जटांबुट व तिलक तक नहीं सीमित था। समाज अंध-विश्वासों में घिरा हुआ था। डॉ नगेन्द्रने लिखा है: गुह्य साधनों के अंतर्गत कुछ साधनाएँ भी प्रवेश पा गईं। धर्म के नाम पर अनाचार, मिथ्याचार और व्यभिचार तक पनपने लगा। फलस्वरूप ज्ञान-चर्चा की आड़ में पाखण्डों को प्रश्रय मिलने लगा और समाज में एक प्रकार की अराजकता फैल गई।<sup>७६</sup> वास्तविक स्वरूप विलीन हो गया था और उसका स्थान मिथ्या दंभ, पाखण्ड अत्याचार ने लिया था। हिन्दु पत्थरों को पूजते थे, मुसलमान पीर और औलियाँ के निर्देशन में काम कर रहे थे। साधु लोग धर्म के स्तर पर पाखण्डी हो गये थे।

इस तरह समाज में बाह्याचारों, पाखण्डों, अधर्मों अत्याचारों के बढ़ावे को कबीरजी रोकना चाहते थे। उन्होंने इसे रोकने के लिए व्यंग्य विद्याका सहारा लिया। इस विद्याका इस्तेमाल कर उन्होंने एक और समाज की इन विसंगतियों को दूर किया और दूसरी ओर भूमिका के तौर पर मानवधर्म का विकास किया।

#### (५) आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ:

सामाजिक व्यवस्था की आधारभूमि अर्थ है। बाहरी आक्रमण के बने रहने से आर्थिक ढाँचे में भी परिवर्तन आया। ओम प्रकाश केला के शब्दों में जब देश में मुसलमान आक्रमणकारियों का आगमन हुआ तो देश की बैंकिंग-व्यवस्था को आघात पहुँचा। बैंकिंग संस्थाएँ प्रायः नष्ट हो गई थी। यहाँ व्यक्तिगत रूप से महाजनलोग अपना कार्य करते रहे।<sup>७७</sup> कृषकों-मजदूरों तथा निम्नवर्ग के लोगों का शोषण होने लगा। इनके द्वारा श्रम से कमाया हुआ धन कर देने में चला जाता था। जो उच्चवर्ग की विलासिता के लिए था। करो मे वृद्धि से व्यापार का दिवाला निकल गया। इसे स्पष्ट करते हुए श्याम सुन्दरदासने लिखा है कि खेती में खून पसीना एक करनेवाले किसानों की कमाई का आधे से अधिकांश सुल्तानों-सामन्तों, मनसुबेदारों के राजकोष में जाने लगा। प्रजा दाने-दाने को तरसने लगी। सोने-चांदी की तो बात ही क्या, हिन्दुओं के घरों में तांबे पीतल के थाली-लोटे का रहना सुल्तान को खटकने लगा। यही नहीं नौकरियों में इन्हें निम्न पदों पर ही रखा जाता था। जागीरदारी

प्रधाने उद्योग-धंधो को तहस-नहस कर दिया। इस तरह समाज में जटिलता, विषमता और भ्रष्टाचार का बोलबाला होने लगा। इसके कारण समाज को आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा। ऐसी विकराल परिस्थितियों में भारतीय जनता के ऐसे कर्णधार की आवश्यकता थी। जो उनके लिए तिनके का सहारा बन सके। कबीर का जन्म एक ऐसे कर्णधार के रूप में हुआ। कबीर ऐसी युगसंधि काल में पैदा हुए थे, जिससे हिन्दु-मुसलमान आदि जातियों में एक दूसरे के निकट और मिलने की भावना बलवती होती जा रही थी और युग की आवश्यकता भी यही थी। कबीर-काव्य में इन अर्थ संकटों की ध्वनि यदा-तदा सुनाई पड़ती हैं।<sup>७८</sup>

कबीर युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि तद् युगीन जनमानस विदेशियों द्वारा राजनैतिक व सांस्कृतिक प्रतिभाव से त्रस्त था। मुगल राजाओं द्वारा हिन्दु नारियों से विवाह किया जाना, जिसके फलस्वरूप वे भारतीय वातारवरण से संयुक्त रहते थे। वेश परिधान की दृष्टिकोण से दोनों समाजों ने एक दूसरे को प्रभावित किया था। ललित कलाओं से वास्तु निर्माण को छोड़कर अन्य कलाओं ने समन्वयात्मक दृष्टिकोण दिखाई देता है।

साहित्यिक दृष्टि से धार्मिक संघर्ष के युग में लगभग सही संतो एवं विचारकों ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए गद्य को छोड़कर पद्य को अपनाया। काव्य की दृष्टि से प्रबन्ध काव्य, मुक्तक काव्य का प्रचलन था। इस युग का साहित्य हृदय, आत्मा और मन तीनों की तृप्ति करता है, और लोक परलोक दोनों को स्पर्श करता है। अर्थात्-साहित्य सर्जन की दृष्टि से यह बहुत प्रसिद्ध और सम्पन्न युग रहा।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से उत्थान के सारे प्रयत्न किए गए। विवेचन से स्पष्ट है कि कवि और व्यक्ति दोनों ही रूपों में कबीर अपने पूर्ववर्ती और मध्यवर्ती युगीन परिस्थितियों से प्रभावित रहे और विदेशी शासकों के नीचे दबी मृतप्रायः संस्कृति को प्राणवान बनाने का कार्य कबीर व अन्य कवियों ने किया जिसका सहज स्वरूप उनके काव्य में प्राप्त होता है।

## निष्कर्षतः

हम कह सकते हैं कि कबीरने जीवन के सभी स्तरों में क्रान्ति के रमणीय बीज बोये उन्हें सींचा और पल्लवित किया। इनसे अनेक विराटकाय वृक्षों का जन्म हुआ, जिनकी अनुभूति की छाया में आज भी अनेक पथभ्रष्ट आत्माएँ आलोक की किरणें देखती हैं ऐसे समवक्ता मसीहा कबीर युगद्रष्टा और युग भोक्ता कवि थे ।

## आलोच्य संतों के जीवन को प्रभावित करनेवाली परिस्थितियों की तुलना :

स्वामी प्राणनाथ एवम् संत कबीर युगीन परिस्थितियों में काफ़ि अंतर हैं। इतिहास के काल प्रवाह में इतना समय मध्यकाल में कोई मायने नहीं रखता फिर भी राजनैतिक परिस्थितियों में स्वामी प्राणनाथ का समय मुगल शासकों का समय था। बाबर और हुमायूँ के पश्चात् अकबर के शासन काल में भारत का अधिकांश हिस्सा अकबर की केन्द्रीय सत्ता के अंतर्गत था। कबीर का समय सल्तनत काल का समय था। सैयद वंश और लोदीवंश के राज्यकाल में बनारस में रहते थे और लगभग उत्तर भारत की यात्रा करते थे। सिकंदर लोदीने उन्हें हाथी से कुचलवाने तथा हाथ-पैर बाँधकर नदी में डालने का प्रयत्न किया था, ऐसी किवदंतियाँ मिलती हैं। वह समय राजनैतिक अस्थिरता का समय था। भारतीय शासक इस्लाम सल्तन से लड़ रहे थे।<sup>७९</sup>

अकबर धार्मिक सहिष्णु व्यक्ति था। वह हिन्दु प्रजा तथा हिन्दु धर्म का आदर करता था। राजपूत शासकों के साथ उसने वैवाहिक संबंध स्थापित किये थे। अतः अकबर के पश्चात् जहाँगीर तथा शाहजहाँ के शासक काल में यही नीति बनी रही यद्यपि राजस्थान में हल्दीघाटी तथा गुजरात में भुचर मोरी के विनाशकारी युद्ध अकबर के सामने राजपूतों द्वारा लड़े गये फिर भी यह युग अपेक्षाकृत शांति का युग था। प्राणनाथ का समय जहाँगीर और शाहजहाँ का शासन काल है। इस काल में संगीत तथा ललित कलाओं की उन्नति हुई है फिर भी प्रजा सुखी थी। ऐसा कहना कठिन है पर शांति का काल अवश्य था। इसीलिए कबीर की तरह प्राणनाथ के साहित्य में खंडन की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कम है।

सामाजिक परिस्थितियों को दृष्टि से देखे तो प्राणनाथ और युग परिवेश में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं दिखाई देता। समाज की अच्छाई-बुराई जो सल्तनतकाल में थी वह मुगलकाल में भी थी। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सल्तनतकाल में हिन्दु मुस्लिम धर्मों में जो वैमनस्य रहा होगा वह मुगल काल में अपेक्षाकृत कम था। पर यह भी हकीकत है कि हिन्दु प्रजा में जातियों के बंधन अपेक्षाकृत उत्तरोत्तर कठोर होते जा रहे थे। धीरे धीरे हिन्दु मुसलमान न बन जाये इसीलिए हिन्दु अपने जाति एवम् छुआछुत के दायरें संकुचित किये जा रहे थे। इसलिए जहाँ कबीरने हिन्दु मुसलमानों को साथ में रहने तथा भाईचारे को बढ़ाने की जो बात अपने साहित्य में की है। इसी प्रकार प्राणनाथ तथा कबीर युगीन परिस्थितियों में भी कोई विशेष अंतर नहीं है। कबीरने धार्मिक दृष्टि से हिन्दु एवम् मुसलमान के पंडित, मुल्ला-मौलवी आदि के कट्टरताके लिये लताड़ा है, राम और रहिम में कोई अंतर नहीं है। यही बात प्राणनाथ भी अपने एकाधिक पद में करते हैं।

धार्मिक अंधविश्वासों एवम्, बुराईयों के विषय में दोनों कवियों ने लिखा है। कबीर हिन्दु और मुसलमान दोनों धर्मों से समान रूप से जुड़े हुए थे। अतः उन्होंने हिन्दु और मुसलमान दोनों समान रूप से धार्मिक बुराईयों और अंध विश्वासों के प्रति जागृत किया है। प्राणनाथ का संबंध जैन धर्म से था वे जैन धर्म के खरतरगच्छ पंथ में दीक्षित थे। अतः उन्होंने तत्कालीन जैन धर्म में फैली हुई बुराईयों के विषय में अपने स्तवनों में पर्याप्त लिखा है। कुल मिलकर हम कह सकते हैं कि हमारे दोनों आलोच्य कवि अपने समय के प्रति पूर्ण जागरूक थे। जिन परिवेश और परिस्थितियों में जीए उसका प्रभाव उनकी रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्राणनाथ की अपेक्षा कबीर समाज एवं धार्मिक कुरीतियों के प्रति अधिक जागरूक प्रतीत होते हैं। इसका कारण दोनों कवियों की धार्मिक परिस्थितियों में अंतर है। कबीर किसी धर्म में नहीं मानते थे न दीक्षित थे कबीरका धर्म मानवधर्म था। इसलिए उन्होंने हिन्दु और मुसलमान दोनों धर्म की बुराईयों पर समान रूप से प्रहार किये हैं। जब कि प्राणनाथ जैन धर्म में दीक्षित हैं उसमें उनका विश्वास है अतः वे उस धर्म की बुराईयों के प्रति जागरूकता के कारण निर्देश करते हैं।<sup>६०</sup>

भारतवर्ष धर्म प्राणदेश रहा है। इसके मध्यकालीन इतिहास के हृदयस्थान पर धर्म-चिंतन एवं भक्ति की धारा बहानेवाले संत कवियों में स्वामी प्राणनाथ और संत कबीरदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जब हम उक्त कवि हृदय के व्यक्तित्व की बात करते हैं तो उसमें आनुवांशिकता परिवार, समाज तथा उनके विचार एवं संस्कार महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति विशेष के जीवन से संबंधित वंश, जाति, गुरु व्यवसाय, पर्यटन आदि सभी तत्त्वों से जीवनवृत्त और जीवन वृत्त व्यक्तित्व का पता लगता है। लेकिन हमारे देश की परंपरा रही है की संत भक्त कवि मनीषियों ने 'पर' के विषय में लिखा है परंतु 'स्व' के विषय में कम लिखा है। कहने का तात्पर्य यह है कि मध्यकालीन अन्य संत, भक्तों एवं कवियों की भाँति स्वामी प्राणनाथ एवं संत कबीरजी ने भी अपने विषय में कुछ नहीं लिखा। फिर भी उनके जीवन के संदर्भ में थोड़ी बहुत किवदंतियाँ, भावना शील भक्तों की महिमा, कथाएँ और कुछ प्रसंगवश अंतःसाक्ष्यों, उल्लेखों के आधार पर परिस्थितियों की रेखाएँ खींची है।

### **निष्कर्ष:**

अतःनिष्कर्षतः कहना चाहे तो कह सकते हैं कि हमारे आलोच्य संत कवि स्वामी प्राणनाथजी एवम् कबीरजी का जितना भी साहित्य उपलब्ध हुआ उसका अनुसंधक के द्वारा गहन अध्ययन करने पर उपर्युक्त राजनैतिक, देशभक्ति, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों परिलक्षित होती है। इन परिस्थितियों के गहन अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि दोनों संत कवियों के समय की राजनैतिक, देशभक्ति, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियाँ आम जनता के बिलकुल विरुद्ध थी। ऐसी स्थिति में इन संत कवियों ने अपनी भक्ति के साहित्य के माध्यम से जनता का उत्थान करने का सधन प्रयास किया। यद्यपि तत्कालीन समय मुस्लिम शासकों का समय था। ऐसे में हिन्दु धर्म और उसके रीत-रिवाज दबे से मालूम होते थे। साथ ही साथ हिन्दु धर्म की आड़ में अपने ही पाँव पर कुहाड़ी मारने का कार्य तत्कालीन जनताने किया हो ऐसा प्रतीत होता है। जिसका ज्ञानरूप उपचार इन संतो ने करने का प्रयास किया है।





## प्रथम अध्याय

| क्रम | पुस्तक का नाम                                      | लेखक का नाम          | प्रकाशन वर्ष                | पृ.नं. |
|------|--|----------------------|-----------------------------|--------|
| १    | मति गणनाथ एवं प्रणामी संप्रदाय                     | डॉ. एस. पी. मुखरया,  | श्री ५-नवतनपुरी धाम -जामनगर | पृ-१   |
| २    | स्वामी प्राणनाथ एवं गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा - | प्रकाशन वर्ष -१९९६ ईलाहाबाद | पृ-१४  |
| ३    | स्वामी प्राणनाथ एवं गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा   | प्रकाशन वर्ष -१९९६ ईलाहाबाद | पृ-१४  |
| ४    | प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य                      | डॉ. नरेश पंडया       | पोरबंदर                     | पृ-१८  |
| ५    | प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य                      | डॉ. नरेश पंडया       | पोरबंदर                     | पृ-१८  |
| ६    | प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य                      | डॉ. नरेश पंडया       | पोरबंदर                     | पृ-१८  |
| ७    | स्वामी प्राणनाथ एवं गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा   | प्रकाशन वर्ष -१९९६ ईलाहाबाद | पृ-१४  |
| ८    | स्वामी प्राणनाथ एवं गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा   | प्रकाशन वर्ष -१९९६ ईलाहाबाद | पृ-४   |
| ९    | प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य                      | डॉ. नरेश पंडया       | पोरबंदर                     | पृ-२०  |
| १०   | स्वामी प्राणनाथ एवं गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा   | प्रकाशन वर्ष -१९९६ ईलाहाबाद | पृ-१५  |
| ११   | स्वामी प्राणनाथ एवं गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा   | प्रकाशन वर्ष -१९९६ ईलाहाबाद | पृ-१५  |
| १२   | प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य                      | डॉ. नरेश पंडया       | पोरबंदर                     | पृ-२१  |
| १३   | प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य                      | डॉ. नरेश पंडया       | पोरबंदर                     | पृ-२१  |
| १४   | कबीर पदावली :                                      | निर्देशिका :         | शोध - छात्रा - ९            | पृ-१   |



|  |  |        |                  |  |
|--|--|--------|------------------|--|
|  |  | पौराणा | सौ. युनि. राजकोट |  |
|--|--|--------|------------------|--|

|    |  |                                     |   |       |
|----|--|-------------------------------------|---|-------|
| २८ | प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य                      | डॉ. नरेश पंडया                      | पोरबंदर   | पृ-२३ |
| २९ | स्वामी प्राणनाथ एवं गुरूनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा                  | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद                          | पृ-२१ |
| ३० | स्वामी प्राणनाथ एवं गुरूनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा                  | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद                          | पृ-२० |
| ३१ | स्वामी प्राणनाथ एवं गुरूनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा                  | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद                          | पृ-२१ |
| ३२ | कबीर पदावली : एक अध्ययन                            | निर्देशिका :<br>डॉ. सुधा सी. पौराणा | शोध - छात्रा - ९<br>देवी आर. वाला -<br>सौ. युनि. राजकोट | पृ-०८ |
| ३३ | कबीर पदावली : एक अध्ययन                            | निर्देशिका :<br>डॉ. सुधा सी. पौराणा | शोध - छात्रा - ९<br>देवी आर. वाला -<br>सौ. युनि. राजकोट | पृ-०९ |
| ३४ | कबीर पदावली : एक तुलनात्मक अध्ययन                  | निर्देशिका :<br>डॉ. सुधा सी. पौराणा | शोध - छात्रा - ९<br>देवी आर. वाला -<br>सौ. युनि. राजकोट | पृ-११ |
| ३५ | कबीर पदावली : एक तुलनात्मक अध्ययन                  | निर्देशिका :<br>डॉ. सुधा सी. पौराणा | शोध - छात्रा - ९<br>देवी आर. वाला -<br>सौ. युनि. राजकोट | पृ-११ |
| ३५ | स्वामी प्राणनाथ एवं गुरू नानक                      | डॉ. सुधा सी. पौराणा                 |   | पृ-२४ |
| ३६ | प्रणामी संप्रदाय एवं साहित्य                       | डॉ. हसुता सेदाणी                    | मातृश्री महिला कॉलेज,<br>राजकोट                         | पृ-२५ |
| ३७ | प्रणामी संप्रदाय एवं साहित्य                       | डॉ. हसुता सेदाणी                    | मातृश्री महिला कॉलेज,                                   | पृ-०५ |

|    |                              |  |   |       |
|----|------------------------------|--|---|-------|
|    |                              |  | राजकोट  |       |
| ३८ | प्रणामी संप्रदाय एवं साहित्य | डॉ. हसुता सेदाणी                       | मातृश्री महिला कॉलेज,<br>राजकोट                         | पृ-२६ |
| ३९ | प्रणामी संप्रदाय एवं साहित्य | डॉ. हसुता सेदाणी                       | मातृश्री महिला कॉलेज,<br>राजकोट                         | पृ-२६ |
| ४० | प्रणामी संप्रदाय एवं साहित्य | डॉ. हसुता सेदाणी                       | मातृश्री महिला कॉलेज,<br>राजकोट                         | पृ-२६ |
| ४१ | प्रणामी संप्रदाय एवं साहित्य | डॉ. हसुता सेदाणी                       | मातृश्री महिला कॉलेज,<br>राजकोट                         | पृ-२६ |
| ४२ | प्रणामी संप्रदाय एवं साहित्य | डॉ. हसुता सेदाणी                       | मातृश्री महिला कॉलेज,<br>राजकोट                         | पृ-२६ |
| ४३ | कबीर पदावली :<br>एक अध्ययन   | निर्देशिका :<br>डॉ. सुधा सी.<br>पौराणा | शोध - छात्रा - ९<br>देवी आर. वाला -<br>सौ. युनि. राजकोट | पृ-१२ |
| ४४ | कबीर पदावली :<br>एक अध्ययन   | निर्देशिका :<br>डॉ. सुधा सी.<br>पौराणा | शोध - छात्रा - ९<br>देवी आर. वाला -<br>सौ. युनि. राजकोट | पृ-१३ |
| ४५ | कबीर पदावली                  | निर्देशिका :<br>डॉ. सुधा सी.<br>पौराणा | शोध - छात्रा - ९<br>देवी आर. वाला -<br>सौ. युनि. राजकोट | पृ-१३ |
| ४६ | कबीर पदावली :<br>एक अध्ययन   | निर्देशिका :<br>डॉ. सुधा सी.<br>पौराणा | शोध - छात्रा - ९<br>देवी आर. वाला -<br>सौ. युनि. राजकोट | पृ-१३ |
| ४७ | कबीर पदावली :<br>एक अध्ययन   | निर्देशिका :<br>डॉ. सुधा सी.<br>पौराणा | शोध - छात्रा - ९<br>देवी आर. वाला -<br>सौ. युनि. राजकोट | पृ-१४ |

|    |   |  |   |        |
|----|---|--|---|--------|
|    |   |  |   |        |
| ४८ | महाराजा छत्रसाल बुंदेला                           | डॉ. भगवानदास गुप्त                     | आग्रा   | पृ-१०६ |
| ४९ | स्वामी प्राणनाथ और प्रणामी संप्रदाय               | डॉ. नरेश पंडया                         | पोरबंदर   |        |
| ५० | स्वामी प्राणनाथ और प्रणामी संप्रदाय               | डॉ. नरेश पंडया                         | पोरबंदर   |        |
| ५२ | स्वामी प्राणनाथ और प्रणामी संप्रदाय               | डॉ. नरेश पंडया                         | पोरबंदर   |        |
| ५३ | स्वामी प्राणनाथ और प्रणामी संप्रदाय               | डॉ. नरेश पंडया                         | पोरबंदर   |        |
| ५४ | स्वामी प्राणनाथ और प्रणामी संप्रदाय               | डॉ. नरेश पंडया                         | पोरबंदर   |        |
| ५५ | स्वामी प्राणनाथ और प्रणामी संप्रदाय               | डॉ. नरेश पंडया                         | पोरबंदर   |        |
| ५६ | स्वामी प्राणनाथ और गुरूनानक : एक तुलनात्मक अभ्यास | डॉ. सुधाबहन पौराणा                     | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद  | पृ-३०  |
| ५७ | कबीर और जायसी:<br>एक तुलनात्मक अभ्यास             | शोधछात्र तस्लीम प्रा. ला.प.            |   | पृ-५   |
| ५८ | कबीर पदावली :<br>एक अध्ययन                        | निर्देशिका :<br>डॉ. सुधा सी.<br>पौराणा | शोध - छात्रा - ९<br>देवी आर. वाला -<br>सौ. युनि. राजकोट                     | पृ-१५  |
| ५९ | कबीर और जायसी : एक तुलनात्मक अभ्यास               | शोधछात्र तस्लीम प्रा. ला.प.            |   | पृ-५   |
| ६० | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता       | पंडया अस्मिता एम.                      | डॉ. एस.पी. शर्मा,<br>रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.<br>वि. - राजकोट | पृ-२८  |
| ६१ | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता       | पंडया अस्मिता एम.                      | डॉ. एस.पी. शर्मा,<br>रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.                 | पृ-२९  |

|    |   |                   |   |       |
|----|---|-------------------|---|-------|
|    |   |                   | वि. - राजकोट  |       |
| ६२ | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता | पंडया अस्मिता एम. | डॉ. एस.पी. शर्मा,<br>रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.<br>वि. - राजकोट | पृ-२९ |
| ६३ | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता | पंडया अस्मिता एम. | डॉ. एस.पी. शर्मा,<br>रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.<br>वि. - राजकोट | पृ-२९ |
| ६४ | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता | पंडया अस्मिता एम. | डॉ. एस.पी. शर्मा,<br>रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.<br>वि. - राजकोट | पृ-२७ |
| ६५ | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता | पंडया अस्मिता एम. | डॉ. एस.पी. शर्मा,<br>रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.<br>वि. - राजकोट | पृ-२८ |
| ६६ | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता | पंडया अस्मिता एम. | डॉ. एस.पी. शर्मा,<br>रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.<br>वि. - राजकोट | पृ-३० |
| ६७ | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता | पंडया अस्मिता एम. | रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.<br>वि. - राजकोट                      | पृ-३० |
| ६८ | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता | पंडया अस्मिता एम. | डॉ. एस.पी. शर्मा,<br>रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.<br>वि. - राजकोट | पृ-३० |
| ६९ | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता | पंडया अस्मिता एम. | डॉ. एस.पी. शर्मा,<br>रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.<br>वि. - राजकोट | पृ-३१ |

|    |   |                          |   |       |
|----|---|--------------------------|---|-------|
| ७० | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता | पंडया अस्मिता एम.        | डॉ. एस.पी. शर्मा,<br>रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.<br>वि. - राजकोट | पृ-३१ |
| ७१ | स्वामी प्राणनाथजी के काव्य में धार्मिक एकता | पंडया अस्मिता एम.        | डॉ. एस.पी. शर्मा,<br>रीडर एवं अध्यक्ष<br>हिन्दी भवन सौ. वि.<br>वि. - राजकोट | पृ-३१ |
| ७२ | कबीर " वाङ्मय", "में व्यंग्य" का स्वरूप     | डॉ. श्रीमति प्रतिभासिंह  | मध्यप्रदेश  | पृ-३२ |
| ७३ | कबीर " वाङ्मय", "में व्यंग्य" का स्वरूप     | डॉ. श्रीमति प्रतिभासिंह  | मध्यप्रदेश  | पृ-२२ |
| ७४ | कबीर सचित्र जीवन दर्शन                      | महंत श्री जगदीश शास्त्री | जामनगर  | पृ-७८ |
| ७५ | कबीर वाङ्मय में व्यंग्य का स्वरूप           | डॉ. श्रीमति प्रतिभासिंह  | मध्यप्रदेश  | पृ-१९ |
| ७६ | कबीर वाङ्मय में व्यंग्य का स्वरूप           | डॉ. श्रीमति प्रतिभासिंह  | मध्यप्रदेश  | पृ-२० |
| ७७ | कबीर वाङ्मय में व्यंग्य का स्वरूप           | डॉ. श्रीमति प्रतिभासिंह  | मध्यप्रदेश  | पृ-२० |
| ७८ | कबीर वाङ्मय में व्यंग्य का स्वरूप           | डॉ. श्रीमति प्रतिभासिंह  | मध्यप्रदेश  | पृ-२२ |
| ७९ | कबीर वाङ्मय में व्यंग्य का स्वरूप           | डॉ. श्रीमति प्रतिभासिंह  | मध्यप्रदेश  | पृ-२३ |
| ८० | कबीर वाङ्मय में व्यंग्य का स्वरूप           | डॉ. श्रीमति प्रतिभासिंह  | मध्यप्रदेश  | पृ-२३ |



## द्वितीय अध्याय

### प्र.२.१ आलोच्य संत कवियों का संप्रदाय और साहित्य का संक्षिप्त परिचय :

महामतिने तत्कालीन सभी धर्मों का तुलनात्मक अध्ययनकर एक नवीन समन्वयवादी संप्रदाय का प्रवर्तन किया जिसे 'प्रणामी संप्रदाय' कहते हैं।<sup>१</sup> हिन्दु दर्शन और हिन्दु धर्म के सिद्धांतों से कई संप्रदायों को प्रेरणा मिली है। हिन्दुत्व का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उनके वेदकाव्य और वेद दर्शन है। भारतीय दर्शन में देवताओं की महिमा घटी और बढ़ती होगी परंतु वेदों का मूल स्तोत्र वेदपाठ अखण्डित और अक्षत रहा। वेदों की कथाओं से ही उपनिषदों को पोषण मिला। दार्शनिक औचित्य प्राप्त हुआ और हिन्दु जनता को नैतिक आचार-संहिता के काव्य प्राप्त हुए। वैदिककाल से आजतक भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक चिन्तन में अनेक परिवर्तन आए। इन वैचारिक परिवर्तनों के कारण ही धर्मभावना एवं भक्ति-भावना का विकास हुआ। जैसे-जैसे समय बीतता गया, त्यों-त्यों लोग कठिन एवं जटिल, दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धांतों को समझने में असमर्थ होने लगे।<sup>२</sup> इसलिए सहज ही मानवीय संवेदना के श्रोत से ही भक्ति की धारा निष्पन्न हुई।

भक्ति मानवहृदय की संवेदनाओं की उन्मुक्त अभिव्यक्ति है। धर्म मनुष्य की आत्मा का व्यापार है। इसलिए कोई भी धर्म भक्ति रहित हो, ऐसा संभव नहीं। भारत की धर्म-भावना पर विभिन्न विचारधारा के संप्रदायों का प्रभाव पड़ा है। वैदिक युग से आजतक अनेक संप्रदाय बने और बिखर भी गए होंगे, परंतु सभी संप्रदायों ने परमेश्वर भक्ति का ही संदेश दिया है। प्रेम और श्रद्धा का समन्वय ही भक्ति है। परमात्मा के प्रति हृदय की आकुलता - विह्वलता ही अजस्त्र धाराओं में प्रवाहित होती है। श्रद्धा का सहारा पाकर ही यही विह्वलता भक्ति में परिणत होती है। इसलिए भक्ति का होना ही आवश्यक है। ऋग्वेद संहिता एवं पुराणों में देवों की स्तुति दी गयी है, वह भक्ति का ही आविर्भाव है।<sup>३</sup> उपनिषदों में यही धर्म-भावना उपासना के चिन्तन में कर्म के ज्ञान में और धर्म स्थूल से सूक्ष्म

में परिणत हुई थी जिसमें भक्ति-भावना के उन्मेष के लिए और भी कम स्थान रह गया । यज्ञादि कर्मकाण्ड के धर्म में श्रद्धा के लिए तो स्थान था परंतु अद्वैत चिन्तन में वह भी न रहा । इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर उपनिषदों तक के धार्मिक साहित्य में क्रमशः कर्म और ज्ञान का ही विकास मिलता है। वहाँ भावनाओं का उन्मेष नहीं हो सका, फिर भी श्वेताश्वेतर उपनिषद में भक्ति प्रेमपरक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।<sup>४</sup> नास्तिक धर्म के रूप में प्रथम जैन धर्म का आविर्भाव हुआ, जिसकी स्थापना प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने की थी । बाद में अनेक तीर्थंकर हुए जिसने इस धर्म को जीवित रखा । षष्ठि शताब्दी में महावीर ने इस धर्म के उपदेश में नवचेतन का संचार किया ।

जैन दर्शन सत्य की खोज के लिए तत्पर रहा है । जैन धर्म के अनुसार मानवी आत्महनन के द्वारा षट्‌रिपु, अहम्, लोभ, मोह, माया, काम, क्रोध को जीत सकते हैं । अहम् को जीतने से मानवी स्थितप्रज्ञ हो सकते हैं और इससे समभाव और शान्ति मिलती है । वर्धमान दीक्षा प्राप्ति के बाद कामना, क्रोध, अहंकार का हनन कर क्षमाशील बने, इसलिए वे महावीर कहलाए । उन्होंने वैराग्य, अहिंसा और सत्य का पैगाम दिया । मांसाहार, मदिरा और बाह्याचार बन्द करवाये । स्त्री को दीक्षा देना शुरू किया । अपने धर्म में पांच महाव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षावृत्त एवं चार भावनाओं की स्थापना कर धर्म को ठोस रूप प्रदान किया । प्रा. याकोबी ने कर्मवाद को जैनों का मौलिक और महत्त्वपूर्ण आविष्कार माना है ।<sup>५</sup>

जैन दर्शन के ४५ शास्त्र हैं, जो आगम के नाम से पहचाने जाते हैं । महावीर के निर्वाण के बाद १६० वर्ष बाद अकाल पड़ा । इस अकाल की चिन्ता में ज्ञान लुप्त होने लगा । तब सारे सन्यासी पाटलिपुत्र में एकत्र हुए और जो ज्ञान कंठस्थ था इसे ग्रन्थस्थ कर लिया । जैन साहित्य में काव्यग्रन्थ, गणितग्रन्थ, आध्यात्मिकग्रन्थ, न्यायग्रन्थ इत्यादि लिखे गये हैं । जैन विशाल एवं लोकयोग्य साहित्य के सर्जनहार हैं । कल्पसूत्र जैन गीता है । नवकारमंत्र के ९-पद जैनियों की प्रार्थना हैं ।

इसके बाद बौद्धधर्म का आविर्भाव हुआ । इस धर्मने निर्वाण की अपेक्षा भक्ति पर बल दिया । बुद्ध को सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार किया । परंतु यदि बुद्धत्व पद का अधिकारी व्यक्ति सचमुच निर्वाण को स्वीकार करके बुद्ध हो जाए तो सांसारिक जीवों को सन्मार्ग की ओर प्रेरणा देनेवाला कोई न रहता, इसलिए बोधिसत्त्वों की कल्पना करके इस अभाव को पूरा कर दिया । इस धर्म ने बोधिसत्त्वों की पूजा-विधि का अन्वेषण किया । बौद्धों का प्रभाव पश्चिमोत्तर भारत तथा मध्य प्रदेश में अधिक था परंतु ब्राह्मणों एवं दार्शनिकों से सतत संघर्ष चलते रहने के कारण क्रमशः बौद्ध धर्म का प्रभाव घटता गया ।

**चार्वाक या लोकायतन संप्रदाय :** चार्वाक संप्रदाय की शुरुआत चार्वाक मुनिने की थी । इस संप्रदाय का दूसरा नाम लोकायतन संप्रदाय भी प्रचलित है । चार्वाक मुनिने आत्मा की अमरता का विरोध किया । उन्होंने देहविलय के साथ ही आत्मा के विलय होने की बात कहते हुए इस संसार को और सांसारिक जीवन को ही सर्वस्व माना । उन्होंने 'ऋण कृत्वा धृत्तम पिबेत्' का स्वमत प्रकट किया परंतु इस नास्तिक विचारधारा को भारतीय संस्कृति स्वीकार न कर सकी और नास्तिक कहकर ठुकरा दिया ।

भारतीय हिन्दु धर्म में कई संप्रदायों का आविर्भाव हुआ था जो आस्तिक संप्रदायों के रूप में पहचाने जाते हैं । भागवत् धर्म का योगदान भक्ति के संदर्भ में महत्वपूर्ण माना गया है । स्वयं नारायण भगवानने इसे प्रेरित करके इस धर्म का संदेश नारद को दिया । नारद से यह ज्ञान व्यासने पाया और व्यासने संसार को इस धर्म का संदेश उस समय दिया जब कि विश्व के इतिहास का प्रारंभ भी नहीं हुआ था ।<sup>६</sup> "भगवद्गीता में कृष्णने कहा है कि "देवर्षीणां च नारदः" अर्थात् ऋषियों में मैं नारद हूँ ।<sup>७</sup> 'भागवत्' में भी नारद को विष्णु का तीसरा अवतार होना स्वीकार किया है । भगवानने स्वयं इस रूप में अवतार धारण करके स्वातंत्र्य का उपदेश दिया । जिसमें कर्मों के द्वारा, कर्म बंधन से मुक्ति पाने का मार्ग बताया गया है । भगवान श्रीकृष्णने ज्ञान और कर्म की उपेक्षा नहीं की, परंतु प्रेम, श्रद्धा, भावना और समर्पण भाव को इतना ऊँचा उठाया कि कर्म और ज्ञान का पीछे रह जाना स्वाभाविक हो गया । गीता का कर्मयोग कहता है कि मन की भावना पर कर्ममूल्य आधारित रहता है ।

इस प्रकार श्रद्धा, विश्वास और भक्ति की शुरुआत महाभारत युग से मानी जाती है । श्रीमद्भागवत में भक्ति के अंकुर स्पष्टतया मिलते हैं ।

इसके बाद हालाँकि सिन्धु घाटी में जो खुदाई हुई उसमें भी त्रिशुलधारी पशुपति भगवान की पूजा के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं । इस दृष्टि से वैदिक धर्म से भी प्राचीन शैवधर्म साबित होता है । जब आर्यों ने द्रविड़ों को अपनी वर्णव्यवस्था में स्थान दिया तब शिव भी वैदिक देवताओं में प्रविष्ट हो गए होंगे । कालान्तर में शैव धर्म का प्रचार पूरे भारत वर्ष में हुआ । इस संप्रदाय में जंगली अवस्था के भक्तों से शुरू कर निगूढ़ दार्शनिक पंडितों को भी आकर्षित करने की क्षमता थी । इसलिए कुछ भक्त ऐसे हुए जिन्होंने गहन आध्यात्मिक तत्त्वों के निरूपण में ज्ञान की उच्चतम संभावनाओं का संस्पर्श प्राप्त किया । परिणामतः धर्म का बाह्य स्वरूप अत्यंत अश्लील और कठोर प्रतीत हुआ । वाममार्गीय क्रियाओं की आडम में व्यभिचार और भ्रष्टाचार फैल गया । परिणामतः जनता के हृदय में शैवधर्म का प्रभाव लुप्त होने लगा ।

अब महाभारत के शांति पर्व में जिसका सर्वप्रथम प्रतिपादन माना जाता है, इस पंचरात्र में शरणागति न केवल एक मानसिक भावना है बल्कि धर्म व्यावहारिक जीवन में विधिवत् अनुष्ठान करना भी अनिवार्य माना गया है । इसका प्रमुख उद्देश्य भक्ति के साधन मार्ग का निरूपण करना है । इसकी संहिताओं के आधार पर मंदिरों की रचना कर, उनमें आराध्य देवता की मूर्त की स्थापना कर विधिवत् अर्चना करनी चाहिए । जिस दुःख-दर्द पूर्णजीवन में शान्ति पाने का एक मात्र उपाय भक्ति है । इस धर्म में प्रपति को स्थान मिला है और इसका एकीकरण वैष्णव धर्म के साथ होने में से भक्ति मार्ग में नया प्राण संचार होता है । श्रीमद्भागवतदगीता की उक्त सर्व धर्मन्मपरिव्यज्य मामेकं शरणं आब्रज में भी एकान्तिक भक्ति का रहस्य है । इसका विकसित रूप है वैष्णव धर्म । वैष्णव धर्म से पहले शंकराचार्य का अद्वैत मत प्रचलित हुआ था परंतु अत्यंत क्लिष्ट विचारधारा होने से जनसाधारण के लिए वह सुगम न रहा । शंकराचार्य के मतानुसार सत्य केवल एक है वह है ब्रह्म । इस लक्ष्यपूर्ति का मार्ग केवल सद्गुरु ही बता सकते हैं, जो स्वयं अज्ञान से मुक्त है ।

नाथपंथ, गोरख संप्रदाय आदि का आविर्भाव हुआ भी और धीरे धीरे लुप्त होने लगा । इन संप्रदायों में नाम, क्षय, जाति-भेद का विरोध और गुरुबिन गति नहीं होय की भावना प्रधान थी । शायद वही से निर्गुण परम्परा का श्रीगणेश होता है ।<sup>८</sup> वैष्णव धर्म में चार संप्रदाय स्वीकारे जाते हैं । (१) श्रीसंप्रदाय (२) ब्रह्मसंप्रदाय (३) रूद्रसंप्रदाय (४) सनकादिसंप्रदाय । रामानुजाचार्यने अपने विशिष्टाद्वैतवाद में भगवान को अशेषी और भक्त को शेषी (दास) मानकर दोनों में अग्नि और स्फूलिंग का संबंध स्थापित किया है । जीव अनन्य भाव से भक्ति करे, ईश्वर की सेवा के प्रति समर्पित हो यही प्रपति या समर्पण है ।<sup>९</sup> रामानुजाचार्यने ज्ञान से भी ऊँचा स्थान भक्ति को दिया । उन्होंने मुक्ति के साधन के रूप में भी भक्ति को ही स्वीकारा है । वैष्णव मत में भी दास्यभाव की भक्ति गृहीत की गयी है । भक्ति का सार है प्रपति, आत्मनिवेदन, आत्मनिवेदन के बिना भक्ति की अन्य साधनाएँ केवल बहिरंग मात्र हैं ।<sup>१०</sup>

भक्ति का मार्ग मानवता का मार्ग है । गीता में शूद्रों एवं नारी को भक्ति का अधिकार दिया गया है । रामानुजाचार्य ने उच्च वर्णों के अतिरिक्त शूद्रों को भी भक्ति के योग्य ठहराये हैं ।<sup>११</sup> इसके अलावा द्वैतसंप्रदाय, शुद्धाद्वैतसंप्रदाय, द्वैताद्वैतसंप्रदाय, सनक संप्रदाय इत्यादि अस्तित्व में आए । सनकसंप्रदाय के आचार्य निम्बार्क ने नवधाभक्ति को ही स्वीकारा है । उनके उपास्य कृष्णावतार हैं । राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति की उपासना इस संप्रदाय की इष्ट है । कृष्ण के साथ राधा का साहचर्य सर्वतोभावेन मान्य है ।<sup>१२</sup> इसका प्रभाव उत्तर भारत में भी पड़ा । वहाँ इन विचारों का आदर हुआ । शूद्रों को भक्ति का अधिकार देते हुए स्वयं निम्बार्क ने कहा है कि "पौराणिक भक्ति केवल भगवदाराधना से सम्बन्ध रखती है और उस पर शूद्रों का भी अधिकार है ।"<sup>१३</sup> इसके बाद गौड़िय्य संप्रदाय में भी महाप्रभु चैतन्यने माधुर्य भाव-भक्ति का अभूतपूर्व प्रतिस्थापन किया । महाप्रभु चैतन्य की मधुर भक्तिभावना को तांत्रिक विचारधाराओं में जकड़ी हुई बंगभूमि महाप्रभु के

सात्त्विक जीवन और भक्तिपूर्ण उपदेशों के कारण राधा-कृष्ण के भक्ति के रंग में रंग गयी ।<sup>१४०</sup>

### साहित्य का संक्षिप्त परिचय :

स्वामी प्राणनाथजी की लिखी हुई रचनाओं के संकलन को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है । उदाहरणार्थ कुलजमस्वरूप साहब, कुलजमे शरीफ, निजानन्द सागर, श्री प्राणनाथ वचनामृत, वाणीवचन इत्यादि ।<sup>१५</sup> अलबत्ता इन सब में कुलजमस्वरूप साहब या स्वरूप साहब ज्यादा प्रचलित है । कुलजम अर्थात् संपूर्णवाणी संग्रहित होना या संपूर्ण ब्रह्म स्वरूप का वर्णन देता हुआ ग्रन्थ कुलजमस्वरूप होना माना जाता है । परंतु हिन्दु-मुस्लिम धर्मभेद को समाप्त करने के लिए प्रचलित मान्यता, विचार और धर्मों के शुद्ध रूप का संकलन होने के कारण भी कुलजम स्वरूप साहब नाम दिया गया होगा ऐसा महेसुस होता है ।<sup>१६</sup> पर स्वामी प्राणनाथ रचित कुलजमस्वरूप साहब में १४-रचनाओं का संकलन प्राप्त होता है । कई लेखक इसको विभाजित करके १६ ग्रन्थों का संकलन मानते हैं । यह वाणी प्राणनाथजी के स्वानुभव जनित ज्ञान की वाणी हैं । विद्वानोंने प्राणनाथजी की वाणी को दो भागों में विभाजित किया है । एक जोशवाणी और दूसरी होशवाणी । जोशवाणी के अंतर्गत १४ (चौदह) ग्रन्थ आते हैं, जो स्वरूप साहब में संकलित है और होशवाणी में निम्नांकित पुस्तके मानी जाती हैं ।

| क्र. म. | ग्रंथ का नाम | रचना विस्तार      | काल-समय     | भाषा    | स्थान           |
|---------|--------------|-------------------|-------------|---------|-----------------|
| १       | श्रीरास      | प्र. ४७-३०७ चौपाई | वि.सं.-१७१५ | गुजराती | जामनगर मेहता    |
| २       | प्रकाश       | प्र. ३७-१०६ चौपाई | वि.सं.-१७१५ | गुजराती | जामनगर बन्दीगृह |
| ३       | षट्ऋतु       | प्र. १५-.३० चौपाई | वि.सं.-१७१५ | गुजराती | जामनगर बन्दीगृह |
| ४       | कलश          | प्र. ४-१६९१ चौपाई | वि.सं.-१७.३ | गुजराती | जामनगर सूरत     |

|                 |                        |                      |             |                   |                  |
|-----------------|------------------------|----------------------|-------------|-------------------|------------------|
| ५               | सनंध                   | प्र.४.-१६९१<br>चौपाई | वि.सं.-१७३६ | हिन्दी            | अनूप शहर         |
| ६               | किरन्तन                | प्र.१३३-२१०२ चौपाई   | वि.सं.-१७०३ | गुज.जाही          | जामनगर-<br>पन्ना |
| ७               | खुलासा                 | प्र.१८-१०२०<br>चौपाई | वि.सं.-१७४० | हिन्दी-फारसी      | यात्रा में पन्ना |
| ८               | खिलवत                  | प्र.१६-१०७४ चौपाई    | वि.सं.-१७४० | हिन्दी-अरबी       | पन्ना            |
| ९               | परिक्रमा               | प्र.४६-२४८१ चौपाई    | वि.सं.-१७४७ | हिन्दी            | पन्ना            |
| १०              | सागर                   | प्र.१५-११२८ चौपाई    | वि.सं.-१७४४ | हिन्दी            | पन्ना            |
| ११              | सिन्गार                | प्र.३९-२२११ चौपाई    | वि.सं.-१७४७ | हिन्दी            | पन्ना            |
| १२              | सिन्धी                 | प्र.१६-६०० चौपाई     | वि.सं.-१७४० | सिन्धी            | पन्ना            |
| १३              | मारफतसागर              | प्र.१४-१०३४ चौपाई    | वि.सं.-१७४८ | हिन्दी-अरबी-फारसी | पन्ना            |
| १४              | कयामतनामा              | प्र.२४-५३१ चौपाई     | वि.सं.-१७४७ | हिन्दी-उर्दू      | चित्रकुट         |
|                 |                        |                      |             |                   | इसके अलावा       |
| १५              | प्रकाश<br>हिन्दुस्तानी | प्र.३७-११८५          | वि.सं.-१७४५ | हिन्दी-उर्दू      | अनूप शहर         |
| १६              | कलश                    | प्र.२४-७७१           | वि.सं. १७३३ | -                 | अनूप शहर         |
| इसके अतिरिक्त : |                        |                      |             |                   |                  |

- (१) कुरान के सवाल - जवाब
- (२) मेख मीरांजी का संवाद
- (३) कयामतनामा तीसरा
- (४) कुरान पत्रिका

(५) जामिल मारफत और

(६) छत्रशाल प्रबोध

जिसमें भावों का आवेग गहरा और तीव्र बना रहा है वह है जोशवाणी / हृदय में अद्भूत जोशिले आवेगों की मार्मिक अभिव्यक्ति इन किताबों में हुई है और होशवाणी के अंतर्गत वे सारे ग्रन्थ आते हैं जो पूरे होंशो-हवाश में लिखे गये हैं और जिसमें हृदय के आवेग की अपेक्षा बुद्धितत्त्व अधिक रहा है । इसलिए ही इन ग्रन्थों में संसार पार करवाने की क्षमता है । परिणामतः इन ग्रन्थों के संकलन का नाम तारतमसागर रखा गया है । श्री धर्मदासजी महाराज,

श्रीमुखवाणी प्रकाशन का संक्षिप्त परिचय: श्रीमुखवाणी महिमा अंक: प्रणामी धर्म पत्रिका, जनवरी-१९७४ प्र.-१० के अनुसार संप्रदाय के आचार्यों द्वारा श्रीमुखवाणी का अवतरण वि.सं.-१७०३ सं.-१७४८ स्वीकारा गया है .

## २.१.२ प्रणामी संप्रदाय की स्थापना और गुरु देवचन्द्र महाराज का परिचय :

### भूमिका (प्रस्तावना) :

विभिन्न संप्रदायों के सिद्धांतों के मंथन करने के उपरांत स्वानुभूति तथा श्रीकृष्णाजी द्वारा प्रदत्त तारतममंत्र के आधार पर देवचन्द्रने जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया वे सर्वग्राही और सर्वधर्म सम्मत हैं ।

इस संप्रदाय की मान्यता के अनुसार गुरुदेवचन्द्र परमात्मा के 'आनंद ओर श्यामा'-सहअल्लाह के अवतार स्वरूप थे और 'निज' अक्षरातीत का आवेश भी उनकी आत्मा पर बिराजमान था । इसलिए निज और आनंद अथवा अक्षरातीत का आवेश और श्यामाजी के अवतार के संयोग सेवे निजानंद कहलाये और उनके द्वारा संस्थापित 'निजानंद संप्रदाय' कहलाया । उन्होंने नैतिकता, सहिष्णुता, मानव-कल्याण और मानवतावादी प्रेम की नींव पर जिस संप्रदाय की स्थापना की उसे आगे चलकर महामतिने व्यवस्थित रूप दिया जो कालांतर में 'प्रणामी संप्रदाय' के नाम से विख्यात हुआ ।<sup>१७</sup>



इस सम्प्रदाय के संस्थापक श्री देवचन्द्र महाराज थे । उनके पिता का नाम श्रीमत् मेहता और माताजी का नाम कुंवरबाई था । वे मारवाड के उमरकोट गाँव में रहते थे । माता कुंवरबाई ने विक्रम संवत्-१६३८ के आश्विन मास में शुक्लपक्ष चतुर्दशी के दिन देवचन्द्र महाराज को जन्म दिया ।<sup>१८</sup> माता कुंवरबाई विनम्र, विवेकी एवं धार्मिक स्वभाव की थी ।

लौकिक और अलौकिक दोनों दृष्टि से देवचन्द्र नाम ही सबको उचित लगा । क्योंकि श्रुति में देव शब्द परमात्मा के लिए उपयोग में लिया गया है और जो अद्वैत प्रेमभाव द्वारा सबको आनंद प्रदान करे या सबको करे वे चन्द्र सुख प्रदान । "देवश्चासौ चन्द्र इति देवचन्द्रः"।<sup>१९</sup> इस प्रकार और चन्द्र शब्द के कर्मधारय समास द्वारा देवचन्द्र शब्द बनता है ।

देवचन्द्र महाराज गीता और भागवद् के चाहक थे । वे नित्य पाठ भी किया करते थे। ११-वर्ष की आयु में आत्म-साक्षात्कार की भावना जागृत होने से विचारों में लीन रहने लगे । वे संसार से विरक्त हो के मंत्री होकर परदेश जाने के लिए सोचने लगे । मारवाड़ के विवाह की बारात के साथ वे चल पड़े । वे कच्छ जाकर राधावल्लभी श्री हितहरिवंश मत के स्वामी हरिदासजी महाराज के शिष्य सिर्फ १६-वर्ष ७-मास की उम्र में बन गये ।

## २.१.२ प्रणामी संप्रदाय की स्थापना और गुरु देवचन्द्र महाराज का परिचय :

प्रणामी संप्रदाय के प्रवर्तक देवचन्द्र का जन्म उमरकोट के एक कायस्थ परिवार में आश्विनसुद १४, संवत् १६३८ वि. अक्टूबर ११, १५८१ ई को हुआ था । उनके पिता मत्तू मेहता एक धनी व्यापारी थे और उनके माता कुंवरबाई बड़ी ही धर्मपरायणा स्त्री थी । देवचन्द्र पर माता के धार्मिक जीवन का बहुत प्रभाव पड़ा था और बचपन से ही उनका झुकाव धर्म और आध्यात्मिक प्रश्नों की ओर अधिक था ।

तेरह वर्ष की आयु में एक बार देवचन्द्र अपने पिता के साथ कच्छ गये । वहाँ उनकी भेंट हरिदास गुँसाई से हुई । देवचन्द्र इनसे बहुत प्रभावित हुए और कुछ समय बाद उनके शिष्य भी हो गये । व्यापारिक वस्तुएँ क्रय-विक्रय करने के बाद मत्तू मेहता पुत्र सहित उमरकोट लौट आये । भोजनगर में हरिदास गुँसाई से भेंट होने के बाद देवचन्द्र का झुकाव

अध्यात्म की ओर और भी अधिक हो गया । वे तीन वर्षों तक बहुत ही लगन से धर्म ग्रंथों का अध्ययन करते रहे । इस अध्ययन से उनकी जिज्ञासा और भी बढ़ी तथा अनेक धर्म संबंधी शंकाएँ उनके मन में अंकुरित हुई । उनका हृदय अशांत रहने लगा और वे एक दिन गृहत्याग कर कच्छ की ओर चल पड़े । उस समय उनकी आयु केवल १६ वर्ष और ७ महीने की थी । कच्छ में आकर उन्होंने विभिन्न धर्मों के विद्वानों और संतों का सत्संग कर मन की अशांति दूर करने के प्रयत्न किये और उस समय वहाँ प्रचलित संप्रदायों के सिद्धांतों का भी ज्ञान प्राप्त किया । मूर्ति पूजा और तपस्या की ओर से उनकी श्रद्धा कम होने लगी । वे विद्वान मौलवियों से भी मिले, पर उनकी शंकाओं का समाधान न हो सका । देवचन्द्रने फिर वेदों का अध्ययन आरंभ किया, किन्तु उनके जिज्ञासु हृदय को तब भी तृप्ति न हुई ।

प्रचलित धार्मिक संप्रदायों के तुलनात्मक अध्ययन से देवचन्द्र के लक्ष्य में उन सबकी अंतर्निहित एकता तो आ गई थी, पर अभी भी वे अपने लिए कोई मार्ग निश्चित न कर सके थे । वे तब भोजनगर में जाकर हरिदास गुसाई से मिले और उनके पास ही रहने लगे । हरिदास गुँसाई राधावल्लभ संप्रदाय के थे । उनके संपर्क में आने से देवचन्द्रजी भी अब इसी संप्रदाय में दिक्षित हो गये । उन दिनों राधावल्लभ संप्रदाय का कच्छ में बहुत ही बोलबाला था । इसमें बालकृष्ण की उपासना होती थी यह कृष्णलल्ला का अधिक महत्त्व ही अधिक महत्त्व देता था और इसके अनुयायी अपने आपको कृष्ण की सखियाँ समझकर सखी भाव से बालकृष्ण की उपासना करते थे स्वयं परमात्मा और सखियों को या स्वयं को परमात्मा की खोज में भटकी हुई आत्माएँ मानते थे । राधावल्लभ संप्रदाय के लोग बालमुकुन्द की मूर्ति की पूजा करते थे और भागवत पुराण का ही धर्म-ग्रंथ की तरह पारायण करते थे । देवचन्द्रने भी भागवत का अध्ययन किया जिसके फलस्वरूप एक नवीन धर्म की कल्पना उनके मन में उदय हुई ।

देवचन्द्रने अब गृह त्याग किये ४ वर्ष हो चुके थे । उनके माता-पिता उनकी खोज करते हुए हरिदास गुँसाई के पास आ पहुँचे । उन्होंने देवचन्द्र को सांसारिक मोहों में लिप्त कर अध्यात्म की ओर से उन्हें विमुख करने के लिए किसी प्रकार समझा-बुझाकर उनका

विवाह भी कर दिया । पर वे देवचन्द्र को उनके मार्ग से विचलित न कर सके और विवाद के पश्चात भी देवचन्द्र अपने गुरु हरिदास गुँसाई के पास रहकर ही अत्यंत भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करते रहे । इस प्रकार ८ वर्ष तक हरिदास गुँसाई के पास रहकर लगभग २५ वर्ष की आयु में देवचन्द्र भोजनगर से जामनगर चले आये । वहाँ वे चौदह वर्ष तक भागवत् पुराण और अन्य धर्म ग्रंथों का अध्ययन करते रहे । जामनगर में कान्हजी नामक एक प्रसिद्ध विद्वान भागवत की कथा कहते थे । देवचन्द्र उनकी कथा कहने के ढंग से और उनकी व्याख्या से बहुत ही प्रभावित हुए और १४ वर्ष तक वे नित्य ही उनकी कथा सुनने जाते रहे ।<sup>२०</sup>

प्रणामी धर्मग्रंथों के अनुसार देवचन्द्र को ४० वर्ष की आयु में ज्ञान प्राप्त हुआ था । उनके इस नवीन ज्ञान का आधार भागवत पुराण ही था । इस पुराण के गहन अध्ययन से उन्होंने अपने संप्रदाय के सिद्धांतों की सृष्टि की थी । उनके प्रचार के लिए वे भागवत की कथा बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंग से कहकर उसकी अपनी अलग ही व्याख्या कर श्रोताओं को मुग्ध कर लेते थे । देवचन्द्र के प्रथम शिष्य गागजीभाई थे । उनके शिष्यों की संख्या शीघ्र ही बढ़ गई । इन शिष्यों में मेहराज भी थे जो कालान्तर में प्राणनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए । देवचन्द्र के विचारों को एक नये संप्रदाय का रूप देकर उन्हें प्रचार करने का श्रेय इन्हीं मेहराज को है ।

### २.१.३ स्वामी प्राणनाथजी का परिचय :

प्रणामी संप्रदाय के द्वितीय गुरु स्वामी प्राणनाथने जामनगर (काठियावाड) में आश्विन कृष्ण चतुर्दशी सवत्-१६७५ रविवार, सितम्बर-६/६/८ ई. के दिन एक क्षत्रिय परिवार में जन्म लिया था । उनके बचपन का नाम मेहराज था । प्राणनाथ के पिता का नाम केशवठाकुर और माता का नाम धनबाई था । प्राणनाथने ज्येष्ठ भ्राता गोवर्धन देवचन्द्र के परम भक्त थे । जब प्राणनाथ १२ वर्ष के थे तभी एक बार गोवर्धन उनको देवचन्द्र के पास ले गये ।<sup>२१</sup> देवचन्द्र प्राणनाथ की ओर आकर्षित हुए । प्राणनाथ भी देवचन्द्र से मिलकर बहुत प्रभावित हुए और यह पारस्परिक आकर्षण शीघ्र ही गुरु और शिष्य के पवित्र संबंधों

में परिवर्तित हो गया । प्राणनाथने अपने गुरु के चरणों में बैठकर नये सिद्धांतों का श्रवण किया । उन्होंने वेदों और पुराणों का भी अध्ययन कर विवाह कर दिया गया था । उनकी पत्नी का नाम बाईजी था । बाईजी सदैव यात्राओं में अपने पति के साथ ही रहती थी ।

पिताकी मृत्यु के बाद प्राणनाथ कुछ समय तक जामनगर में प्रधानमंत्री के पद पर कार्य करते रहे । पर सांसारिक बंधन उन्हें अधिक समय तक जकड़कर न रख सके । वे सत्य की खोज में थे । उनका हृदय अशान्त था और उनकी आत्मा इन बंधनों को तोड़कर उन्हें नई दिशा में बढ़ने को प्रेरित कर रही थी । देवचन्द्र की मृत्यु भादों सुदि १४ सवंत -१७१२ बुधवार ५-सितंबर १६५५ ई. को हो गई ।<sup>२३</sup> उन्होंने एकबार प्राणनाथ से अपने उपदेशों को भारत के अन्य भागों में प्रचार करने की अभिलाषा व्यक्त की थी । प्राणनाथने अब यह कार्य स्वयं पूर्ण करने का निश्चय किया । उन्होंने राजकीय पद त्यागकर देवचंद्र के सिद्धांतों के प्रचार के लिए देश के विभिन्न देशों की यात्राएँ आरंभ की । इन यात्राओं में वे अपने उपदेश देकर वाद-विवाद आमंत्रितकर श्रोताओं की शंकाओं का समाधान करते थे । कईबार उनके वाद-विवाद, विद्वान, मौलवियों, ब्राह्मणों, कबीरपंथियों और नानकपंथियों तथा अन्य संप्रदायों के अनुयायीयों से हुए । उनमें से कई तो उनसे प्रभावित होकर उनके शिष्य भी हो गये । काठियावाड़, सिंध, कच्छ आदि देशों के सिवा प्राणनाथने फारस की खाड़ी में स्थित बंदर अब्बास, राजपूताना, उत्तरी तथा मध्य भारत आदि की भी यात्राएँ कर अपने संप्रदाय का प्रचार किया ।

यह वह समय था जब औरंगजेब की प्रतिक्रियावादी हिन्दु विरोधी नीति का प्रारंभ हो चुका था । हिन्दुओं के मंदिर ढहाये जाने लगे थे और लांछित किया जा रहा था । हिन्दुओं के हृदय में विरोधाग्नि सुलग उठी थी । दक्षिण में शिवाजी की सफलताओं की गूँज अभी तक व्याप्त थी । उससे हिन्दुओं में मुगल विरोधी साम्राज्य को चुनौती देने का साहस उत्पन्न हुआ । मुगल विरोधी इस लहर का प्रभाव प्राणनाथ पर भी पड़ा । उन्होंने अपने उपदेशों में औरंगजेब की इस नीति की स्पष्ट निंदा आरंभकर दी और सक्रिय रूप से उसके विरुद्ध प्रचार करने लग गये । कहा जाता है कि उन्होंने राजा जसवंतसिंह राठौर और राणा राजसिंह को

मुगल विरोधी पत्र लिखे । वे स्वयं उदयपुर गये और एक पत्र भेजकर राणा राजसिंह को अजमेर पर उमड़ती हुई औरंगजेब की सेनाओं का कड़ा मुकाबला करने को उकसाया पर राजसिंहने उन्हें तुरंत ही उदयपुर छोड़कर चले जाने का आदेश दिया और उन्हें विवश होकर लौटना पड़ा । यह भी कहा जाता है कि उन्होंने स्वयं औरंगजेब से मिलकर उसे समझाने के विफल प्रयत्न किये ।<sup>२५</sup>

इधर बुंदेलखंड में छत्रशाल का स्वतंत्रता युद्ध आरंभ हो चुका था । उनकी प्रारंभिक सफलताओं के कारण स्वाभिमानी बुंदेलखंडी उन्हें धर्म और स्वतंत्रता के रक्षक समझ उनके झंडे के नीचे शीघ्रता से एकत्र हो रहे थे । छत्रशाल के यश ने प्राणनाथ को बुंदेलखण्ड की ओर आने को प्रेरित किया । छत्रशालने सैनिक शक्ति संग्रह कर ली थी । परंतु आध्यात्मिक बल की आवश्यकता थी । स्वामी प्राणनाथ के बुंदेलखंड आने से उनकी यह बड़ी कमी भी दूर हो गई । छत्रशाल और प्राणनाथ की महत्वपूर्ण भेंट मऊ के समीप ही आकस्मिक रूप से १६८३ ई. में ही किसी समय हुई । छत्रशाल द्वारा जगतराज को लिखे हुए एक पत्र के अनुसार प्राणनाथ से उनकी भेंट मऊ के पास एक जंगल में हुई थी । वे उस समय बिल्कुल अकेले शिकार के लिए निकले थे ।<sup>२६</sup> इस भेंट के पश्चात् स्वामी प्राणनाथ स्थायी रूप से बुंदेलखंड में निवास करने लगे और यही पत्रा में उनकी मृत्यु शुक्रवार श्रावण वदी ई. १७५१ को हो गई ।

#### २.१.४ प्रणामी संप्रदाय का परिचय :

प्रणामी संप्रदाय वास्तव में हिन्दु धर्म में ही एक उदार और सुधारवादी आंदोलन था । प्रणामी धर्मग्रंथों के अनुसार देवचंद्र को इस नवीन संप्रदाय के सिद्धांतों का ज्ञान श्रीकृष्ण से प्राप्त हुआ था, जिसका तात्पर्य यह है कि उनकी उत्पत्ति श्रीमद्भावगद् के दर्शन से हुई थी । इस संप्रदाय का मुख्य धर्मग्रंथ कुलजम है । इसे कुलजम स्वरूप और तारतम्य सागर भी कहते हैं । "यह संप्रदाय निजानन्द संप्रदाय प्रणामी और धामी तथा प्राणनाथी संप्रदायों के नाम से भी विख्यात है । इस संप्रदाय के प्रवर्तक देवचन्द्र को निजानंद भी कहते थे, इसलिए इस संप्रदाय को निजानंद संप्रदाय कहा जाने लगा । प्रणामी शब्द "प्रणाम" से

बना है । इस संप्रदाय के अनुयायी एक दूसरे से मिलने पर प्रणाम कहते हैं इसलिए इसका नाम प्रणामी संप्रदाय पड़ गया । इसी प्रकार इस संप्रदाय की दूसरी ओर प्रमुख प्रचारक स्वामी प्राणनाथजी के कारण इसे प्राणनाथी नाम दे दिया गया । प्रणामी संप्रदाय के अनुयायी पन्ना को "धाम" कहते हैं। इसलिए केवल पन्ना में रहनेवाले प्रणामियों को धामी कहा जाता है । भारत के अन्य भागों में यह संप्रदाय प्रणामी संप्रदाय के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है ।<sup>२८</sup>

प्रणामी संप्रदाय में ऐकेश्वरवाद की ही प्रधानता है । इस संप्रदाय में विश्व क्षर और अक्षर नामक दो भागों में विभाजित किया गया है । क्षर में वे सब प्राणी और जीव आते हैं जो नाशवान हैं । क्षर से उच्च अक्षर पुरुष की कल्पना की गई है जो नाशवान नहीं है । वही चर, अचर एवं प्रकृति का निर्माता माना गया है किन्तु इन सबके ऊपर परमात्मा की प्रतिष्ठा की गई है । प्रणामी संप्रदाय में परमात्मा को अक्षरातीत कहकर संबोधित किया गया है ।

स्वामी प्राणनाथ, कबीर, गुरूनानक तथा महाराष्ट्र के संतो के विचारों से बहुत ही प्रभावित हुए से प्रतीत होते हैं । कुलजम के छंदों में यत्रतत्र इसके प्रमाण मिलते हैं इन छंदों में मुसलमान और हिंदुओं दोनों के ही अंधविश्वासों और धर्मांधता की समान रूप से आलोचना की गई है तथा उनके धर्मों के आपसी विरोधाभासों के दूर करने के प्रयत्न किये गये हैं । इस तथ्य को बार बार दोहराया गया है कि वेदों और कुरान में एक ही ईश्वर का गुणानुवाद है ।

स्वामी प्राणनाथ हिन्दु समाज में कई सुधारों के हामी थे । वे जाति-पाँति के कठोर बंधनों और ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित धार्मिक ढ़कोसलों के तीव्र नींदक थे । शारीरिक स्वच्छता और बाहरी आङ्गबरो की अपेक्षा वे हृदय की पवित्रता और सदाचारपूर्ण चरित्र को ही अधिक महत्व देते थे । एक और जगह पर स्वामी प्राणनाथजीने ब्राह्मण की भर्त्सना करते हुए कहा है कि

"दोषि विप्रों के कोई मा देखो । ए कलजुग ना ए धाण ।

आगम भाष्यु भलें छ सर्वे । वेंराह वाणी रे प्रमाण ।।

असुर थकी समाषाधारे भभीषणें । आगल भी रघुनाथ ।

तम सूं कपट करूँ कुली मांहेँ, । ब्राह्मण थाऊँ आया ।।<sup>२९</sup>

अर्थात् कलियुग के ब्राह्मण राक्षसों से भी अधिक पूरे हैं । विभीषणने श्री रामचन्द्र के प्रति भक्ति की शपथ लेते हुए कहा था कि अगर मैं विश्वासघात करू तो कलियुग में ब्राह्मण होकर जन्म लूँ ।

इस प्रकार प्रणामी संप्रदाय का लक्ष्य था- ईश्वर भक्ति और राष्ट्रप्रेम । स्वामी श्री देवचंद्र महाराज के बाद गुरूपद पर आसीन होकर भक्ति का रसमय स्रोत प्रवाहित करके स्वामी प्राणनाथजीने सामान्य मानवी को भक्ति का रसास्वाद करवाया । 'स्वलीला द्वेत' के महत्त्वपूर्ण नवीन विचार को प्रदान कर हिन्दु धर्म का नया सम्बल प्रदान किया । अज्ञान के तिमिर को नष्टकर इस संप्रदायने इस्लाम और हिन्दु धर्म के सिद्धांतों में समानता को प्रतिपादित किया । प्रणामी सम्प्रदाय में कुरान एवं हिन्दु धर्मशास्त्रों से निष्पन्न विचारों में वैचारिक एकता बताने का भाव है ईश्वर और अल्लाह एक ही परमात्मा के दो नाम हैं और धर्म इसी परमात्मा या अल्लाह तक पहुँचने का मार्ग मात्र है । इस मत की भी इस संप्रदायने पुष्टि की है । "प्रणामी संप्रदायने धार्मिक एकता और विश्व बंधुत्व की भावन को चरितार्थ किया है । इस प्रकार स्वामी प्राणनाथ में एक धर्म प्रवर्तक और प्रचारक के ही नहीं अपितु एक समाज-सुधारक और राष्ट्रीय नेता के भी दर्शन होते हैं ।

#### २.१.५ प्रणामी संप्रदाय का धर्म अभियान :

संप्रदाय की मान्यताओं के आधार पर कह सकते हैं कि स्वामी देवचन्द्र को अपनी अन्तिम यात्रा का ज्ञान हो चुका था । उनकी आत्मा साम्प्रदायिक जिम्मेदारी सुयोग्य हाथों में सौंपने के लिए तड़प रही थी । उन्होंने ध्रोल से मेहराज ठाकुर को बुलाकर १२,००० ब्रह्मसृष्टि और २४,००० ईश्वरी सृष्टि को जाग्रत करने का काम सौंपा और स्वयं परमधाम सिधार गए ।

"फिरिके देश देशनि विषे सांकुड़ल सुकुमार ।

ढूँढो साथ सफल सहित मेला करो अपार ।।

करिकै मेला साथ को, अस चौबीस हजार ।

रास रागिनी खेलिकै, पहुँचो धाम मझार ।

यहै मनोरथ आदि को, तुम जानत हो सोई ।

ये बातें चित राखियों, हुकम हमारो होई ।।<sup>३०</sup>

स्वामी गुरु देवचन्द्रजी ने २२-दिवस तक परमधाम के रहस्यों को समझाया और विश्वव्यापी धर्म अभियान द्वारा भूली-भटकी आत्मा को जागृत करने का उतरदायित्व सौंपकर भाद्र पद शुक्ल चतुर्दशी सं. १७१२ बुधवार, ५-सितम्बर, १६५५ को स्वधाम सिधारे ।

स्वामी लालदास कृत बीतक में इस घटना का उल्लेख इन शब्दों में है ।

संवत सत्रह बारोतरे भादों मास उजाला पक्ष ।

चतुर्दशी बुधवारी भई, हुई धनी अलख ।।<sup>३१</sup>

स्वामी देवचन्द्रजी महाराज परमधाम सिधारे इसके पहले अपनी लौकिक गादी का वारिस बिहारीजी (गुरुपुत्र) को बनाया और धर्म अभियान की पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी मेहराज ठाकुर (स्वामी प्राणनाथ) को सौंप दी । गुरु देवचन्द्रजी का व्यक्तित्व आकाशी क्षितिजों तक फैला हुआ महामानवीय रूप था, इसलिए संप्रदाय के प्रचार एवं प्रचार का कार्य अपने पुत्र बिहारीजी को सौंपकर अपने नादपुत्र मेहराज को सौंपा । स्वामी प्राणनाथने अपनी वाणी में इसका उल्लेख किया है....

"दूई जाहेर मसनन्द नसलीयको दूजी बातून मेरे हाथो । अर्थात् जाहिर लौकिक (मसनन्द) धनकी गुरुगादी के वारिस बिहारीजी को बनाया दूजी बातून अर्थात् आध्यात्मिक धर्म-कार्य मुझे सौंप दिया ।<sup>३२</sup>

स्वामी देवचन्द्रजी के धामगमन के बाद सुंदरसाथ शान्त हो गया । मंदिर में अब कोई नहीं आता था, इसलिए बिहारीजी को गद्दीआसीन करने का बालबाई का प्रस्ताव प्राणनाथजीने स्वीकार कर लिया । इसके पीछे दो हेतु कार्यान्वित हुए थे । एक तो बिहारीजी



गुरु के बिन्दु पुत्र होने से गद्दीवारिस बनकर खुश रहेंगे और प्राणनाथजी के संप्रदाय के प्रचार प्रसार का कार्य बन्द न होगा, क्योंकि प्राणनाथजी का अवतार हेतु ही धर्म प्रसार था ।

"हम आयें हैं इतने काम । ब्रह्म सृष्टि लेके धरकाम ।।<sup>३३</sup>

गुरु के आदेशानुसार सुंदर साथ को जाग्रत करने के लिए मिलाप करने की तैयारियाँ ही हो रही थी कि किसी, चुगलखोर के कारण गुरु के नादपुत्र प्राणनाथजी को कैद कर लिया गया ।<sup>३४</sup> संप्रदाय में इस स्थल को प्रबोधपुरी कहते हैं । यहीं प्रबोधपुरी का स्थान आज जामनगर में (नवतनपुरी) दरबारगढ़ के नाम से पहचाना जाता है । इस प्रबोधपुरी में ही दैवी प्रकाश के द्वारा वाणी का अवतरण हुआ । परिणामतः संप्रदाय के आकाश में वे धूमकेतु बन गए, जिसके प्रकाशपुंज के आसपास प्रकाशित तारों के झुण्ड दैदीप्यमान हो रहे । जामराजा को अब प्राणनाथजी की सच्ची पहचान हुई और उन्हें रिहा कर दिया गया ।

स्वामी प्राणनाथ ज्ञानसिद्ध संत थे । ज्ञान उसे ही प्राप्त होता है जो मन से अहंकार को दूर करके विनम्र भाव को प्राप्त कर लेता है । हरजी व्यास नामक एक विद्वान के ज्ञान अहंकार को प्राणनाथजी ने चूर-चूर कर दिया । व्यासजी व्यथित थे कि उसे अपना मुकाबला कर सके ऐसा कोई संत नहीं मिल रहा था । व्यासजी के मनोरथ पूर्ण हो जाने से वे प्राणनाथजी के शिष्य बन गए । शायद यहीं से तारतममंत्र की दीक्षा देकर शिष्य बनाना प्रारंभ किया होगा ।

सं.-१७१९ में सुबेदार कुतूबख़ाँ ने जामनगर पर चढ़ाई की । स्वदेश रक्षा के ध्येय को जीवन लक्ष्य बनाकर वे समाधान चर्चा के लिए अहमदाबाद गए । परंतु जामराजाने समाधान की शर्तों का पालन नहीं किया, परिणामतः ! प्राणनाथजी को कैद कर लिया गया । बाद में उनके किसी शिष्यने युक्तिपूर्वक उन्हें मुक्ति दिला दी । अब जामनगर जाने की अपेक्षा उन्होंने धर्महेतु भ्रमण करना प्रारंभ कर दिया ।<sup>३५</sup>

दीव में धर्मचर्चा :सं.१६६५ में वे पत्नि सहित दीव पहुँचे । वहाँ दो वर्ष तक धर्मचर्चा करते रहे । इस तरह अरब दस्युओने दीव पर छापा मारा । धन के साथ स्त्रियों का

भी अपहरण कर ले गए । इस अपहरण प्रथा को नाश करने के लिए उनको कच्छ की ओर जाना पड़ा । सन्-१६६७ में पोरबंदर, प्रभास पाटण और नवीनबन्द होते हुए मांडवी नगर कच्छ पहुँचे । मांडवी से भुज नलीया होते हुए सिन्ध के प्राचीन शहर ठट्टनगर पहुँचे । ठट्टा में १५-दिन व्यतीत कर वे मस्कत के लिए रवाना हुए परंतु मौसक प्रतिकूल होने से वापस लाठी बन्दर आना पड़ा। वे वापस ठट्टानगर आए और कबरीपंथी महंत से धर्मचर्चा शुरू की। देखिए-

"सुने साथ चिन्तामान, रहे कबीर धरम में ।

कीजे दीदार तिनका, सुने चरखा अब मुख से ॥"<sup>३६</sup>

स्वामी प्राणनाथ ज्ञान पियासु थे । उन्होंने कबीर के...

" एक पलक ते गंग सो निकसी । ये गयो चहुं दिशि पानी ॥"

इसका गुढ़ार्थ चिन्तामणि से जानना चाहा परंतु वे स्पष्ट न कर सके । प्राणनाथजी ने इसका रहस्य समझाया और उनके शिष्य वे बन गये ।

शेठ लक्ष्मणदास निन्यानवे जलपोत सागरपार व्यापार में व्यस्त थे । अचानक वे सारे सागर में गरक हो गये और सेठ उदासीन होकर प्राणनाथजी के पास पहुँच गए । उन्होंने तारतममंत्र की दीक्षा ग्रहण की और जीवन-पर्यन्त प्राणनाथजी की छाया बनकर रहे और बाद में स्वामी लालदास के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

सन्-१६६८ में वे मस्कत पहुँचे । यहाँ धर्मोपदेश द्वारा शिष्यों को दिक्षीत किए । सन्-१६७० में अबासी बन्दर आकर ३-महिन रहे । यहाँ मांस मदिरा का सेवन करनेवाले भैख सेठ को व्यसन-मुक्त बनाया और इनके दिए हुए द्रव्य से अनुयायीयों को बन्धन मुक्त करवाया फिर ठट्टा आकर अपनी कच्छ, नलीया यात्रा की सूचना बिहारीजी को दे दी । यहाँ से महीने भर बाद धोधा बन्दर होते हुए सुहाली पहुँचे । यहाँ बिहारीजी की मुलाकात हुई । प्राणनाथजी ने गुरुपुत्र से अपने शिष्य धाराभाई के लिए उदारतापूर्ण व्यवहार की याचना की परंतु बिहारीजी दृढ़ रहे । जब धाराभाई को फूलबाईने आश्वासन देकर भोजन करवाया तो इस गुरु द्रोह के अपराध में प्राणनाथजी को पत्नी का साथ या धर्म का साथ छोड़ने का

आदेश मिला । प्राणनाथजीने पत्नी का साथ छोड़ा और पत्नीने अन्न-जल का त्याग करते हुए प्राणों को त्याग दिया ।

इस मुलाकात में प्राणनाथजीने जात-पाँति का विरोधी किया जो बिहारीजी को अरुचिकर लगा । बिहारीजीने विधवा को मंत्र दीक्षा देने का विरोध किया परंतु देवचंद्र महाराजने खोजीबाई को दीक्षा दी थी । इसलिए प्राणनाथजी अपने मत पर अड़िग रहे । परिणामत ! दोनों में काफी अंतर पड़ गया । अब धोराजी होकर सुहाली और वहाँ से समुद्र मार्ग द्वारा प्राणनाथजी सूरत पहुँच गए ।<sup>३७</sup> बिहारीजी ने सन्-१६७२ में पत्र लिखकर नीतिनियमों के पालन के लिए आदेश दिया ।

(१) नीच जाति को तारतम्य नहीं सुनाना ।

(२) विधवा स्त्री को मंत्रदीक्षा नहीं देना ।

(३) बिहारीजी और प्राणनाथजी के सिवा कोई मंत्र-दीक्षा नहीं देगा । प्राणनाथजीने इसका विरोध किया ।

बिहारीजी रूढ़िवादी, संकीर्ण मतवादी और तेजो द्वैषी होने से प्राणनाथ से न मिल सके ।

### दिल्ली में धर्मचर्चा :

सन-१६७४ में सूरत से २५० अनुयायियों के साथ औरंगज़ेब की धमौंधता का नाश करने हेतु वे दिल्ली जाने के लिए रवाना हुए । रास्ते में सिद्धपुर, पाटन, पालनपुर होकर राजस्थान में मेड़ता आ पहुँचे । यहाँ राजाराम जैसे सहस्रों को दीक्षा दी ।

एकबार प्राणनाथजी मस्जिद के सामने से निकले मस्जिद के मिनार पर चढ़कर मुल्ला नमाज़ के निमित्त बाँग दे रहा था । बाँग शब्द सुनकर कलाम के गूढ़ार्थ पर स्वामी प्राणनाथने चिन्तन किया और अंत में इस तथ्य तक पहुँचे कि पुराण और कुरान के संदेश और उद्देश्य में कोई अंतर नहीं है । अपने सुयोग्य शिष्य स्वामी लालदासजी को बुलाकर कलमा के आध्यात्मिक विचार और तारतममंत्र के ज्ञान की महत्ता औरंगज़ेब को समझाने का प्रस्ताव

रखा । रसूल साहब ने ब्रह्मसृष्टि के स्वरूप को समझने के लिए कहा कि कलमा, आगाह करता है कि जो मोमिनों के इल्म इलाहीका और उनकी दावत का तलबगार न होगा, वह नबी की शिकायत का भी तलबगार नहीं हो सकता । यदि औरंगज़ेब इस बात को कबूल करले तो फिर दूसरे लोगों को समझना कठिन न होगा ।<sup>३८</sup>

इस ओर जसवन्तसिंह की कर्तव्यनिष्ठा के बारे में जानकारी प्राप्त होने से स्वामी प्राणनाथने धर्मरक्षक का आहवान करता हुआ पत्र पेशावर को लिख भेजा । मेड़ता में ही स्वामी प्राणनाथने इस्लाम के शरियत के साथ युद्ध करने का निश्चय कर लिया । सन्-१६७५ में मेड़ता से मथुरा होकर वे वृंदावन पहुँचे । श्रीकृष्ण की रासलीला के रहस्यों के विशिष्ट वर्णन विवेचन वृंदावन में उन्होंने किया जिसे सुनकर राधावल्लभी संप्रदाय के लोग प्रभावित हुए । यहाँ तेजबाई को अन्य स्त्रियों के साथ छोड़कर वे आगरा होकर दिल्ली गए । ३९२ यहाँ सन्-१६७६ में ६-मास तक ब्रह्मज्ञान का संभाषण जारी रखा । बाद में उक्त मुहल्ला छोड़कर "लाल दरवाजा" मुहल्ले में चले गए ।<sup>४०</sup> यहाँ रहकर औरंगज़ेब की कट्टरता का सही अंदाज प्राप्त किया । इस अंदाज से निश्चित किया कि बिना किसी युक्ति के सफलता प्राप्त नहीं होगी । १०-१२ दिन बाद पत्र लिखकर लालदास और भाई भीमा को औरंगज़ेब तक पहुँचाने का आदेश दिया ।

सन्-१६७८ में कुम्भ का पर्व था । स्वामी प्राणनाथजी वहाँ गए क्योंकि वहाँ सारे धर्माचार्य निमंत्रित थे । कुम्भमेले के पूर्व वृंदावन में चारों संप्रदाय और अखाड़ेवालों का सम्मेलन मिलता था । इस संमेलन में कुम्भमेले के नियम बनाये जाते थे । स्वामी प्राणनाथ इन बातों से अज्ञात थे इसलिए उन्होंने हरिद्वार में धर्मचर्चा शुरू कर दी परंतु दूसरे धर्मावलम्बीयों ने इसका विरोध किया । स्वामी प्राणनाथ को सम्मेलन की ओर से झंडा निशान लेकर धूमने का अधिकार प्राप्त नहीं था । अन्ततः इस समस्या को सुलझाने के लिए शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया, जिसका रूप सर्वधर्म परिषद जैसा था । इस, शास्त्रार्थ में रामानुजाचार्य, निम्बार्क, विष्णुस्वामी और माधव संप्रदाय के संन्यासी और दर्शनामी, षट्शास्त्र के दार्शनिक आदि उपस्थित थे ।<sup>४१</sup>

स्वामी प्राणनाथने इस सम्मेलन में देवी भागवत् लिंगपुराण, मुण्डक उपनिषद, श्रीमद् भागवत, श्वेताश्वेतर, उपनिषद, यजुर्वेद आदि शास्त्रों के सहारे संप्रदायों को वैचारिक संकीर्णता का दिग्दर्शन करवाया । तदन्तर चारों संप्रदाय के प्रतिनिधियोंने अपने मत के अनुसार विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत और द्वैतवाद के प्रतिपादनार्थ अपनी सांप्रदायिक दर्शन पद्धति प्रस्तुत की । इसके बाद दशनामी संन्यासियों ने चार मठों की स्थापना मगधीशों के पद, दशनामी साहित्य और दीक्षा मंत्र के आधार पर अपनी पद्धति की व्याख्या की । तत्पश्चात् नैयायिक मतदर्शन, वेदान्त मतदर्शन, मीमांसा, सांख्य, पातंजल, वैशेषिक मतदर्शनों के विद्वानोंने अपना मत प्रकट किया । स्वामी प्राणनाथने उक्त संप्रदायों की त्रुटियाँ बतायीं । उक्त विद्वानों के पास कोरे प्रत्युत्तर नहीं थे । इन विद्वानों को क्रोध तो था ही, अब उलझने पैदा हो जाने से उन्होंने स्वामी प्राणनाथ को अपना मत प्रकट करने की सूचना दी ।

स्वामी प्राणनाथजी ने अपने गुरु स्वामी देवचन्द्र महाराज के सिद्धांतों और हिन्दु धर्म के शास्त्रों के आधार पर स्वधर्म के मूल सिद्धांत, स्वलीलाद्वैत और पराप्रेमलक्षणा भक्ति का विवेचन किया । परिणामतः यहाँ उपस्थित सर्व विद्वान प्रभावित हुए । तत्पश्चात् उपस्थित ब्रह्मसमाज ने सर्व सम्मति से स्वामी प्राणनाथ को 'विजयाभिन्न निष्कलंक बुद्ध' स्वरूप स्वीकार किया । इसी घटना के आधार पर संप्रदायने वैशाख कृष्ण एकादशी सं.१७३५ को विजयाभिक्ष बुद्धजी की शाका की घोषण हुई ।

अब स्वामी प्राणनाथ दिल्ली आए । उन्होंने औरंगजेब को (ईस्लामी शासक) समजाने का और अत्याचारों को अहिंसात्मक ढंग से रोकने का दृढ़ संकल्प किया था । अतः दिल्ली से अपने सारे समुदाय के साथ वे अनुप शहर आए और वहाँ एक हवेली को अपना निवास बनाया । स्त्रियों को और अन्य अनुयायियों को इस जगह रखकर स्वयं दिल्ली चले । वहाँ उन्होंने शाहगंज में निवास बनाया । बाद में लाल दरवाजे की हवेली में रहने के लिये गए –

" आये शहर अनूप ते, साह गंज के माहिं ।

गए इच्छ ते ते दरशलै लाल द्वार है जाहिं ।।<sup>४२</sup>"

स्वामी प्राणनाथने इस्लाम धर्म के मूल तत्वों के सहारे ही इस्लामी शासक औरंगजेब के हिंसात्मक हृदय को परिवर्तित करने का संकल्प किया । कुरान का अध्ययन करने के लिए उन्होंने स्वामी लालदास एवं गोवर्धनभाई को मौलवी के पास भेजा । स्वयं स्वामी प्राणनाथने सनंध के ३०-प्रकरण लिखकर शासक औरंगजेब को सुनाने के लिए शेखबदल को दिल्ली भेजा । शेखबदलने पुकार पुकार कर वहाँ सनंध गाना शुरू किया जहाँ औरंगजेब और हजारों मुसलमान नमाज पढ़ने के लिए आए हुए थे । स्वामी प्राणनाथने शेख सुलेमान के पास जाकर बादशाह से मुलाकार करना चाहा परंतु उन्हें कोई सफलता न प्राप्त हो सकी । फलतः वे रोहिलाज़ान के सराय में आये और सनंदो का फारसी अनुवाद करवाया और वह अनुवाद बादशाह तक पहुँचाने का असफल प्रयत्न किया । अब स्वामी प्राणनाथ को १२ शिष्य मस्जिद के पास सनंदे गाते रहे । बादशाह के सैनिकोंने उन सबको पकड़कर राजा के सामने पेश कर दिया । उन्होंने भी बादशाह के काजी उनके कान में जूँ तक न रेंगने देते थी । परिणामतः स्वामी प्राणनाथ के धर्म युद्ध को सफलता न मिल सकी ।

अब स्वामी प्राणनाथने हिन्दु राजाओं को धर्मयुद्ध के लिए प्रोत्साहित करने का निर्णय किया । सन्-१६७९ में वे उदयपुर जाकर वहाँ के राजा से मिले । उदयपुर के राजा से प्रभावित अवश्य हुए परंतु औरंगजेब की विशाल सत्ता का मुकाबला करने की क्षमता उसमें नहीं थी । इसके बाद मन्दसौर, औरंगाबाद, सीमामऊ और नौलाई होते हुए उज्जैन पहुँचे । सन्-१६८१ में आकोट पहुँचे । फिर कर्तकी नदी के किनारे कलस्तानी पहुँचे और वहाँ एक मठ में रहे । इस मठ में स्वामी प्राणनाथ को राजा छत्रशाल की जानकारी मिली । स्वामी प्राणनाथ को छत्रशाल के धर्मरक्षा के उद्देश्य की जानकारी भी प्राप्त हुई । श्रीजी को इस बा का भी पता चला कि छत्रशाल सच्चे गुरु की खोज में हैं । स्वामी प्राणनाथने अपना संदेश लेकर देवकरण को मऊ भेजा । सन्-१६८२ में गढ़ा बिलेही ही होते हुए अगरिया में स्वामी प्राणनाथ और देवकरण मिले । राजा छत्रशालने जो छोटे-मोटे युद्ध किए थे इससे औरंगजेब चिंतित था । औरंगजेबने उसे घेरने की व्यर्थ योजना बनायी थी । अंत में मऊ में स्वामी

प्राणनाथ और छत्रसाल मिल गये । ४३२ इतिहासकार इस मुलाकात का समय सन्-१६८३ स्वीकार करते हैं ।

राजा छत्रसाल, राजा चंपतराय के पुत्र जो बड़े होकर बुंदेलखण्ड के शासक बने, उनका जन्म सन्-१६४९, ४-मई को हुआ । उसे मुगल शासकों की धार्मिक नीतियों से विरोध था परंतु उनके पास न पैसे थे, न शासकों का सामर्थ्य इसलिए वे निराश हो जा रहे थे। ऐसी परिस्थिति में उन्हें प्रेरणा और ज्ञान देने के लिए स्वामी प्राणनाथ जैसे गुरु मिल गए । गुरु-शिष्य का यह मिलन १७४० में माना जाता है ।<sup>४४</sup>

महाराजा छत्रसाल अपने गुरु और बाईजीराज को पालकी में बिठाकर अपने निवास - स्थान चौपड़ा हवेली ले गए और वहाँ उन दोनों की युगल स्वरूप में सिंहासन पर प्रतिष्ठा करके आरती उतारी ।<sup>४५</sup> स्वामी प्राणनाथने विजयादशमी के शुभपर्व पर छत्रसाल को महाराज के पद से विभूषित किया और लौकिक तथा अलौकिक शक्ति के प्रतीकरूप एक तलवार भेंट दी । शायद स्वामी प्राणनाथ प्रथम सन्त थे, जिन्होंने हिन्दु धर्म की सुरक्षा के लिए हिन्दु राजा को जाग्रत करके धर्मयुद्ध के लिए तलवार भेंट की ।

स्वामी प्राणनाथ के निवास के लिए स्थान निश्चित कर अर्पण किया जो आज बंगलाजी का मंदिर के नाम से पहचाना जाता है । राजा छत्रसाल भी इस स्थान से थोड़े ही दूर रहे । अब गुय का प्रमुख स्थान पन्ना बन गया । राजा छत्रसालने सर्वधर्म के अनुयायियों के लिए परिषद का आयोजन किया । इस चर्चा परिषद में भी स्वामी प्राणनाथ की विजय हुई । सन् १६८६ में छत्रसाल की प्रार्थना से धर्म प्रचार के लिए स्वामीजी देवगढ़, गढ़ा, ओरछा, पटवारी, झाँसी और झालोन होते हुए जलालपुर पहुँचे । सन्-१६८७ में चित्रकुट पहुँचे । सन्-१६८८ में बिजावर जाकर रासलीला का उद्घाटन किया ।

अब स्वामी प्राणनाथने पन्ना को उपयुक्त स्थान मानकर वहीं आश्रम बनाया, जो आज मुक्तिपीठ, पद्मावती पुरी नाम से पहचाना जाता है । आज भी वहीं स्वामी प्राणनाथजी की समाधि पायी जाती है ।

## १.६ स्वामी प्राणनाथ के साहित्य का परिचय :

मध्यकालीन संत-कवियों की लंबी परंपरा में महामति प्राणनाथ शायद अंतिम संत-कवि थे, जिनका सारा साहित्य अन्य संत कवियों की तरह हिन्दी पद्य में हैं। प्रणामी साहित्य में भी यही परंपरा है। यह प्रणामी साहित्य 'बानी साहित्य' और 'बीतक साहित्य' दोनों भागों में बँटा हुआ है। बानी साहित्य में महामति की बानी या उपदेश 'कुलजम स्वरूप' में संग्रहित है जो उनके चौदह ग्रंथों का संकलन है और जिसमें १८,७५८ चौपाईयाँ हैं। यह ग्रंथ महामति का धर्म, दर्शन, साहित्य और भाषा जानने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। बीतक साहित्य में उनकी सात बीतके (जीवनवृत्त) हैं जो एक प्रकार से उनकी उनके गुरु देवचन्द्रजी की जीवनी हैं और प्रणामी संप्रदाय की प्रामाणिक जानकारी देती हैं। इन सब बीतकों में सबसे पूज्य और प्रमुख लालदास की बीतक है। प्रणामी संप्रदाय के मंदिरों में प्रतिदिन कुलजम स्वरूप और साल में एकबार लालदास के बीतक की पूजा – और पाठ होते हैं। ये सात बीतकें भी उनके इतिहास जानने के महत्त्वपूर्ण साधन हैं।

### बानी साहित्य : कुलजम स्वरूप :

महामति प्राणनाथ की बानी या उपदेश कुलजम स्वरूप में संग्रहीत हैं जो प्रणामी संप्रदाय का प्रमुख ग्रंथ है। 'कुलजम' अरबी शब्द है, जिसका अर्थ होता है दरिया या सागर। कुलजम मिश्र की नील नदी को भी कहा गया है। इस ग्रंथ का दूसरा प्रचलित नाम है तारतमबानी या तारतमसागर। तारतमसागर को ज्ञान का अगाध सागर भी कहा गया है।<sup>४६</sup>

प्राणनाथजी का काल मध्यकालीन भारत में औरंगजेब का शासनकाल था, जिसकी कट्टर धार्मिक नीति के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों में राजनैतिक और सांस्कृतिक वैमनस्य बढ़ गया था। इन दोनों धर्मों की गहरी खाई को पाटने के उद्देश्य से प्राणनाथजी ने दोनों धर्मों के माननेवालों को अपना अनुयायी 'सुंदरसाथ' बनाकर दोनों कोमो के शब्दों को लेकर अपनी कृति का नाम कुलजम ए-सरूप रखा होगा। इसमें प्रथम शब्द अरबी का तथा द्वितीय हिन्दी का है। बाद में यह कुलजम स्वरूप हो गया।



कुलजम स्वरूप के विभिन्न ग्रंथों का संकलन महामति के जीवनकाल में ही हो गया था । वि.सं.-१७५१ में कुलजम स्वरूप के प्रथम संयोजक श्री केशवदासजीने 'श्रीमुखबानी' के चौदह ग्रंथों का संकलन किया, जो महामति के प्रिय शिष्य थे । महामति के परमधाम गमन के तत्काल बाद संपूर्ण ग्रंथ को उनके गदी स्थान पर आसीन करा दिया गया । इसकी हस्तलिखित प्राचीनतम प्रति गुम्मट मंदिर, पन्ना में उपलब्ध है । मूल प्रति की बाद में कई अनुलिपियाँ तैयार की गई, जिनमें प्रतिलिपिकारों ने अत्यंत सावधानी बरती है तथा इस बात का विशेष ध्यान दिया है कि किसी शब्द का भी परिवर्तन न हो । प्राणनाथजी की बानी का प्रथम संस्करण १९६५ ई. में प्रकाशित हुआ । इसके पहले यह ग्रंथ हस्तलिखित ही रहा ।

महामति की बीतक (जीवनवृत्त) लिखते समय लालदासने उसमें वाणी-ग्रंथों की अवतरण तिथि और स्थान का भी उल्लेख किया जिसको प्रणामी संप्रदाय में पूरी मान्यता प्राप्त है । इन चौदह ग्रंथों में चार गुजराती में, एक सिन्धी में और शेष हिन्दी या हिन्दुस्तानी में है । इन ग्रंथों में प्रकाश और कलश मूलरूप से गुजराती में है लेकिन इन दोनों ग्रंथों के महत्व को समझने के बाद महामति ने इन्हें हिन्दी में रूपांतरित किया । ऐसे ही कयामतनामा और छोटा कयामतनामा दो अलग-अलग ग्रंथों में विभाजित हैं । इस प्रकार ग्रंथों की कुल संख्या चौदह से सत्रह हो जाती है । संकलित रूप में कुलजम स्वरूप एक बृहदाकार ग्रंथ है, जिसके एक-एक ग्रंथ का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है ।

**कुलजम स्वरूप के चौदह ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण :**

**(१) श्री रास :**

श्रीरास प्राणनाथजी की प्रथम रचना है जिसमें ४७ प्रकरण और ९१३ चोपाईयाँ हैं । इसकी भाषा गुजराती है । मेहराज ठाकुर (प्राणनाथजी) जब झूठे आरोप के कारण जामनगर के बंदीगृह में थे तब वि.सं.-१७१५ में यह वाणी परम ब्रह्म की कृपा से उन पर उतरी थी, जो उसी समय संकलित कर ली गई । इस ग्रंथ में परम ब्रह्म परमात्मा की ब्रजलीला और रासलीला के मूलभूत रहस्यों का निष्पादन हुआ है । इसमें ब्रह्मात्माओं का अक्षर ब्रह्म द्वारा निर्मित जगत में अवतरित होने का सुंदर वर्णन है क्योंकि वे जगत के सुख-दुःख की

अनुभूति के लिए ब्रजांगनाओं के रूप में इस जगत में आई थी । कालमाया द्वारा रचित इस जगत की माया से छुटकारा पाने के लिए 'मोहजाल' का विवरण है । श्रीकृष्णजी द्वारा योगमाया द्वारा रचित वृंदावन का भी वर्णन है । राजसी, सात्त्विक और तामसी प्रकृति की आत्माओं का उल्लेख है, ब्रह्मांड की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन किया गया है । माया से छुटकारा पाने के लिये गुरु देवचंद्र द्वारा 'तारतमज्ञान' के अनंत प्रकाश का भी वर्णन है । रास का नाम भी बड़ा सार्थक है । आत्मा का परमात्मा से अथवा गोपियों का श्रीकृष्ण से मिलन का रस ही रास है ।

महामति की प्रथम पुस्तक रास का नाम अंजील या बाइबल रखा गया जो सारी दुनिया को भगवान के प्रेम का संदेश देती है । बाइबल के उस बाग का विस्तार से वर्णन है जहाँ नूह की किशती जिस भाग में उतरती है वह भाग भागवत के वृंदावन का मधुवन था, जहाँ भगवान कृष्ण की गोपियाँ उनके दिव्यरूप में उनके प्रेम के खेल में आकंठ डूबी थी । महामतिने इस प्रकार एक समरूप आधार तैयार किया था ।

इसाइयों के इंजीलग्रंथ में सृष्टि की व्याख्या है तथा परमात्मा को 'प्रेम' के द्वारा पाने का वर्णन है । रास में भी ब्रह्मसृष्टियों द्वारा परमात्मा को 'प्रेम' के द्वारा प्राप्ति एवं ब्रह्मांड की उत्पत्ति का विवरण है । इस तरह इंजील से समानता होने के कारण महामतिने श्रीरास को इंजील भी कहा है ।

## २.२ प्रकाश (गुजराती)

प्राणनाथजी दूसरी रचना, प्रकाश का भी काल वि.सं.-१७१५ है क्योंकि यह बानी भी जामनगर के बंदीगृह में उतरी थी और संकलित की गई थी । इसमें ३७ प्रकरण और १०६४ चौपाईयाँ हैं । इसकी भाषा गुजराती है । इस ग्रंथ में आत्मबोधक ज्ञान का वर्णन है जिसके द्वारा सांसारिक माया में भटकी हुई आत्माओं को जागृत किया गया है । जब आत्मा जाग्रत होती है तो वह बेहद बानी का रस पीने योग्य बनती है । इसमें प्रेम का तपस्या तथा साधना से श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है । इसमें तारतमज्ञान की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है ।

इस ग्रंथ को प्राणनाथजी ने दाऊद पैगंबर का जबूर ग्रंथ भी कहा है । सतगुरु और सुंदर साथ के बिछड़ जाने पर उन्होंने करुण विलाप किया जो उनकी कविताओं में फूट पड़ा । महामति के आत्मा की पुकार और करुण विलाप के इन गीतों में दादु पैगंबर की पुरानी बाईबल के गीतों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है । इसीलिए इस ग्रंथ को जबूर भी कहा है ।

### प्रकाश (हिन्दुस्तानी) :

इस ग्रंथ में ३७ प्रकरण और ११८५ चौपाईयाँ हैं । अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ होने के कारण स्वयं प्राणनाथजी ने अनूप शहर में इसका गुजराती से हिन्दी में रूपांतरण किया था जिससे समस्त ब्रह्मसृष्टियाँ इसे पहचान कर और अपनाकर सुख पावें । इसका अनुवाद काल वि.सं.१७३५ है ।

### षट्त्रितु (गुजराती) :

इसमें १५ प्रकरण और २३० चौपाईयाँ हैं यह ग्रंथ भी वि.सं.-१७१५ में जामनगर के बंदीगृह में गुरु तथा सुंदरसाथ का वियोग परमात्मा के विरह में परिणित हो गया तो इसमें परमात्मा से बिछड़ी हुई आत्मा की करुण पुकार है । इसमें षट्ऋतुओं के माध्यम से गुरु और शिष्य के वियोग का मार्मिक वर्णन है । वर्ष की छः ऋतुएँ और बारहमासा किस प्रकार प्रिय के वियोग में बिलखते हुए निकल जाते हैं, इसका हृदयस्पर्शी वर्णन है ।

### कलश (गुजराती) :

इस ग्रंथ में १२ प्रकरण और ५०६ चौपाईयाँ हैं । इसका आरंभ वि.सं.१७१५ में जामनगर के बंदीगृह में हुआ था । जहाँ पर केवल दो चौपाईयाँ उतरी थी । कुछ चौपाईयाँ दीवबंदर जाते समय नाव में उतरीं । इसका समापन सूरत में वि.सं.१७०८ में हुआ । इसकी भाषा गुजराती है । कलश में अनावश्यक रूढियों और तथाकथित धार्मिक आचरणों का विरोध किया गया है, जिससे आत्मजागती का पथ प्रशस्त हुआ है । इस ग्रंथ में महामति के दार्शनिक सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन है । इसमें ब्रह्म की खोज, जगत के स्वरूप, विभिन्न मत-मतांतरों का विस्तार, श्रीमद् भागवत का महत्व, श्री कृष्ण की त्रिधालीला, कर्म-साधना, आत्मा की जागृति के लिए विभिन्न मार्गों का प्रतिपादन आदि दार्शनिक पक्षों का वर्णन है । 'जागनी' आत्मा को जगाने का प्रकरण इसमें विशेष महत्त्व रखता है । इसमें महामति कष्टकर साधनाओं से नहीं प्रेम और विवेक से आत्मा को जगाने का उपाय बताते हैं ।

इनकी चौथी पुस्तक कलश सारे धर्मों के ज्ञान की अंतर्धाराओं का एकीकरण है । इसे हजरत मूसा का तौरत या 'तोरा' कहा गया । इसमें मूसा का वह अभियान है जहाँ वे अपने अनुयायियों को मिस्त्र से जेरूसलेम ले गए ।

### **कलश (हिन्दुस्तानी) :**

इस ग्रंथ में २४ प्रकरण और ७७१ चौपाईयाँ हैं । इसके महत्व को देखते हुए इसका भी मूल गुजराती से हिन्दी में महामतिने रूपांतरण किया था । इसका रूपांतरण वि.सं.१७३५ में अनूप शहर में किया गया ।

### **सनंद :**

इस ग्रंथ में ४२ प्रकरण और १६२१ चौपाईयाँ हैं । इसका रचनाकाल वि.सं. १७३५ है और रचना-स्थान अनूप शहर है । इसकी भाषा हिन्दी है । सनंद का अर्थ सनद है अर्थात् निर्णायक विवरण । अब तक महामति का ज्ञान वेद और अन्य हिन्दु ग्रंथों पर आधारित था । किन्तु मेड़ता में मुल्ला की अजान सुनकर कुरान को भी साथ लेकर उन्होंने एके श्वरवाद के प्रचार का संकल्प किया । इस ग्रंथ में कुरान और ईस्लाम का स्पष्ट प्रामाणिक स्वर है । इसमें मुसलमानों की धर्मान्धता का खंडन किया गया है । इसमें हिन्दु और इस्लाम दोनों धर्मों की अंध मानसिकता को दूर करके सत्य-धर्म को स्पष्ट किया गया है । हिन्दु-मुस्लिम धर्मग्रंथों के समन्वय का भी प्रयास किया गया है । कुरान से संबंधित होने से इसमें अरबी, फारसी और उर्दू शब्दों का बाहुल्य है ।

### **किरंतन :**

इस ग्रंथ में १३८ प्रकरण और २१०३ चौपाईयाँ हैं । इसके प्रणयन वि.सं.१७१५ से १७४० तक हुआ । इसकी भाषा हिन्दी है तथा कुल पद्य गुजराती तथा सिन्धी भाषा में हैं । इस ग्रंथ की अधिकांश वाणियों का महामति की यात्राओं के समय संकलित किया गया । किरंतन का अर्थ है 'किर्तन' अतः इसमें गाये जानेवाले पद्य हैं जो हिन्दुस्तानी संगीत की राग-रागिनीयों में निबन्ध हैं ।

इस ग्रंथ में देश के वातावरण की स्पष्ट छाप है जिससे उस युग में प्रचलित संप्रदायो और मत-मतांतरो की अच्छी जानकारी मिलती है । सनंध में जहाँ सच्चे मुसलमान की पहचान का निरूपण है वहीं किरंतन मे सच्चे वैष्णव-हिन्दु की पहचान की व्याख्या है ।

### **खुलासा :**

इसमें १८ प्रकरण १०२० चौपाईयाँ है । वि.सं. १७४० पन्ना में यह वाणी संकलित की गई है । इसकी भाषा हिन्दी है । खुलासा का अभिप्राय है स्पष्टीकरण । इस ग्रंथ में महामति के आध्यात्मिक विचारों का स्पष्टीकरण किया गया है । इसमें कुरान और पुराणों के पारिभाषिक शब्दों को स्पष्टकर महामति ने उनके भाषाभेद को दूर करने का प्रयास किया है।

इस ग्रंथ के 'दो नामा प्रकरण' में कुरान और पुराण के समन्वय की विराट चेष्टा है । विश्वधर्म की अवधारण और विश्व-शांति का सीधा और सरल मार्ग इस ग्रंथ में उल्लेखित है ।

### **खिलवत :**

इस ग्रंथ में १६ प्रकरण और १०४७ चौपाईयाँ हैं । इसका रचनाकाल वि.सं.१७४० तथा स्थान पन्ना है । इसकी भाषा हिन्दी है । खिलवत अरबी भाषा का शब्द है । जिसका अर्थ एकांत मिलन होता है । यह ग्रंथ प्रियतमा (आत्मा) तथा प्रेमी (परमात्मा) का एकांत मिलन है । खिलवत में आत्मा-परमात्मा की अनन्यता को निरूपित करनेवाले परिसंवाद है । आत्मा जब संसार की निस्सारता के पहचान लेती है तभी परमात्मा से मिलन की चाह उत्पन्न होती है । इस मिलन की मनःस्थिति का सजीव चित्रण इस ग्रंथ में किया गया है ।

### **परिक्रमा :**

इस ग्रंथ में ४३ प्रकरण और २४८४ चौपाईयाँ है । पन्ना में वि.सं.१७४०-४१ में इसकी रचना हुई थी । इसकी भाषा हिन्दी है । इस ग्रंथ के प्रारंभ में महामति ने 'इश्क हकीकी' - परब्रह्म के प्रति प्रेम को स्पष्ट किया है और उसमें परमधाम का विशद वर्णन और इसकी परिक्रमा का सविस्तार वर्णन है । इस ग्रंथ में परमधाम में परमात्मा के महल के चारों

और के स्थलों का सुंदर वर्णन है । इसे पढते समय लगता है जैसे हम एक महल की परिक्रमा कर रहें हो । परमधाम अनादि, अविनाशी और असीम है । इसके सौन्दर्य का वर्णन प्राणनाथजीने इस ग्रंथ में किया है । यहाँ का 'रंगमहल' अखंड भूमि के मध्य में है । इसके पूर्व की ओर जमुनाजी, अक्षरधाम, कुज-निकुंज, नहरें, वन आदि हैं । इसके 'पश्चिम की ओर फूलबाग,नूरबाग, मणि-माणिक्य आदि की नहरें है । उत्तर की ओर मधुवन, महावन, पुखराज पहाड़ आदि और दक्षिण की ओर बट-पीपल की चौकी, कुंज-निकुंज, वन, हौज़, कौसर, माणिक पहाड़, आदि स्थित है । इन सब स्थानों का वर्णन प्राणनाथजी ने इस ग्रंथ में पच्चीस पंखो (विभागों) में किया है । यहाँ की संपूर्ण शोभा प्रेममयी है तथा प्रेम की दृष्टि से ही इसे देखा जा सकता है ।

### सागर :

इस ग्रंथ में १५ प्रकरण और ११२ चौपाईयाँ हैं । वि.सं.१७४४ में इसकी रचना पत्रा में की गई । इसकी भाषा खड़ीबोली हिन्दी है । यह संपूर्ण ग्रंथ प्रतिकात्मक है । परिक्रमा में वर्णित आठों सागरों का नाम, उनका रंग तथा स्थिति इस प्रकार हैं ।

- (१) नूर सागर :-आग्नेय कोने स्थित, लाल रंग, प्रकाश का प्रतिक
- (२) नीर सागर :-दक्षिण दिशा, पीला रंग, श्यामजी की शोभा का प्रतिक
- (३) क्षीर सागर :-नैऋत्यदिशा, नीला रंग, सखियों के प्रेम का प्रतिक
- (४) दधि-सागर :-पश्चिम दिशा, सफेद रंग, श्यामाजी तथा सखियों के श्रृंगार का प्रतीक
- (५) धृत सागर :-वायव्य दिशा, श्यामरंग, इश्क(प्रेम) का प्रतिक
- (६) मधु सागर :-उत्तर दिशा, आसमानी रंग, इल्म (ज्ञान) का प्रतिक
- (७) रस सागर :-ईसान दिशा, दस रंग निसबत (संबंध) का प्रतिक
- (८) सर्वरस सागर :-पूर्व दिशा,सर्व रंग मेहर (कृपा) का प्रतिक

### (११) सिंगार :

इस ग्रंथ में २९ प्रकरण और २२१० चौपाइयाँ हैं । इसका रचनाकाल वि.सं.१७४२ तथा स्थान पन्ना है । इसकी भाषा खड़ीबोली हिन्दी है । सिंगार का तात्पर्य श्रृंगार है । इस ग्रंथ में अक्षरातीत के स्वरूप, शोभा, वस्त्राभूषणों का श्रृंगार-वर्णन हुआ है । इस तरह उनका दिव्य स्वरूप साकार हो जाता है, जिसे आत्मा अपने हृदय में बिठा लेती हैं । प्रेम के अनन्य मार्ग के द्वारा इसी स्वरूप के माध्यम से स्वयं को प्रभुमय बना लेती है ।

### सिन्धीवाणी :

इस ग्रंथ में १६ प्रकरण और ६०० चौपाइयाँ हैं । यह वि.सं.१७४३ में पन्ना में पद्यबद्ध की गई थी । इसकी भाषा सिन्धी है । सिन्धी भाषा में होने के कारण इसका नाम सिन्धी वाणी पड़ा, सिन्धी प्राणनाथजी की मातृभाषा थी । अतः इस भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था । इस ग्रंथ में उन्होंने आत्मा और परमात्मा के प्रेम-संबंध को प्रस्तुत किया । विरह और प्रेम की निश्चलता भावना इस ग्रंथ में समाहित है । इस ग्रंथ में अक्षर का खेल देखने के लिए जगत में आई हुई सखियों को अपने प्रियतम (परमात्मा) की बहुत याद सताती है क्योंकि संसार की मृगतृष्णा में भटककर उनके हाथ में कुछ नहीं लेगा । वे परमात्मा को उपालंभ देती हैं । वास्तव में जो काम प्राणनाथजी से अपेक्षित था, उसे पूर्ण न कर पाने से जो निराशा हुई, उसकी अभिव्यक्ति सिन्धी वाणी में हुई ।

इस ग्रंथ की सबसे विशिष्ट उपलब्धि है संधमुक्ति या साथमुक्ति, जिसका अर्थ है अपने अनुयायि के साथ महामति की स्वयं की मुक्ति । वह उनके जीवन का ध्येय था । वे केवल अपनी मुक्ति ही नहीं चाहते थे । वरन अपने सारे अनुयायीयों की मुक्ति भी अपने साथ चाहते थे । यह तो मध्यकालीन भारत या भारत के इतिहास में पहलीबार हुआ था ।

### मारकतसागर :



इस ग्रंथ में १४ प्रकरण एवं १०३४ चौपाईयाँ हैं । यह ग्रंथ वि.सं.१७४८ में रचा गया । इसकी भाषा उर्दू - फारसी मिश्रित खड़ीबोली है । मारफत (पूर्ण पहचान या ब्रह्मज्ञान) अध्यात्म की सबसे ऊँची अवस्था को कहा जाता है । इस ग्रंथ में कुरान के धार्मिक, सिद्धांतों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है । कुरान के अनुसार साधना की चार अवस्थाएँ - शरियत, तरीकत, हकीकत और मारिफत बताई गई है । हिन्दी विधान में इन्हें कर्मकांड, उपासना यथार्थज्ञान और ब्रह्मज्ञान के नाम से पुकारा जाता है । इस ग्रंथ में महामतिने कुरान और पुरान अर्थात् इस्लाम धर्म और हिन्दु धर्म में संगति कर धर्म समन्वय का प्रयास किया है ।

### **कयामतनामा छोटा :**

इस कयामतनामा ग्रंथ में प्रकरणों और चौपाईयों की संख्या कम है । यह माना जाता है कि छोटी बड़ी दो कयामत हुई हैं, इसलिए कयामतनामा भी दो हैं और इसलिए इसे छोटा कयामतनामा कहा गया है । संसार में अवतरित होने के बाद उन्हें अज्ञानवश संसार की माया में विलीन हो गई । अतः प्रलयकाल में उन्हें जागकर मोक्षधाम पहुँचाया जायेगा । इसग्रंथ में प्रलय के पूर्व की चेतावनी दी गई है ।

इस ग्रंथ में मोमिनों के नाम, परमात्मा का संदेश और कयामत की सूचना दी गई है । महामति प्राणनाथ के अनुसार कयामत का अर्थ है अज्ञानरूप नियम का भंग होना और रूहों का जागृत अवस्था में आना । अर्थात् आत्मा का ज्ञान से प्रकाशयुक्त होकर उठ जाना । सुहानी कयामत से अभिप्राय है आत्मा का मृतक शरीररूपी कब्र से तारतमज्ञान द्वारा जागृत हो उठना ।

### **कयामतनामा बड़ा :**

इस ग्रंथमें २४ प्रकरण तथा ५३१ चौपाईयाँ हैं । यह वाणी वि.सं.१७४७ में चित्रकुट में संकलित की गई है । इसकी भाषा अरबी, फारसी, उर्दू मिश्रित हिन्दी है ।

इसमें कयामत के आने और तमाम महेंदी के प्रकट होकर ब्रह्म समुदाय को परमधाम के चलने के लिये आह्वान है । ईसाई और इस्लाम धर्म में कयामत का विशेष महत्त्व है । सामान्यतः कयामत का अर्थ अंतिम दिन से लिया जाता है । स्थूल अर्थ में यह समझा जाता है कि कयामत के दिन दुनिया का अंत हो जाता है तथा उसके बाद एक नई दुनिया पैदा होती है । हिन्दु धर्म में इसे प्रलय कहा गया है । प्राणनाथजीने कयामत का स्थूल अर्थ न लेकर सूक्ष्म तथा आध्यात्मिक अर्थ लिया है ।

### **निष्कर्ष :**

इस प्रकार यह ग्रंथ प्राणनाथजी के अनुयायियों की आस्था का संकलन है । यह प्रणामियों का उपास्य ग्रंथ है । प्रत्येक प्रणामी मंदिर में इसकी पूजा होती है । प्रत्येक प्रणामी इस रचना में महामति के वास्तविक रूप की झलक पाता है अतः इसे 'स्वरूप साहब' भी कहा जाता है । कुलजम स्वरूप ही प्रणामियों के लिए वेद, बाईबल और कुरान है ।

### **बीतक साहित्य :**

इस संप्रदाय में महामति के जीवनवृत्त लिखने की एक परंपरा सी रही है, जिसे संप्रदाय का बीतक साहित्य कहा जा सकता है । संप्रदाय में सात जीवन वृत्त प्रचलित हैं ।

- (१) स्वामी लालदास कृत - बीतक
- (२) ब्रजभूषण कृत - बीतक या वृत्तांत मुक्तावली
- (३) स्वामी मुकुंददास या नौरंग स्वामीकृत-बीतक
- (४) बरूशी इसराज कृत - मेहराज चरित्र
- (५) सनेह सखी : लीलरास सागर
- (६) करूणा सखीकृत - बीतक
- (७) लल्लू महाराज कृत बीतक (गुजराती)

**लालदास की बीतक: सबसे पुज्य और प्रमुख बीतक**

प्रणामी संप्रदाय में जिस प्रकार श्री प्राणनाथ के बाद लालदास का स्थान है, उसी प्रकार प्रणामी संप्रदाय में उपास्य ग्रंथ कुलजम स्वरूप के बाद लालदास कृत बीतक का स्थान है ।

स्वामी लालदास पोरबंदर काठियावाड़ के प्रतिष्ठित व्यापारी थे । ठट्टानगर में लालदासजी का बृहत व्यापार था । उनके पास निन्यानवे जहाज थे । धर्मप्रिय होने के कारण उनकी गीता-भागवत् आदि शास्त्रों में विशेष रुचि थी । धर्म प्रचारक रहे हुए जिस समय प्राणनाथजी ठट्टानगर पधारे, उस समय चतुरदास नामक एक द्विज के द्वारा उन्होंने प्राणनाथजी के दर्शन किये और उनसे प्रभावित होकर "तारतमंत्र" की दिक्षा ली । जब सूरत में वि.सं.- १७२९ में प्राणनाथजी अपने सुंदर साथ सहित धर्म प्रचार करने का निश्चय किया तब लालदासजी भी उनके साथ खाली हाथ लिये चले, क्योंकि उनका व्यापार पूरी तरह नष्ट हो गया था । उन्होंने अंतिम समय तक महामतिजी का साथ दिया ।

इस तरह हम देखते हैं कि महामति प्राणनाथ के इतिहास को जानने के बारे में साधनों की कमी नहीं है । कभी थी तो उन इतिहासकारों की जो कि इस साहित्य को हिन्दी में पढ़ सके, समझ सकें और महामति और उनके विचारों को इतिहास में उचित स्थान दिला सके ।

### २.२.१ कबीर का परिचय :

साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है । अपने समय के समाज में प्रचलित विचारधाराओं, नियमों-उपनियमों आदि के प्रति उसकी दृष्टि सदैव सतर्क और जागरूक रहती है । इस सब में जो व्यक्ति समन्वय कर सके वही लोकनायक कहा जा सकता है । यह समन्वय करने की शक्ति उसी व्यक्ति में हो सकती है, जिसका दृष्टिकोण संकुचित न होकर विशाल, उदार एवं मानवतावादी होता है । साथ ही इसके लिए सुलझी हुई एवं निरीक्षण शक्ति व्यापक अध्ययन एवं गंभीर मनन और चिंतन भी आवश्यक होता है । युगधर्म से प्रभावित तो साधारण से साधारण व्यक्ति भी होते हैं, परंतु इसके युग के विपरीत चलने की शक्ति नहीं होती है वह शक्ति तो केवल "युग पुरुष" या "लोकनायक" में ही होती है । ऐसा व्यक्तित्व जन्मतः स्वभाव से ही क्रांतिकारी होता है ।

कबीरजी एक मझले कद के व्यक्ति जान पड़ते थे । इनकी मुखाकृति बहुत लम्बी नहीं है । उनके पहनावे से पता चलता है कि वे कदाचित पछहि के रहने वाले हैं । कबीरदासजी की वाणी तो योग और भक्ति का मेल है । कबीरजी के स्वभाव में स्पष्टतः योगियों से सुदृढ़ता और भक्तोसी करूणा देखी जा सकती है । कबीरदासने यह अखंडता योगियों से विरासत में पायी थी । संसार में भटकते हुए जीवों को देखकर करूणा के अश्रु से वे निराश नहीं हो जाते थे बल्कि और भी कठोर होकर प्रतिकार करते थे । अखंडता के गुण का प्रयोग वे तब करते हैं जब उन्हें किसी आड़म्बरी मनुष्य सामाजिक कुरितियों या आड़म्बरी योगी पर चपेट करनी होती है ।

कबीरदास स्वभाव से फक्कड़ भी हैं, मोह-माया से कई ऊँचे । कोई सिद्धांत यदि उनकी कसोटी पर खरा उतरता है तो वह है । सत्य का जिसे वे बिना संकोच अपनाते थे । अन्याय का विरोध करते थे, उन्हें किसी का भय नहीं था । हिन्दु हो या मुसलमान, राजा हो या अधिकारी, योगी हो या अवधूत, द्वैत हो या अद्वैत के अनुयायी यदि कुछ भी गलत देखे तो बोल देते थे । वे कहते थे कि मेरे साथ चल सकता है वो जो अपनी मोह-माया, ममता को त्यागकर चले ।

सबके लिए उनके मन में प्रेम भावना थी । बिना किसी बैर - स्वार्थ की भावना का उन्होंने कहा है ।

"कबीरा खड़ा बाजार में सबकी माँगे खैर,  
ना काहु से दोस्ती, ना काहु से बैर । "४७

मोह-माया न रखने और स्वार्थ-भावना न होने के कारण कबीरजी सिर से पैर तक मस्तमौला थे । उन्हें अपने लिए इस दुनिया से कुछ लाभ न लेना था, जो करना था बेधड़क कर गुजरते थे । कबीर तो क्रांतिकारी दृष्टा थे । वे सचमुच सरस थे । वे तो प्रेमदिवाने थे जिन्हें अपने प्रिय का पलभर भी वियोग नहीं सहन करना पड़ता था । जिनका प्रिय सदा उनके साथ था ।

"हममे है इश्क मस्ताना, हमन की होंशियारी क्या ।

रहे आजाद या जग से हमन दुनियाँ से यारी क्या ।।

जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर-बदर फिरते ।

हमारा यार है हममें, हमन को इन्तजारी क्या ।।”४८

कबीरदास का प्रेममार्ग में अखण्ड विश्वास था । जो अंत तक न टूट सका । वे तों इस मार्ग के वीरसाधक थे । इसके लिए उनके मन में कोई संशय या द्विधा नहीं थी । उनका प्रेम सिर्फ बातों का ही नहीं था । अपितु वे तो इस पर चले थे । उनके प्रेम में भावुकता नहीं है पर मस्ती है, कर्कशता नहीं है पर कठोरता है, असंयम नहीं है पर मौज है । उशूललता नहीं है पर स्वाधिनता है, अंधानुकरण नहीं है पर विश्वास है, कबीर के प्रेम में आत्मसमर्पण है ।

कबीरजी का व्यक्तित्व एकदम अत्यंत महान एवं जटिल है । एक ओर से परम संतोषी, उदार, निर्भीक, बाह्याङ्गुबर विरोधी, सात्त्विक प्रकृतिवाले संत थे । दूसरी ओर वे नाथपंथियों तथा योगियों सिद्धांतो पर भी गहरा विश्वास करते हैं ।

सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्कड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगें प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, कर्म से वंदनीय । व्यंग्य तीखे, वाणी चौटदार थोड़ी कड़वी परंतु स्पष्ट वक्ता थे । स्वभाव आक्रोशी इसलिए वाणी में कटुता का आभासी कबीर जो कुछ कहते थे अनुभव के आधार पर कहते थे । इसीलिए उनकी उक्तियाँ बंधनेवाली और व्यंग्य चोट करनेवाले होते थे । युगावतारी शक्ति और विश्वास लेकर वे पेदा हुए थे और युगप्रवर्तक की दृढ़ता उनमें विद्यमान थी । एक वाक्य में कह सकते हैं कि वे सिर से पैर तक मस्तमौल थे ।

### २.२.२ कबीरवाणी का परिचय :

कबीरदास के नाम से तो वैसे कई रचनाएँ मिलती हैं किन्तु, ये प्रामाणिक सिद्ध नहीं हुई । उनके हाथ की लिखी कोई पुस्तक नहीं हैं क्योंकि ऐसा माना जाता है कि वे निरक्षर थे । जैसाकि कबीरने स्वयं एक साखी में कहा है कि....

"मसि कागद या नहीं कलम गह्यो नहीं हाथ ।

चारूँ जुग को महातम मुखहि जनाई बात ।।<sup>४९</sup>

इससे मालुम होता है कि कबीर मौखिक प्रवचनों में अधिक विश्वास रखते थे । कबीरवाणी लोकप्रिय हो गई थी । शायद इसलिए कि श्रोताओं ने अपने कथन भी उसमें जोड़ दिए हैं । कई रचनाएँ जो कबीर की कही जाती हैं जैसे अनुराग सागर, कबीर अष्टक, गोरखगोष्ठी, कबीर की साखी, कबीर की बानी, साधो का अंग इत्यादि । किन्तु इनमें से बहुत अप्रामाणिक हैं, कुछ इतिहास सम्मत भी नहीं हैं । कुछ विद्वानों ने उनके ग्रंथों के बारे में चर्चा की है । डॉ. रामकुमार वर्मा, रामदास गोंड़, डॉ. बड़थवाल, आ. परशुराम चतुर्वेदी, हरिऔध इत्यादि । यदि प्रामाणिक रचनाएँ देखे तो तीन ही हैं । कबीर ग्रंथावली, बीजक, उलटवासी, आदि ग्रंथ ।

"आदि ग्रंथ में संग्रहित कबीर साहित्य की रचनाएँ और कबीर की ग्रंथावली की रचनाओं में कुछ भिन्नता है ।

इस ग्रंथ का संग्रहकाल सं.१५६१ माना है । बाबु श्याम सुंदरदास ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि मूलकदास 'संग्रहकर्ता जी कबीर के शिष्य थे और समकालीन सतं भी तो इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रंथावली का संग्रह कबीर के जीवनकाल में हुआ है । यह उसकी अप्रामाणिकता का एक कारण है ।

बीजककबीर पंथियों का पूज्य और विश्वशनीय ग्रंथ माना जाता है । इसका संग्रहकाल ज्ञान नहीं है । फिर भी अनुमान है कि १७वीं शताब्दी विक्रमी संवत् में किसी समय एकत्रित की गई है । इसकी भाषा भी अन्य दो से कुछ भिन्न है । यह है पुरानी पूर्वी हिन्दी । आज कबीरदास की जितनी भी रचनाएँ मिलती हैं वह मुख्यतया तीन रूपों में मिलती हैं । "साखी", पद और रमैनी । अन्य रूपों का भी प्रयोग मिलता है जैसे, चोंतीसा, बावनी विप्रमती सी, बार चांचर, वसंत, हिंडोला, बैलि, विरहली, कहरा और उलेटबाँसी शैली ।

### २.२.३ कबीर का धर्म अभियान :

कबीर समाज – सुधारक सन्त कवि थे और अपने समय की सबसे बड़ी समस्या को हल करके समाज को सुखी बनाना वे अपना धर्म समझते थे । कबीर के समय में मुसलमानों का राज्य स्थापित हो चुका था । हिन्दु लोगों में से कुछ लोग राज्याश्रित थे जिसमें उच्चवर्ग ब्राह्मणजाति आदि लोगो का समावेश हो जाता है । निम्नवर्ग के लोग भीख माँगकर अपना गुजारा बसर करते थे लेकिन मध्यमवर्ग के लोगों की समाज स्थिति अत्यंत दयनीय थी । समाज में मुसलमानों की वजह से अराजकता एवं परस्पर विद्वेष की भावना प्रवर्तमान थी । उस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता विजेताओं और विजितों के मध्य की खाई को दाटकर दोनों के बीच स्नेह सौजन्य स्थापित करना था । यह कुशल और शुभ कार्य ज्ञानमार्गी सन्त कबीर ने अपनी संपूर्ण शक्ति और ज्ञान के साथ शुरू किया ।

कबीरजीने धर्म का प्रसार करना शुरू किय और उसमें उन्होंने राम-रहीम, ईश्वर-अल्लाह और बिस्मिल- विश्वंभर की एकता सिद्ध करने का प्रयास किया है ।

" हमारे राम रहीम, करीम कैसो अलह राम सोई ।

विकसित वेहि विश्वंभर एके, और न दूजा कोई ।।

संत कबीरजीने अलग अलग देश में अलग-अलग जगह पर धर्म का प्रचार करके एक अभियान शुरू किया जो अंत तक रहा । उन्होंने धर्म का उपदेश देने की शुरुआत काशी, द्वारका, जगन्नाथपुरी आदि देशों – विदेशों में की है ।

कबीरने सत्य की ही भाँति सत्संग के महत्त्व का भी प्रतिपादन किया है । संतो की मान्यता थी कि जिस तरह पारस के स्पर्श से लोहा स्वर्ण बन जाता है उसी प्रकार सत्संग से सामान्य से सामान्य पुरुष का भी उद्धार हो जाता है । वस्तुतः प्राचीनकाल में देशाटन एवं सत्संग ही वे पाठशालाएँ थी, जिनमें पढ़कर – व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त होता था । इसीलिए ही कबीरने अपने काव्य में सत्संग के महत्त्व को प्रतिपादन किया है ।

महात्मा कबीरने कहा है कि....

जौं की भूसी खाकर भी सत्संग करना अच्छा ..

परंतु नीचों के साथ रहकर खीर और खौँड़ का भोजन भी मिले तो भी उसके निकट नहीं जाना चाहिए ।

"कबीरा संगति साधु की, जौं की भूसी खाय ।

खीर खौँड़ भोजन मिले, खाकर संग न जाय ॥"

प्राय कबीरजी परोपकारी थे । संत कबीरजी ने अपने एक दोहे में लिखा है कि हमें वृक्षोंसे कुछ सीखना चाहिए ।

**" मन तू वृच्छन से मति ले ।"**

वृक्षों की यह विशेषता है कि जो उन पर पत्थर फेंकता है उनको भी अपने फल प्रदान करते हैं । वृक्ष अपने मस्तक पर धूप और ताप सहन करते हैं और अपने आश्रय में आनेवाले पथिक को छाया देते हैं । यह सब कबीर की कही हुई बात कुछ न कुछ उदाहरण से लोगों के दिल में राज करती हैं । लोगों को सही राह दिखाते, सच्ची बात समजाते । कबीर तो यहाँ तक कहते हैं कि मनुष्य कठोर हो जाते पर वृक्ष कभी कठोर नहीं होते । जो उनको काटते हैं उनसे भी कभी नहीं रूठते । हमें वृक्ष से बहुत कुछ सीखने को मिलता है । हम मनुष्य कभी – कभी वृक्ष के साथ दुर्बल व्यक्ति को भी सताते हैं । जिसे कभी नहीं सताना चाहिए, क्योंकि उसकी हाय बुरी होती है ।

कबीर ने अलग अलग जगह पर तीर्थाटन या यात्रा करके वैराग्यवादी स्वर में कहा है कि लोगों को हमेशा सच्चा और अच्छा जीवन जीना चाहिए ।

#### **४ कबीरजी के साहित्य का परिचय :**

सन्त कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे । इसलिए यह सच है कि उन्होंने अपने हाथ से स्वयं कुछ भी कोई भी ग्रंथ नहीं लिखा । जैसे कि,

"मसि कागद छुयो नहीं, कलम गहयों नहीं हाथ ।

चारिरू युग की महातम, मुखहिं जगाई बात ॥<sup>५०</sup>



कबीरदास के नाम से वैसे तो कई रचनाएँ मिलती हैं, किन्तु वे प्रामाणिक सिद्ध नहीं हुईं। उनकी रचनाएँ जो मानी जाती हैं, उनमें भाषा-शैली में एकरूपता नहीं है। अतः कबीर की प्रामाणिक रचनाओं और उनके शुद्ध पाठ का पता लगाना कठिन कार्य है। सैंकड़ों पद और पुस्तकें अन्य लोगों ने भी कबीर के नाम से रचकर प्रसिद्ध कर दी। जिससे कठिनाई और भी बढ़ गई। अब तक अनेक संग्रह उनकी रचनाओं के नामसे प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं।

### **बीजक :**

बीजक कबीर पंथियों का धर्मग्रंथ है और इसके मूल और सही कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। कबीरपंथियों का पूण्य और विश्वसनीय ग्रन्थ माना जाता है ॥ परंतु इनकी कोई मूल प्राचीन प्रति उपलब्ध न होने से इसके संकलन की तिथि का पता नहीं चलता। फिर भी अनुमान है कि यह १७वीं शताब्दी विक्रमी संवत् में किसी समय एकत्रित की गई है। इसमें साखियाँ अंको से अनुसार नहीं मिलती हैं। 'बीजक की भाषा और उसकी प्राचीनता के विषय में विद्वान खोज कर रहे हैं। अभी तक उसे पूर्णरूप से शुद्ध और प्रामाणिक मानने के विषय में संदेह का वातावरण है।

### **कबीर ग्रन्थावली :**

कबीर का दूसरा संग्रह कबीर-ग्रन्थावली के नाम से काशीनगरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसका आधार स्वर्गीय बाबू श्यामसुंदरदास के हाथ लगी संवत् १५६१ में लिखी गई एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति है परंतु इस प्रति के अंक में दी गई पुस्तिका जिसमें उक्त तिथि लिखी है कि लिखावट पुस्तक की लिखावट से भिन्न है और पीछे से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखी हुई जान पड़ती है। इस कारण विद्वानों का उक्त तिथि की प्रामाणिकता में संदेह है और उसे निर्विवाद रूप से स्वीकार करना संभव नहीं है।

### **अन्य ग्रंथ :**

उक्त दो के अतिरिक्त अन्य संग्रहों में प्रयाग से प्रकाशित 'शब्दावली' और 'साखी संग्रह', 'साधु युग का नंद' की 'संत कबीर की साखी' विचारदास का 'साखी संग्रह' और हनुमानजी का 'साखी ग्रन्थ' प्रसिद्ध हैं । भीष्म साहनी कृत एक नाटक है 'कबीरा खड़ा बाज़ार' में परंतु इनमें किसी का आधार या कोई ऐसी प्राचीन प्रति नहीं है, जिसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता सिद्ध हो । ये संग्रह या तो अनेक प्रतियों से शोधकर प्रस्तुत किये गए हैं या तो सन्तों से सुनकर । अतः इनमें बहुत से पद और साखियाँ कबीर कृत जान पड़ने पर उनका रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है ॥ अतः प्राचीनता की दृष्टि से उपर्युक्त तीन संग्रह ही अधिक मान्य ठहराते हैं ॥

### कबीर के मुख्य काव्यरूप :

कबीर का अधिकांश साहित्य साखी, पद और रमैनी के रूप में प्राप्त है ।

### साखी :

'साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का अपभ्रंशरूप है । इसका अर्थ है परमदीप गवाह, ऐसा व्यक्ति जिसने घटना को अपनी आँखों से देखा है । कबीरने स्वयं कहा है कि साखी उन्होंने रचना कौशल दिखाने के लिये नहीं परंतु संसार की समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रयुक्त किया है । कबीर कहते हैं.....

"साखी आखी ज्ञान की,

समुझि देखि मन माहीं ॥

बिन साखी संसार का,

झगड़ा छूटत नाहीं ।<sup>५१</sup>

साखी की कोई परिभाषा नहीं दी जा सकती । साखी में प्रधानतः दो पंक्तियाँ और चार चरण होते हैं । एक पंक्ति और तीन पंक्तियों की भी साखी होती हैं । साखियाँ रचनाकार के स्वानुभूत सिद्धांतों एवं तथ्यों का वर्णन करती हैं । कबीर के पूर्ववर्ती और परवर्ती सन्तोंने 'साखी' को ही उपदेश का सशक्त साधन बनाया ।

साखियों की रचना प्रायः दोहा, छन्द में हुई है, किन्तु कबीर की साखियाँ सोरठा आदि अन्य छन्दों में भी उपलब्ध होती हैं । इन साखियों में आदर्श मानव जीव की संसारयात्रा और उसका सामाजिक स्वरूप देखा जा सकता है ।

**पद :** कबीरदास के पद या शब्द भी गेय हैं । इसे कहीं कहीं 'बानी' भी कहा गया है । पदों की रचना आदिकाल से होती चली आई है । कबीरवाणी के पद आध्यात्मिक, भाव-बोध प्रधान अधिक हैं । जब कि वे सामाजिक बोध प्रधान थी । इनमें वे धार्मिक समन्वय पर बल देते हैं । 'उलटवासी' पद लोकप्रिय हैं । जिनको उन्होंने 'उलटवेद' या 'उलटावेद' भी कहा है । विरह-मिलन के पद अधिक सुंदर बन पड़े हैं । जिनमें भक्ति की प्रगाढ़ता, सांकेतिक शैली, दाम्पत्यजीवन की 'छबियाँ' विवाह के अवसर का सजीव चित्रण, प्रेमोल्लास इत्यादि ने इन पदों को सजीवता प्रदान की है ॥

जैसे – दुलहिनि गावहुं मंगलाचार

हम घरि आए ही राजा राम भरथार ॥<sup>५२</sup>

**रमैनी :**

कबीर से पूर्व रमैनी बहुत कम मिलती है । रमैनी को 'रामाणी' तथा 'रामायण' का बिगड़ा हुआ स्वरूप माना गया है । रमैनियों की रचना, दोहा, चौपाईयों में की गई है । रमैनी का प्रयोग स्तुति वर्णन, उपदेश वर्णन या लोकोपकार के लिए किया गया है ।

'कबीर' ग्रंथावली' व 'बीजक' में रमैनी नामक रचनाएँ प्राप्त होती हैं । कबीर बीजक की एक साखी में यह बताया गया है कि.....

"जो मिलिया सो गुरू मिलिया,

सीख न मिलिया कोय,

छः लाख छानवे रमैनी,

एक जीव पर होय ।'<sup>५३</sup>

डो. बड़थवाल और पारसनाथ तिवारिने "रमैनी" को कबीरकृत ही माना है ॥

**काव्यपद्धति :**

कवि जिसे अपने अनुभव के आधार पर अभिव्यक्ति कहते हैं और अभिव्यक्ति को शब्दों से संचार कर प्रस्तुत करते हैं। उसे काव्य कह सकते हैं। काव्य में भाषा एक श्रेष्ठ माध्यम है और इसका क्षेत्र भी विशाल है।

काव्य केवल भौतिक, सुख-दुःख या आँखों की अनुभूति नहीं अपितु निच्छल और सहज आनन्दानुभूति है। ऐसा कहा जाता है कि शक्ति, निपुणता और अभ्यास आदि तत्त्व कवि को बनाते हैं। ठीक वैसे ही काव्य तब उपजता है जब चित्तदृष्टि तेज हो, वैरागी हो और निःस्वार्थी हो तथा जिसमें राम-रस अंकुर पड़े हो ऐसा काव्य केवल भाषा का कौशल ही नहीं परंतु कथनी और करनी, रहनी के समान होता है। सन्तवाणी को रस, छन्द, अलंकार, गुण, रीति आदि काव्य शास्त्रीय सिद्धांतों पर परखना ठीक नहीं क्योंकि इन सिद्धांतों का मूल स्रोत या तो भाव है या मनोविकार। मगर संत कवि के विकार की स्थिति में साहित्यकार के होने का असम्भव मानते हैं। जो सन्त काव्य का एक मूल स्रोत है। वैसे तो काव्य का सबसे महत्वपूर्ण अंग कवि की अनुभूति की सच्चाई है।

हिन्दी कवि में महात्मा कबीर निर्गुण काव्य धारा के प्रवर्तक माने जाते हैं। कबीरदासजी तदापि काव्य-कला से परिचित नहीं थे क्योंकि कविता करना उनका उद्देश्य नहीं था। उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि.....

"तुम्हें जिनि जानो गीत हैं, यहुनिज ब्रह्म विचार,  
केवल कहि समजाईया, आतम साधन सार हे ॥<sup>५४</sup>

कविता करने में वे इस विचार से अनुप्राणित जान पड़ते हैं कि...

"हरिजी यह बिचरिया, साखी कहो कबीर।  
मै सागर में जीव है जो कोई पकड़े तीर ॥<sup>५५</sup>

इसके अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य से की गई काव्य रचना को कबीर 'कोरा कवि कर्म' मानते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि कबीरने मात्र कविता करने के लिए कविता नहीं की थी और न उसका उद्देश्य कविता करके धन, यश की प्राप्ति करना था । कविता तो उनके लिए अपने विचारों तथा भावों को जनता तक पहुँचाने का माध्यम थी । उनके हृदय में सच्चाई थी और आत्मा में बल । इसलिए उनकी वाणी में शक्ति आ गई थी । उनकी वाणी की यह शक्ति ही काव्यगत सरलता और सरसता बनकर पाठक के हृदय को खुश करती रही है काव्य के रागात्मक तत्त्व से हृदय स्पर्शिता और तन्मयता की परख की जाती है । बुद्धि तत्त्व से कवि द्वारा प्रस्तुत किये गए श्रेष्ठ विचार और संदेश देखे जाते हैं, कबीर के काव्य में बुद्धि तत्त्व ही हृदय स्पर्शिता एवं तन्मयता की बहुत मात्रा में है परंतु कल्पनातत्त्व कम है । शिक्षा और शास्त्रीयज्ञान के अभाव के कारण उनमें कल्पना की ऊँची-ऊँची उड़ानों की मनोहरता नहीं उभर पाती । खण्डन-मण्डन प्रधान काव्य में रागात्मकता का प्रश्न ही नहीं उठता किन्तु जहाँ कबीर अपने प्रियतम के प्रति आत्मविभोर होकर अपने विरह और व्यथा का वर्णन किया है वहाँ रागात्मकता अपनी पूर्ण तन्मयता और हृदयस्पर्शिता के साथ साकार हो उठा है । चटपटे छन्द अस्पष्ट रूपक और अशुद्ध अलंकारों के रहते हुए भी उनके भक्ति-भावनावाले हृदय को स्पर्श कर लेते हैं । इनके मूल में उनकी गंभीर तन्मयता ही प्रधान कारण रही है ॥

### आलोच्य संतो के संप्रदाय एवं साहित्य की तुलना :

स्वामी प्राणनाथजी और संत कबीरजी दोनों संत कवि भक्त अपने-अपने युग के महामानव थे । वे दोनों अपने संप्रदाय के गुरु थे । सद्गुरु द्वारा इगित मार्ग पर अग्रसर होकर ही हम परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग पा सकते हैं । अतः सद्गुरु की ऐसी अनुपम सहायकारिता ही उसे स्वयं परमेश्वर का पद तक प्रदान करा देती है ।

"सत पुरुष सतनाम् गुरु है,

अलक रूप और अगम गुरु है ॥"<sup>५६</sup>

दोनों गुरुओंने धार्मिक एकता की धार्मिक समन्वयवादी विचारों को संखध्वनि दिव्य ध्वनि को धरती पर उतारना चाहा था । वे दोनों ही सच्चे पैगम्बर दूत या गुरु थे जो पृथ्वी पर निवास करते हुए दिव्यलोक का संदेश चुनते थे । वे सामूहिक उन्नति के द्वारा मानवता का

पैगाम ध्वनित करना चाहते थे । उन दोनों संतो का जीवन ही दिव्यानंद से प्लावित एवं अक्षर प्रेरणा से संचालित थे । जिस क्षेत्र में ऐसे महामानव पैदा होते हैं, उसे पवित्र मानना चाहिए और इन संतो को ही ईश्वरीय ज्योति के साक्षात् दर्शन समझने चाहिए ।<sup>५७</sup> वे ऐसी दिव्यज्योति थे जिसके प्रकाश से आज भी मानवता प्रकाशित हो रही है ।

स्वामी प्राणनाथ के गुरु स्वामी देवचन्द्र महाराज थे ॥ गुरु देवचन्द्र महाराज के गुरु स्वामी हरिदासजी थे । कबीरजी के गुरु रामानंद थे । ऐसा माना जाता है परंतु वास्तविक रूप में वे स्वयं ही अपने आप के गुरु थे । फिर भी कबीरजीने गुरु की उपेक्षा नहीं की ? गुरु का महत्त्व बताकर गुरुभक्ति करने के लिए कहा है ।

दोनों सन्तों ने अपने संप्रदाय या धर्म के द्वारा एक परमात्मा का संदेश दिया है । स्वामी प्राणनाथने न सिर्फ हिन्दुओं के एक परमात्मा होने की बात कही, परंतु उन्होंने तो सारे धर्मों के परमात्मा की एकता में विश्वास स्थापित किया है । चाहे हम ईश्वर कहें चाहे अल्लाह या खुदा कहें परंतु ये सारे सिर्फ नाम के ही फर्क हैं, ईश्वर तो एक ही है । देखिए...

"बोली जुदी सबन की और सबका जुदा चलन ॥

सब उलझे नाम जुदे धरे, पर मेरे तो कहना सबन ॥<sup>५८</sup>

स्वामी प्राणनाथने अपने युग में धर्म की चुस्त नीतियों के युग में सारे धर्मों के विचारों का समन्वय करके एक धर्म, विश्वधर्म की चेतना जागृत की ॥

कबीरजीने भी परमात्मा की एकता में विश्वास व्यक्त करते हुए कहा है, कि....

"राम रहिमा एक है, नाम धराया दोय ।

कहैं, कबीर दो नाम सुनि, भरम पड़ो, मति कोय ॥<sup>५९</sup>

संक्षेप में दोनों संतोंने परमात्मा की एकता का उपदेश देते हुए एक विश्वधर्म, मानवता या बंधुत्व का पैगाम दिया ।

स्वामी प्राणनाथ और संत कबीरजी दोनों ने जातिवाद का विरोध किया । भारत की सामाजिक स्थिति के मेरूदण्ड समान वर्णाश्रम समाज व्यवस्था का विरोध किया । दोनों ने ऊँच-नीच के भेद को दूर करके विश्वबंधुत्व की भावना को दोहराया है ।

स्वामी प्राणनाथने अपने विचारों के समर्थन में लिखा है कि...

"एक ही तब होवही, जब सवाक होवे सब दिल ।

ए ईक बिना न होव ही, जौ चौदे तबक आवें मिल ॥<sup>६०</sup>

एसी ही समानता की भावना को दोहराते हुए कबीरजी ने लिखा है कि....

"एक मांस, एक मलमूतर, एक बूद एक गूदा ।

एक ज्योति से सब है सिरजा, कौन ब्राह्मण, कौन खुदा ॥<sup>६१</sup>

इस तरह दोनों संतो में मानव-मानव के बीच खड़ी जातिवाद की दिवारों को धराशायी करते हुए मनुष्य मात्र को समान दृष्टि से एकात्म की भावना से देखा हैं । संसार में कोई ऊँच-नीच नहीं, आगे भी जाति न थी, शायद भविष्य में भी नहीं होगी ऐसी भावना दोहराते हुए कबीरजी लिखते हैं कि.....

"अकारन सेवा करै, निसदिन, जाँचे राम ।

कहैं कबीर सेवक नहीं, चाहै चौगुन दाम ॥<sup>६२</sup>

स्वामी प्राणनाथ एवं कबीरजी दोनों संतो का जीवन विराट था इसलिए तो कबीरजी ने अपनी गुरुगदी का बारिस अपने पुत्र को न बनाकर अपने नादपुत्र को वारिस बनाये और गुरु देवचन्द्र ने भी अपने पुत्र बिहारी को सिर्फ सांसारिक गुरुगदी का वारिस बनाते हुए धर्म अभियान के प्रमुख कार्य की जिम्मेदारी तो अपने नादपुत्र मेहराज ठक्कर अर्थात् स्वामी प्राणनाथ को ही सौंपी थी और स्वामी प्राणनाथ ने भी तारतम धर्म की सुरक्षा करने के कार्य अपने नादपुत्र राजा छत्रशाल को सौंपा था । स्वामी प्राणनाथने भी तारतमसागर को गुरुगदीतर स्थापित करके पवित्र स्थान दिया और कबीरजीने 'बीजक' की रचना करते हुए

ब्रह्म की पहचान शब्दों में करने का आदेश दिया था । इस प्रकार दोनों सन्तों ने गुणवाणी को ही गुरु का रूप प्रदान किया है ॥

कबीरजीने निराकार भक्ति का उपदेश दिया था । परंतु निराकार भक्ति में भी रामभक्ति ही अपनाई थी । स्वामी प्राणनाथने भी सारा आश्रित निराकार भक्ति का ही उपदेश दिया है । सच है निराकार परमात्मा की उपासना करनेवाले भी 'ऊँ' को ईश्वर या परमात्मा मानते हुए धातु में 'ॐ' लिखकर उपासना करते ही हैं । मुसलमान खुदा को बेचगुन, बेसली और बेनमून मानते हैं, परंतु मक्का में जाकर काले पत्थर को चूमते हैं फिर भी खुदा को निराकार मानते हैं । अतः दोनों सन्तो ने परमात्मा को निराकार मानते हुए साकार रूप की उपेक्षा नहीं की । संक्षेप में दोनों संतो ने की भक्ति साकाराश्रित निराकार भक्ति का रूप है ।

कबीरजीने सामाजिक जाग्रति का आह्वान किया । धार्मिक सुधार के माध्यम से समाज को ऊँच-नीच, जातिवाद की संकीर्ण दीवारों से बाहर निकालना चाहा । परंतु धर्म के नाम पर रक्त बहाना शुरू हुआ तब ईश्वर की ईच्छा का परिणाम मानकर भाग्यवाद की आड़ में मानव मन की क्रूरता को कोसते रहे परंतु समयान्तर पर हिन्दु धर्म पर होते हुए अत्याचारों के खिलाफ शहीद होने की सलाह देते हुए, धर्म की सुरक्षा करते-करते प्राणों का बलिदान देने का आह्वान भी दिया था । धर्म की सुरक्षा हेतु प्राण को न्यौछावर करनेवाले सिखों का समुदाय बनाकर खालसापंथ की स्थापना भी कर दी गई । इस प्रकार वीरता को प्रोत्साहन देते हुए एक शिस्तबद्ध देशप्रेमी पंथ की शुरुआत की । स्वामी प्राणनाथजी ने भी जब हिन्दु धर्म पर होते हुए अत्याचारों को देखा और धर्म समन्वय के द्वारा एक ही परमात्मा का ज्ञान 'इस्लामधर्मी शासकों के कान तक न पहुँचा । तब अपने नादपुत्र राजा छत्रशाल का धर्मरक्षा का आह्वान देकर हाथ में तलवार सोंप दी थी । इस प्रकार दोनों संतो ने वीर, शिस्तबद्ध, मानवता सभर और देशप्रेमी सम्प्रदाय देकर हिन्दु धर्म का सक्षम सम्बल प्रदान किया ।

स्वामी प्राणनाथ और कबीर दोनों संतो ने धर्म के नाम पर होते हुए अत्याचारों का विरोध किया था । ब्राह्मणोंने धर्म के नाम पर ब्राह्मणवाद, कर्मकाण्ड और अंधविश्वास का ही



साम्राज्य फैलाया था और धार्मिक विधि-विधानों का ही प्रभुत्व जमा दिया था । स्वामी प्राणनाथने ऐसे आड़म्बरों का रदा चिरते हुए कहा है कि १४ भुवन की बात करते हो, मृतक को जीवित करते हो, परंतु खुद की पहचान तो है नहीं....

"आगम भाखो, मनकी परखों, सुझे चौदे भवन ।

मृतक कौ जीवित करो, पर घर की न होवें गम ॥<sup>६३</sup>

स्वामी प्राणनाथ और कबीर दोनों संतोने परमात्मा के नाम स्मरण की महिमा का पैगाम देश के कोने कोने में पहुँचाने के लिए यात्राएँ की । उन्होंने विविध धर्मों के मतानुसार राम-रहीम की कर्ता पर बल देते हुए शास्त्रों की गूढ़वाणी को सरलवाणी में प्रवाहित करके, एक ही ईश्वर की प्रार्थना या बंदगी करने का उपदेश देते हुए शास्त्रों में व्यक्त वैचारिक एकता पर प्रकाश डाला है....

"लोक चौदे कहे वेद ने, सोई कतेब चौदे तबक ।

बेद कह ब्रह्म एक है, कतेब कहे एक हक्क ॥

नाम सारों जुदे धरे, लई सबो में जुदी रसमा ।

सबमें उन्मत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म ॥<sup>६४</sup>

कबीरजीने भी ईश्वर की एकता पर बल दिया है...

"राम रहीम दूजा नहीं भाई कहूँ कौन भरमाया ॥

साहब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय ॥ ॥

कहे कबीरा दास फकीरा अपनी राह चल भाई ।

हिन्दु तुरक का करता एकै, ता गति तखि नी जाई ॥<sup>६५</sup>

स्वामी प्राणनाथजीने कहा है...

"जो कुछ कह्या कतेबने, साहिं कह्या वेद ।

दोनों बंदे एक साहब के, पर लड़त बिना पाए भेद ॥<sup>६६</sup>

स्वामी प्राणनाथजीने साकार ब्रह्म की उपासना का संदेश दिया है परंतु वे त्रिगुणात्मक नहीं, चिदानन्दमय है । निराकार का आशय वर्णनातीत आकार है । सच्चा प्रेम और श्रद्धा के द्वारा ही परमात्मा की प्राप्ति होती है । प्राणनाथजी कहते हैं कि..

"सुन निरगुण निरंजन, देखें बैकुण्ठ निराकार ।

अक्षर पार अक्षरातीत, प्रेम प्रकाशयो पार के पास ॥<sup>६७</sup>

और

"अपार अपार करी जो कहे, तो आपें नहिं बुद्धि मांहे, ।

तो गितनी करके सबे, वही धन न आहें ॥<sup>६८</sup>

– नवरंग स्वामी

ईश्वर का अर्थ है परब्रह्म । प्रणव ऊँकार उपासना ही ब्रह्म की उपासना है । अर्थात् एक ऊँकार स्वरूप परमात्मा । तेरा नाम सत्य है । तू ही जगत का निर्माता है । अभयदाता और निर्वोर है । तू अकाल मूर्ति है, काल का नियामक है, इसलिए बंधनमुक्त है । तेरा जन्म नहीं होता । तू तो आत्म प्रकाश से प्रकाशित है । मैं तेरी आराधना करता हूँ । तू आदि, सत्य, अतीत का सत्य, वर्तमान का भी सत्य है और भविष्य में भी सत्य रहेगा । गोस्वामी तुलसीदासने भी परमात्मा प्राप्ति के लिए मंत्रनाथ में विश्वास व्यक्त करते हुए कहा है कि... "मंत्रजाप मम दृढ विश्वास" (तुलसीदास) संक्षेप में कबीरजीने भी निराकार परमात्मा की बात कहते हुए भी ब्रह्म के प्रतिपादक के रूप में 'ऊँ' को याद किया है ।

स्वामी प्राणनाथ और संत कबीरजी दोनों ने गुरु की महिमा स्वीकार की हैं । दोनों ने गुरु की दिव्य ज्योति में परमात्मा के दर्शन किए हैं । प्राणनाथजी लिखते हैं कि....

"मृगजल सों जो त्रिखा भाजे, तो गुरु बिना जीव पार नावैं ।

अनेक उपाय करें जो कोई, तो बिंदका बिंद में समावे ॥<sup>६९</sup>

कबीरजीने भी गुरु का महत्त्व बताते हुए कहा है कि....

"गुरु गोविंद दोनों खड़े काके लागु पाय, ।  
बलिहारी गुरु आपनी, गोविंद दियो बताया ॥  
"गुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार ।  
लोचन अनंत उघाड़या अनंत दिखावणहार ॥

इस प्रकार दोनों संतोने गुरु चरणों में सच्चा तीर्थ और गुरु को ही सच्चा परमात्मा स्वरूप कह दिया है ।

स्वामी प्राणनाथ और कबीर दोनों ने उन्नत चरित्र पर बल दिया है । स्वच्छ चरित्र ही उन्नत एवं सक्षम जीवन का आधार है । आज भी इन आधार को स्वीकार कर विवेचक कहते हैं.....

Simple living and high thinking.

दोनों संतोने इसे स्वीकारा है । इसके लिए 'अहम्' का त्याग करना उत्तम पथ माना है । ईश्वर प्राक्तित के पथ का अहम् अवरोधक रहित है । इसलिए अहम् का त्याग करने पर दोनों ने बल दिया है । स्वामी प्राणनाथने इस भावना को दोहराते हुए लिखा है कि....

"सखीरी आतमरोग बुरो लग्यो, चाको दारू न मिले तबीब ।  
चौद भवन में न पाईए, सो हुआ हाथ हबीब ॥  
आतम रोग कासों कहिए, जिन पाठ दुई पर आतम ।  
ए रोग क्यों ना मिटे, जो ला देखे ना मुख ब्रह्म ॥<sup>७०</sup>

कबीर ने भी 'अहम्' के नाश पर बल दिया है....

"जहाँ मैं हूँ, वहाँ हरि नहीं जहाँ हरि है, मैं नहीं ।  
प्रेमगली अति सँकरी, तामे दोऊ न समाही ॥<sup>७१</sup>

अर्थात् अहम् की समाप्ति पर ही बल दिया है । जहाँ 'अहम्' वहाँ हरि नहीं और हरि है वहाँ 'अहम्' नहीं रह सकता, क्योंकि ये तो प्रेमगली है जो सँकरी है । इसमें दोनों का

समावेश शक्य नहीं है । जब 'अहम्' का संपूर्णतया सर्वनाश होता है तब ही परमात्मा के दर्शन होते हैं । ईश्वर प्रेम या समर्पण के मनोभाव में 'अहम्' का कोई स्थान नहीं होता ।

स्वामी प्राणनाथ और कबीर दोनों सन्तों ने करनी-कथनी की साम्यता पर बल दिया है । मन की पवित्रता और मन, वचन और कर्म में एकरूपता ही जीवन को लक्ष्य तक पहुँचाती है...जैसे कबीर कहते हैं कि...

"कथनी मीठी खांडूसी, करनी विष की लोय ।

कथनी से करनी करे, विष से अमृत होय ॥<sup>७२</sup>

संक्षेप में कर्म के अनुसार ही फल प्राप्ति होती है इसलिए जीवन संदेश और जीवन कर्तव्य में एकरूपता का होना अनिवार्य है । व्यवहार के बिना वाणी का कोई महत्त्व नहीं है ।

अर्थात् जैसे कार्य करो वैसे कार्य का ही प्रचार करो, कहीं ऐसा कर्म न करो कि ईश्वर के दरबार में हार मिले ।

दोनों संत स्वामी प्राणनाथ और कबीरने अपने साहित्य और विचारों में नारी जीवन को महत्त्वपूर्ण बताया है । स्वामी प्राणनाथने गुरुपुत्र बिहारीजी के आदेश का पालन करने के लिए स्पष्ट अशक्ति बताते हुए कह दिया था कि गुरु देवचन्द्र महाराजने खोजीबाई को दीक्षामंत्र दिया था और इसलिए विधवा को दीक्षा मंत्र देने का आदेश मैं स्वीकार नहीं कर सकता ।

अर्थात् नारी के गर्भ में जन्म लेते हैं, नारी के साथ मैंगनी और विवाह होते हैं । संसार नारी से चलता है । नारी के बिना जन्म संभव नहीं ।

नारी के साम्राज्य से पर सिर्फ एक ही परमात्मा का साम्राज्य है । परमात्मा के गुण जिस मुख से निष्पन्न होते हैं, चाहे वे नर हो या नारी वे ही मुख प्रभु दरबार में उन्नत रहता है । स्वामी प्राणनाथने नारी को दीक्षा न देना सद्गुरु के आदेश के विरुद्ध जाना होगा ऐसा माना है ।

कबीरजीने भी नारी सन्मान के सिवा जीवन को अधूरा समझा और स्वामी विवेकानंद ने भी कहा है कि भारत का सुनहरा निर्माण भारतीय नारी की जागृति में नीहित है ।

कबीरजी कहते हैं कि....

"नाम न रहा तो क्या हुआ, जो अंतर है हेत ।

पतिबरता पिव को भजे मुख से नाम न लेत ॥

उपरोक्त विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिए दोनों संतोने पदयात्राएँ की थी । कबीरजी की पदयात्राओं का हेतु सामाजिक चेतना का था । उन्होंने यात्रा के दरम्यान हिन्दु धर्म में फैले बाह्याङ्गम, अंधश्रद्धा का विरोध किया । स्वामी प्राणनाथजी ने ईस्लाम धर्म के अत्याचार का विरोध किया । हिन्दु धर्म में फैली हुई संकीर्णता दूर करने का प्रयत्न किया और यदि ईस्लामी अत्याचार रुक न पाये तो हिन्दु धर्म की सुरक्षा हेतु हिन्दु राजाओं को तलवार उठाने का आह्वान भी दिया था । अतः स्वामी प्राणनाथने की पदयात्राओं का हेतु अत्याचार का विरोध और हिन्दु धर्म की सुरक्षा हेतु जनजागृति जगाना था ।

संक्षेप में दोनों संतोने धर्म का सच्चा रूप प्रदर्शित किया । समाज में नवजागृति या जनजागृति की चेतना प्रज्वलित की । दोनों ने परमात्मा को सतरूप बताते हुए मानवता का संदेश दिया । दोनों ने समाज की बुराई के सामने चेतावनी का सूर देते हुए सामाजिक सुधार का मार्ग बतलाते हुए परमात्मा प्राप्ति की सही राह प्रदर्शित की ।

## चेप्टर -२

--: संदर्भसूचि ::-

| क्रम | पुस्तक का नाम   | लेखक का नाम               | प्रकाशन वर्ष                   | पृ.नं. |
|------|---|---------------------------|--------------------------------|--------|
| (१)  | स्वामी प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय                  | डॉ. एस.पी .<br>मुखरया     | श्री ५,नवतनपूरी<br>धाम जामनगर  | पृ -२३ |
| (२)  | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-५८  |
| (३)  | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-५८  |
| (४)  | स्वामी प्रा. और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन    | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-५९  |
| (५)  | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ- ५९ |
| (६)  | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ- ६० |
| (७)  | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ- ६० |
| (८)  | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ- ६१ |
| (९)  | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक                     | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ- ६२ |

|      |   |                            |                                 |        |
|------|---|----------------------------|---------------------------------|--------|
|      | तुलनात्मक अध्ययन  |                            |                                 |        |
| (१०) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष - १९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-६२  |
| (११) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष - १९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-६२  |
| (१२) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष - १९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-६२  |
| (१३) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष - १९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-६२  |
| (१४) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष - १९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-६२  |
| (१५) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष - १९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-७७  |
| (१६) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा | प्रकाशन वर्ष - १९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-७७  |
| (१७) | महाराजा छत्रशाल<br>बुंदेला                              | डो. गवानदास<br>गुप्त       | आग्र                            | पृ-१०२ |
| (१८) | महाराजा छत्रशाल<br>बुंदेला                              | डो. भगवानदास<br>गुप्त      | आग्रा                           | पृ-१०३ |
| (१९) | महाराजा छत्रशाल<br>बुंदेला                              | डो. भगवानदास<br>गुप्त      | आग्रा                           | पृ-१०३ |
| (२०) | महाराजा छत्रशाल   | डो. भगवानदास               | आग्रा                           | पृ-१०३ |

|      |   |                             |                                |        |
|------|---|-----------------------------|--------------------------------|--------|
|      | बुंदेला   | गुप्त                       |                                |        |
| (२१) | महाराजा छत्रशाल<br>बुंदेला                              | डो. भगवानदास<br>गुप्त       | आग्रा                          | पृ-१०४ |
| (२२) | महाराजा छत्रशाल<br>बुंदेला                              | डो. भगवानदास<br>गुप्त       | आग्रा                          | पृ-१०४ |
| (२३) | महाराजा छत्रशाल<br>बुंदेला                              | डो. भगवानदास<br>गुप्त       | आग्रा                          | पृ-१०४ |
| (२४) | महाराजा छत्रशाल<br>बुंदेला                              | डो. भगवानदास<br>गुप्त आग्रा |                                | पृ-१०५ |
| (२५) | महाराजा छत्रशाल<br>बुंदेला                              | डो. भगवानदास<br>गुप्त       | आग्रा                          | पृ-१०५ |
| (२६) | महाराजा छत्रशाल<br>बुंदेला                              | डो. भगवानदास<br>गुप्त       | आग्रा                          | पृ-१०६ |
| (२७) | महाराजा छत्रशाल<br>बुंदेला                              | डो. भगवानदास<br>गुप्त       | आग्रा                          | पृ-१०२ |
| (२८) | महाराजा छत्रशाल<br>बुंदेला                              | डो. भगवानदास<br>गुप्त       | आग्रा                          | पृ-११० |
| (२९) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा  | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-६७  |
| (३०) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा  | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-७०  |
| (३१) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा  | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-७०  |
| (३२) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा  | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-७०  |
| (३३) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक                     | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा  | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-७१  |





|      |   |  |  |        |
|------|---|--|--|--------|
| (४५) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा              | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद                     | पृ-७६  |
| (४६) | महामति प्राणनाथ एवं<br>प्रणामी संप्रदाय                 | डो.एस. पी.<br>मुखरया                   | श्री पूनमवतनपुरधाम -<br>जामनगर                     | पृ-१५  |
| (४७) | कबीर पदावली : एक<br>अध्ययन                              | निर्देशिका<br>डो.सुधाबहन<br>सी. पौराणा | शोध - छात्रा देवी और<br>वाला, सौ. युनि.,<br>राजकोट | पृ-१७  |
| (४८) | कबीर पदावली : एक<br>अध्ययन                              | निर्देशिका<br>डो.सुधाबहन<br>सी. पौराणा | शोध - छात्रा देवी<br>आर.वाला, सौ. युनि.,<br>राजकोट | पृ-१८  |
| (४९) | कबीर पदावली : एक<br>अध्ययन                              | निर्देशिका<br>डो.सुधाबहन<br>सी. पौराणा | शोध - छात्रा देवी<br>आर.वाला, सौ. युनि.,<br>राजकोट | पृ-१९  |
| (५०) | कबीर पदावली : एक<br>अध्ययन                              | निर्देशिका<br>डो.सुधाबहन<br>सी. पौराणा | शोध - छात्रा देवी<br>आर.वाला, सौ. युनि.<br>राजकोट  | पृ-१९  |
| (५१) | कबीर पदावली : एक<br>अध्ययन                              | निर्देशिका<br>डो.सुधाबहन<br>सी. पौराणा | शोध - छात्रा देवी<br>आर.वाला, सौ. युनि.<br>राजकोट  | पृ-२१  |
| (५२) | कबीर पदावली : एक<br>अध्ययन                              | निर्देशिका<br>डो.सुधाबहन<br>सी. पौराणा | शोध - छात्रा देवी<br>आर.वाला, सौ. युनि.,<br>राजकोट | पृ-२२  |
| (५३) | कबीर पदावली : एक<br>अध्ययन                              | निर्देशिका<br>डो.सुधाबहन<br>सी. पौराणा | शोध - छात्रा देवी आर.<br>वाला, सौ. युनि., राजकोट   | पृ-२२  |
| (५४) | कबीर पदावली : एक<br>अध्ययन                              | निर्देशिका<br>डो.सुधाबहन<br>सी. पौराणा | शोध - छात्रा देवी<br>आर.वाला, सौ. युनि.,<br>राजकोट | पृ-२३  |
| (५५) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा              | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद                     | पृ-१०१ |

|      |   |                                   |                                |            |
|------|---|-----------------------------------|--------------------------------|------------|
| (५६) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा         | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-१०१     |
| (५७) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा         | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-१०१     |
| (५८) | साखी ग्रंथ  | पं. हजूर<br>प्रकाशमणिनाम<br>साहेब | -                              | पृ-१६६     |
| (५९) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा         | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-७८      |
| (६०) | साखी ग्रंथ  | पं. हजूर<br>प्रकाशमणिनाम<br>साहेब | -                              | पृ-१०४     |
| (६१) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा         | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-<br>१०४ |
| (६२) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा         | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-१०४     |
| (६३) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा         | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-१०५     |
| (६४) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा         | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-१०५     |
| (६५) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन,<br>सी. पौराणा         | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-१०५     |

|      |   |                                   |                                 |        |
|------|---|-----------------------------------|---------------------------------|--------|
| (६६) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा        | प्रकाशन वर्ष - १९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-१०५ |
| (६७) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा        | प्रकाशन वर्ष - १९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-१०६ |
| (६८) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा        | प्रकाशन वर्ष - १९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-१०७ |
| (६९) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन,<br>सी. पौराणा        | प्रकाशन वर्ष - १९९६<br>ईलाहाबाद | पृ-१०७ |
| (७०) | सद्गुरू कबीर साहब<br>का साखी ग्रंथ                      | पं. हजूर<br>प्रकाशमणिनाम<br>साहेब | -                               | पृ-२९८ |
| (७१) | सद्गुरू कबीर साहब<br>का साखी ग्रंथ                      | पं. हजूर<br>प्रकाशमणिनाम<br>साहेब | -                               | पृ-१७४ |

## तृतीय अध्याय

### स्वामी प्राणनाथ रचित तारतमसागर और कबीर के पदों का परिचयात्मक अध्ययन

स्वामी प्राणनाथ रचित 'तारतमसागर' का परिचय :

प्रस्तावना :

मध्ययुगीन भारत में संतो द्वारा निष्पन्न वाणी तत्पुगीन परिस्थितियों की देन है। वह समाज अपने मन की शान्ति के लिए ईश्वर की शरण खोजने लगा। इससे एक वर्ग ऐसा अद्भूत हुआ जिसने कठोर कर्मकाण्ड के द्वारा ईश्वर प्राप्ति का पथ पाने की कोशिश की और दूसरे वर्ग ने निर्गुण – निराकार के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति का प्रयत्न किया। मध्ययुग के संतोंने इस पराभव एवं अवसाद से हतप्रभ जनता को द्विधा का समाधान बताया, जिसमें अपनी विचारधारा को छोड़े बिना ही दूसरों के विचारों को अपनाने की शक्ति थी। संतोंने अपनी बुलंद वाणी से जनता की नींद ही उलटकर कर्मकाण्ड और ज्ञानमार्ग की कठोरता से मुक्त सहज भक्तिसाधना का मार्ग प्रशस्त किया।

संतोंने छोट-छोटे पन्थों में बँटे जानेवाले समाज को परस्पर पास लाने के प्रयत्नों के एक भागरूप उपदेशात्मक वाणी द्वारा उनके मन की गहरी चेतना को जगाने का प्रयत्न किया। संतोंने ईश्वर की आराधना में लीन होकर, अपने आपको भुलकर नाम स्मरण की जो रट लगायी थी वही नाम-स्मरण उनकी भक्तिपूर्ण वाणी बन गयी। नाम-स्मरण से उनके मन में भावनाओं का सागर लहराता था। उन भावनाओं को पद-संकीर्तन के रूप में प्रवाहित कर देते थे, संतो की ऐसी प्रवाहित वाणी ने ही सन्त साहित्य का रूप धारण किया था।

आलोच्य भक्त कवि स्वामी प्राणनाथ और कबीर दोनों अपने युग के ऐसे कवि थे, जिन्हें अपने भक्ति-भावपूर्ण वाणी द्वारा अपने युग की महाधार्मिक भावना साम्प्रदायिक विद्वेषको दूर करने का महान प्रयास किया जिसके फलस्वरूप भारत में सामाजिक संस्कृति

का जन्म हुआ ।<sup>१</sup> जो मध्ययुग की ही नहीं, वर्तमान युग की भी पुकार है, माँग है । सर्वधर्म समन्वय दिव्य ज्योति जगानेवाले इन महानधर्म गुरुओं में ईश्वरीय शक्ति की प्रतीति होगी ॥ इन कवियों की वाणी का उद्देश्य प्रभुप्रीति और मानव कल्याण ही रहे हैं । अतः इनकी रचनाओं का विशेष परिचय प्राप्त करना आवश्यक है ।

### स्वामी प्राणनाथ कृत 'तारतमसागर' :

स्वामी प्राणनाथ की समस्त रचनाओं का संकलन 'श्री स्वरूप साहब' के रूप में प्रणामी मंदिरों की गुरुगदी पर आज भी बिराजमान है । मानवजीवन के अज्ञानरूपी अंधकार को मिटाकर सत्यब्रह्मका मार्ग प्रशस्त करके इस मोहसागर से मानवी का उद्धार करनेवाली वाणी को जनता (प्रणामीभक्त) तारतमवाणी के नाम से पहचानती है ।<sup>२</sup>

स्वामी प्राणनाथजी की वाणीका अवतरण वि.सं.१७०३ में शुरू होकर वि.सं. १७४८ तक हुआ था ।<sup>३</sup> स्वामी का उद्देश्य काव्य रचना करना कदापि नहीं था । अपने 'रास ग्रंथ' में 'ह्रस्व-दीर्घ' आदि नियमों का एवं पिंगल शब्दावली का पालन करके काव्य रचना करना उन्होंने कवियों का कौशल माना है । उन्होंने कहा है कि "ऐसा कौशल मैं भी जानता हूँ परन्तु आध्यात्मिक वाणी में ये शोभा नहीं देता ।"<sup>४</sup> अतः स्वामी प्राणनाथजी की रचनाओं में निष्पन्न भावनाओं का ही हम आदर करेंगे ।

### (१) श्रीरास ग्रंथ :

श्रीरास ग्रंथ श्रीकृष्ण प्रणामी धर्म-निजानंद सम्प्रदाय का परम पावन महाग्रंथ महामति श्री प्राणनाथजी की दिव्यवाणी श्री तारतमसागर का पुण्यग्रंथ है । विश्व में प्रचलित भिन्न-भिन्न धार्मिक मत-मतान्तरों, मान्यताओं, विचारों एवं सिद्धांत पृथक-पृथक अथवा मिश्रित रूप में समाहित होने से महामति श्री प्राणनाथजी के समग्र उपदेश के नवनीत को "श्री तारतमसागर" कहा गया है । इस विशालकाय ग्रन्थ में धर्म के सिद्धांत, दर्शन, साधना पद्धति एवं मान्यताओं के साथ-साथ परमात्मा का धाम, स्वरूप, नाम तथा लीलाओं का विशद वर्णन है । विभिन्न मत-मतान्तर एवं धर्म में प्रचलित बाह्याङ्ग से मुक्त होकर धर्म

के शुद्ध स्वरूप के पालन की प्रक्रिया तथा उदित सुशिक्षित एवं स्वस्थ समाज की रचनाओं की बात इसमें कही गई है । प्रत्येक सुंदर साथ के लिए अपने मूल स्वरूप परम-आत्मा, मूलधर, परमाधम एवं अपने स्वामी पूर्णब्रह्म परमात्मा की पहचान के लिए मार्गदर्शिका होने से इस महाग्रन्थ को पूर्णब्रह्म परमात्मा की वाङ्मय मूर्ति के रूप में श्रीकृष्ण प्रणामी मंदिरों में पधराकर उसका पूजन, पठन तथा पारायण किया जाता है । इसमें हिन्दी, गुजराती, सिन्धी, अरबी आदि भाषाओं तथा अरबी-फारसी मिश्रित हिन्दी एवं जाटी आदि बोलियों का प्रयोग हुआ है ।

रासग्रन्थ गुजराती भाषा में है । इसका अवतरण वि.सं.१७१४-१५ में श्री नवतनपुरी जामनगर में हुआ था । इसमें कुल-४७ प्रकरण एवं ३०२ चौपाईयाँ हैं । अक्षरातीत श्रीकृष्ण - श्री राजाजी एवं ब्रह्मात्माओं की आनंदमयी लीलाओं का विस्तृत वर्णन होने से दिव्य प्रेम रस से आप्लावित इस ग्रन्थ को इंजील(अंजील) भी कहा गया है ।

"रसौ वै सः" कहकर अक्षरातीत श्रीकृष्ण को रसरूप अथवा रसराज बताया गया है । उनकी दिव्यलीला रासलीला है । रास शब्दसमूह का द्योतक भी है । उनकी दिव्यलीला से रसराज श्रीकृष्ण अपनी अंगनाओं को परमानंद की अनुभूति करवाने के लिए इस लीला में समूह (अनेक) रूप में प्रकट हुए । इसी ब्रह्मीलीलाका वर्णन होने से यह ग्रंथ 'श्री रास' कहलाया ।

इसमें प्रारंभ के पाँच प्रकरण रास की अनुभूति के लिए योग्यता का निदर्शन करवाते हैं । इसलिए उनको ग्रंथ की भूमिका के रूप में माना गया है । मूलतः ग्रन्थ का शुभारंभ श्री श्यामाजी के सिनगार से हुआ है । सर्वप्रथम अवतरित प्रकरण भी यही है । निजानन्दाचार्य श्री देवचन्द्रजी श्रीश्यामाजी के अवतार हैं । उनके धामगमन के पश्चात उनकी स्मृति में एक मेला करने का आयोजन, महामति श्री प्राणनाथजी ने किया था । उसी समय उनको बन्दीगृह (हबसा) में जाना पड़ा । वहाँ पर सद्गुरु का विरह इतना तीव्र बना कि महामति अपने देहभाव को ही भूल गए । उसी समय उन्हें रासलीला के दर्शन हुए । सर्वप्रथम श्री श्यामाजी पर उनकी दृष्टि पड़ी और उन्होंने उनका स्वरूप एवं श्रृंगार का वर्णन किया ।

" अखण्ड स्वरूपनी अस्थि आकारे

शोभा कहूँ धणवे करीने स्नेह ।

जोई जोई वचन आणुं कै ऊँचा ।

पण न आवे वाणी मांहे तेह ॥<sup>५</sup>

तद्न्तर ब्रह्माताओं एवं श्री राजजी पर उनकी दृष्टि पड़ी और उन्होंने श्रृंगार का वर्णन किया ।

श्री कृष्ण की बंसीध्वनि सुनकर जैसे ब्रह्मात्माएँ गृहत्याग एवं देहत्याग कर वृन्दावन पहुँचती है उसी समय योगमायाने उनको शरीर एवं श्रृंगार प्रदान किया । श्रीकृष्णजीने ब्रह्मात्माओं की परीक्षा के लिए लोकमर्यादा एवं वेद मर्यादा की बात कही थी उसका उल्लेख महामतिने श्रीमद्भागवत की भाँति ही किया है । तद्न्तर वृन्दावन के दृश्य दिखाते हुए प्रकृति का मनोहर वर्णन किया ।

महामतिने रासके अनेक रमतों (क्रिड़ाओं) का वर्णन किया है । उनमें हमची, आँखमिचौनी, फूदड़ी, भूलभूलवनी, गढ़ की रमत, करताली, घूमरड़ी, कोणियाँ, आम्बा की रमत, उड़न खटोला आदि विशेष हैं । महामति का यह मौलिक वर्णन है । इस प्रकार का वर्णन श्रीमद् भागवत, गर्गसंहिता आदि श्री कृष्ण लीलापरक ग्रंथों में कहीं भी नहीं है । इसी प्रकार अन्तर्धान के पश्चात् महारास की लीलाएँ हुई । उसके लिए श्री कृष्णक भजनानन्द स्वरूप का उल्लेख किया है । तदनन्तर जलक्रीड़ा (झीलना), भोग (भोजन) एवं परस्पर बैठकर वार्तालाप करने का प्रसंग भी अन्यत्र नहीं मिलता है ।

गोपियाँ अन्तर्धान के विरह की वेदना व्यक्त करती हुई श्री कृष्णजी से प्रार्थना करती है, प्रभो ! अब हमें वहाँ पर ले चलें जहाँ कभी भी वियोग नहीं होता है ।

"हवे वाला हूँ एटलुं मांगु , खिण एक अलगा न थे ।

जिहाँ अमने ब्रह नहीं, चालोते घर जैए ।<sup>६</sup>



वास्तव में विरह रहित घर तो परमधाम ही होता है । महामतिने यह भी स्पष्ट किया है कि पूर्णब्रह्म परमात्माने ब्रह्मात्माओं की सुरता को थोड़े क्षण के लिए परमधाम लौटाया किन्तु दुःखरूप जगत का खेल देखने की उनकी इच्छा शेष रह जाने से पुनः उन्हें नश्वर जगत में भेज दिया ।

इस प्रकार रास ग्रंथ में लीला वर्णन के साथ-साथ अनेक रहस्य भी स्पष्ट किए हैं ।

श्री रास में माधुर्य भाव-भक्ति के गीत गाए गए हैं । इसमें वृंदावन और श्रीकृष्णलीला की महिमा गाई गई है । "रास" का तथ्य है प्रेम ! प्रेम से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है । दैहिक सुख क्षणिक है परंतु वैसा ही शाश्वत सुख ईश्वर द्वारा प्राप्त होता है । 'रास' की रचना में गोपी अपने आप को भूल जाती है । इसलिए प्राणनाथजी श्री रास में अपने पहले 'मोहजल' के प्रकरण में कहते हैं कि...

"हवे पहलां मोहजलनी कहुं वात, ते तां दुःखरूपी दिन रात ।

दावानल बले कै भांत, तेनी केटली कहुं विख्यात ॥"<sup>९</sup>

इन्द्रावती के रूप में महामति श्री प्राणनाथी कहते हैं कि अब मैं सर्वप्रथम मोहजाल (भवसागर) की बात कह रहा हूँ, इसमें दिन और रात दोनों दुःखरूप हैं । दावानल की भ्रांति काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार मनुष्य के अंतःकरण को हरक्षण जलाते रहते हैं । मैं इसका वर्णन कहाँ तक करूँ ।

'सुक सनकादिकने नव टली, लेखमी नारायणने करी वले ।

विष्णु वैकुण्ठ लीधां मांहे, सागर शिखर न मूक्यां क्यां हैं ॥"<sup>६</sup>

श्री शुकदेवजी तथा ब्रह्माजी के मानसपुत्र सनकादि भी इसके प्रभाव से बच नहीं सके। इसने लक्ष्मीजी तथा भगवान नारायण को घेर लिया, यहाँ तक कि इसने भगवान विष्णु को वैकुण्ठ को भी अपनी लपेट में ले लिया है । सागर से शिखर (पाताल से वैकुण्ठ) तक इस मायाने किसी को भी नहीं छोड़ा है ।

श्री प्राणनाथजी कहते हैं कि अपने आपको उपर ऊँचा उठाना है तो पहले मोह-माया का त्याग करो क्योंकि मोहमायाने तो भगवान को भी नहीं छोड़ा । माया का त्याग करोगे तभी अपना उद्धार कर पाओगे । इसलिए माया को दूर करो वे कहते हैं कि...

"माया गई पोताने घेर, हवे आतम तुं जाग्यानी केर ।

तो मायानो थयोनाश, जो धणिए, की धो प्रकाश ॥<sup>९</sup>

माया अपने स्थान पर चली गई अर्थात् माया के गतिरोध दूर हो गए हैं । हे आत्मा ! अब तू जागृत होने का प्रयत्न कर, अब तो सद्गुरुने अन्तर हृदय को प्रकाशित कर माया को नाश कर दिया है ।

"वाले वेश लीधो रलियामणो, कांई करसुं रंग विलास ।

आपत छे कांई अति घणी, वालो पूरसे आपणी आस ॥<sup>१०</sup>

प्रियतम श्री कृष्ण परमात्माने सुन्दर वेश धारण किया है । अब हम उनके साथ आनंद विलास करेंगे । श्रीकृष्णजी के साथ रमत खेलने की हमारी उत्कृष्ट इच्छा है । जिसे वे पूरी करेंगे सब सखियाँ उमंग में आ गई हैं ।

महामतिजी कहते हैं कि...

"एह सरूपने एक वृंदावन, ए जमुना तट सार ।

धरथी तीत ब्रह्मांडथी अलेगो, ते तारतमें किधो निर्धार ॥<sup>११</sup>

"श्यामसुंदर श्रीकृष्ण और सखियों का यह दिव्य स्वरूप यह अखण्ड वृंदावन तथा यमुनाजी का तट रमणीय है ।"योगमाया द्वारा रचित यह रास मंडल का स्थान (अखण्ड वृंदावन) परमधाम से इस और तथा कालमाया के ब्रह्माण्ड से भिन्न है । इसका स्पष्टीकरण निश्चित रूप से तारतज्ञान द्वारा ही हुआ है ।

"आपण रंग भर रमिए रास, वालोजी, वली आविया रे ।

कांई उत्पनो अंग उल्लास, सुंदर सुख लाविया रे ॥<sup>१२</sup>

इन्द्रावती कहती है, हे सखियों ! अब हम सभी मिलकर उमंग से रासलीला प्रारंभ करें, क्योंकि प्रियतम पुनः पधारे हैं । हमारे अंगोमे फिर ऐसा उत्साह और उल्लास छा गया है मानो प्रियतम अनुपम सुख और अखण्ड प्रेमानन्दरूपी सुख लेकर पुनः आ गए हैं ।

"सखी दियो रे मांहों मांहे हाथ, वचे जोड़ लीजिए रे ।

श्याम-श्यामाजी पाखलवाड़, सखियों तणी कीजिए रे ।।"

हे सखियो ! हम एक दूसरे के हाथ पकड़कर श्याम और श्यामाजीकी जोड़ी को बीच में ले ले और (वृत्त) घेरा बनाकर उन्हें घेर लें ।

इस प्रकार लीला करें कि हाथ मज़बूती से पकड़े रखें ताकि हमारे बनाए हुए घेरे में प्रियतम बँधे रहे । इनका हृदय अति कठोर हैं, इनसे डरते रहना । अब तक एक क्षण के लिए भी उन्हें अलग होने नहीं देना, इन पर विश्वास रखना ही नहीं । वे कहती है कि उनके मुखारविंद पर अधर रखकर जीवन का सुख प्राप्त करें । उनका प्रेम तो अवर्णित है उसका वर्णन भला कैसे हो सकता है ।

प्रियतमने सखियों के ये वचन सुनकर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया और अपना स्नेही हृदय उन्हें देकर समरसता प्रदान की ।

यहाँ कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम, कृष्ण के प्रति उनकी अप्रतिम भक्ति एवं समर्पण भावना है । गोपियाँ परमात्मा का विरह सहन नहीं कर सकती थी । इसलिए दुनिया की रशमों को त्यागकर, परमात्मा की पुकार सुनकर, सर्वस्व छोड़कर चल दी ।

" इन्द्रावती कहे अमने वाला, भला रमाडया रास ।

पछे ते घर मूलेगे, वालो तेडी चाल्या सहु साथ ।।

"वाला वालमजी मारा जीरे प्रीतम अमारा"

इन्द्रावती कहती है, हे प्रियतम ! आपने हमें सुंदर ढंग से रास रमणे करवाया ! तदुपरान्त प्रियतम श्री कृष्णजी समस्त सखियों को साथ लेकर (बुलाकर) मूल धर परमधाम की ओर चले ।

## (२) श्री प्रकाश ग्रन्थ :- (गुजराती)

श्री प्रकाश ग्रन्थ मूलतः गुजराती भाषा में है । महामतिने स्वयं इसका हिन्दी भाषान्तर भी किया है । इस ग्रन्थ का अवतरण श्री ५ नवतनपुरी धाम, जामनगर में हुआ था ।

श्री प्रकाशग्रन्थ रासलीला के रहस्य को प्रकाशित करता है । पूर्णब्रह्म परमात्माने अपनी आत्माओं को ब्रज एवं रास की लीलाओं का अनुभव करवाया । इन लीलाओं में श्री कृष्ण साथ में थे इसलिए ब्रह्मात्माओं को नश्वर जगत के सुख-दुखों का अधिक अनुभव नहीं हुआ और सब तेजोमय हो गए ।

प्रकाश का अर्थ है तेज । प्रकाश में वेद के तत्त्वों का निरूपण किया गया है । मानवमात्र की आत्मा को ज्ञान का तेज देनेवाला ग्रन्थ अर्थात् प्रकाश है । इसमें आत्मा की आवाज को जागृत करके, भूली भटकी सांसारिक आत्मा को श्रीधर की सुध देनेवाले, आत्मा को परमात्मा की सही पहचान देनेवाले पद संग्रहित हैं ।

ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में अहम् एक रोड़ा है, अवरोध है । जो हमें सत्गुरु की सेवा से दूर रखता है । सत्गुरु की कृपा पाने के लिए वैदिक शरणागति की आवश्यकता रहती है । समय या स्थान की दूरी तो स्मृति से मिटायी जा सकती है । सतत स्मरण से प्रियजन के निकट होने का एहसास होता है, परंतु अहम् दूर ले जाता है । जयमाला के १०८ मोती हमें साधना क्षेत्र के १०८ सोपानों की याद दिलाते हैं । ध्यान, जप-माला, साधना के माध्यम से सतत् जागृति एवं ईश्वर की कृपा दर्शन का हम अनुभव कर सकते हैं ।

स्वामी प्राणनाथने ईश्वर की प्राप्ति के लिए की जाती हुई दौड़-धूप निरर्थक बताया है । तीर्थयात्रा, धमौन्धता, बाह्याचार आदि को स्वामी प्राणनाथने नहीं स्वीकारा । उन्होंने सिर्फ नाम स्मरण, जप और प्रतिभाव के द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग बताया है ।

इस प्रकार प्रकाश ग्रन्थ अज्ञानरूप आवरण को दूर कर आत्मा को प्रकाशित करता है । इस हेतु जागते और जगाने का आहवान दिया है देखिए...

"स्वप्नवतमां खिण न मूके, तो साख्यात् अलगां केम थाएजी ।

कृपा वालाजीनी केही कहुं, जो जुए जीव सदया मांहेजी ।।"<sup>१३</sup>

स्वप्नवत् लीला-ब्रज और रास के ब्रह्मांड में (परमधाम तथा धामधनी का पूरा परिचय प्राप्त न होने पर उसे स्वप्नवत कहा है ) भी प्रियतम धनी श्रीकृष्णने ब्रह्मात्माओं को क्षणमात्र के लिए भी अलग नहीं किया, तो इस जागनी के ब्रह्मांड में साक्षात् सद्गुरु के रूप में पधारे हुए हमारे धनी श्रीश्यामाश्याम हमसे अलग कैसे होंगे ? इसलिए उनकी कृपा का वर्णन, किस प्रकार करूँ । यदि जीव हृदयपूर्वक विचार कर देखे तो उसे अनुभव होगा कि प्रियतम की दया का वर्णन नहीं हो सकता है । देखिए :

"मारो आसरो कांई न हतो मारा धणी, पण मुने बंने सरूप दया कीधी घणी ।

सेवा मांहे न हती सरीख, नव जाणुं मुने निध दीधी कर्म करीस ।।"<sup>१४</sup>

हे मेरे धनी ! आपको छोड़कर मेरा कोई आश्रय नहीं था । आप दोनों स्वरूपों (श्रीकृष्ण एवं श्री सद्गुरु) ने मुझ पर अत्यंत दया की है । मैं तो सेवा में भी ठीक रूप से उपस्थित नहीं रह सकी फिर भी न जाने क्यों आपने मुझे तारतमरूपी अखण्ड नीधि प्रदान की । देखिए ।।।।।

" त्यारे सहु कोई पाम्यो मन अचरज एम लखमीजीने देखाडयुं ब्रज ।

समा थई बेठा भगवान, लखमीजी एम भाजी हाम ।।"<sup>१५</sup>

उस समय सबके मनमें आश्चर्य हुआ । इस प्रकार लीला (अभिनय) करके विष्णु भगवानने रूखमणीजी (लक्ष्मीजी) को ब्रज की लीला का महत्त्व दिखाया । (विष्णु भगवान ब्रज के स्वरूप का ही ध्यान करते थे, इस तथ्य को संकेतो द्वारा रूखमणिजी को बता दिया) फिर भगवान विष्णु शान्त होकर बैठ गए । इस प्रकार लक्ष्मीजी की मनोकामना पूर्ण की । जैसे ...

" नौतनपुरीमां ए निध, सारी सनंधे गोताणी ।

निरसी गोती ने नेह करी, साथमां संभलाणी ।।"<sup>१६</sup>

सद्गुरुने श्री पू. नवतनपुरी धाम में इस तारतम नीधि को अच्छी तरह ढूँढ़ा ।  
ज्ञानरूपी संपत्ति को देखकर तथा खोजकर उन्होंने समस्त सुंदर साथ को स्नेहपूर्वक सुनाया ।

"बेहद करी वाटडी, जो जो तमे साथ ।

तारतम तेज छे निरमल, जोत अति अजवास ॥<sup>१७</sup>

है सुन्दरसाथजी ! इस बेहदभूमि (अखण्ड परमधाम) के मार्ग को विचारपूर्वक देखो । तारतम ज्ञान का प्रकाश तो अत्यधिक निर्मल एवं अति उज्ज्वल है ।

"प्रगट थासे पाधरी, जो जो रास प्रकाश ।

ग्रन्थ सधलानी उत्पन्न, वाणी वेद व्यास ॥<sup>१८</sup>

तुम रास और प्रकाश के वचनों का अवलोकन करो । आगे जाकर इसका प्रकाश स्पष्ट (सरल) रूप से प्रकट होगा । वेद व्यासजी की वाणी से सभी पौराणिक ग्रन्थ उत्पन्न हुए हैं । देखिए ...

"शुकजीए लीला वरणवी, ब्रज रास, वखाण्यो ।

बेहदनी वाणी बिना, ठाम ठाम बंधाव्यो ॥<sup>१९</sup>

शुकदेवमुनिने श्रीमद्भागवत में ब्रज तथा रास का विवरण तो दिया परंतु जेहदवाणी – तारतमज्ञान की उपलब्धि के बिना वे अनेक स्थानों पर रूक गई ।

महामतिजी का कहने का मतलब है कि तारतमज्ञान के बिना सबकुछ निरर्थक है । इसलिए वे श्रीप्रकाश में पहले से लेकर अंत तक जीवन को सरल जीने का रास्ता तारतमज्ञान को आधार बनाकर बताते हैं । अंत में कहते हैं कि ...

" पछे साथे उठीने बेठा थया, एह वचन आगलथी कहा ।

इन्द्रावती कहे उठसे अक्षर, लई आनंद पोताने घेर ॥<sup>२०</sup>

इसके बाद सुन्दरसाथ जागृत होकर परमधाम में बैठ गए । उपरोक्त लीला की कथा मैंने पहले से कही है अर्थात् भविष्यवाणी की है । इन्द्रावती कहती है कि अक्षरब्रह्म भी आनंदमंगल पूर्वक परमधाम के प्रेम और आनन्द का अनुभव कर अपने घर अक्षरधाम में जाग्रत होंगे ।

### (३) श्री षट्त्रितु एवं श्री कलश :

षट्त्रितु ग्रन्थ गुजराती भाषा में है । इसका अवतरण श्री ५ नवतनपुरी जामनगर में हुआ । उसमें दो विभाग है, (१) षट्त्रितु एवं (२) श्री कलश । महामतिने स्वयं इसका हिन्दी भाषा में भाषान्तर किया है । इसकी प्रारंभिक चौपाईयों का अवतरण श्री पेनवतनपुरी धाम जामनगर में हुआ और ग्रन्थ का शेष भाग सूरत में पूर्ण हुआ । इसलिए इसका अवतरण स्थान सूरत माना जाता है । "शास्त्र शब्द मात्र जो वाणी, ताको कलश वाणी शब्दातीत ।।"<sup>२१</sup> कहकर महामतिने ज्ञानग्रंथो के कलश के रूप में इसे शिरोमणि कहा है । यह ग्रन्थ तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण है । इसमें प्रथम प्रकरण में ही आत्मा एवं परमात्मा के वार्तालाप का उल्लेख है । निदानन्दाचार्य श्री देवचन्द्रजी महाराज के मनमें बाल्यकाल से ही जिज्ञासा रहती थी कि, मैं कौन हूँ, यह संसार क्या है, परमात्मा कहा है, उनके साथ मेरा संबंध है या नहीं ? आदि आदि ... उन्होंने अनेक वर्षों तक खोज की ! चालीस वर्ष की आयु में उन्हें पूर्णब्रह्म परमात्मा के दर्शन प्राप्त हुए और परमात्माने उन्हें तारतम-ज्ञान प्रदान किया, मंत्र दिया एवं पाताल से परमधाम पर्यन्त का अनुभव करवाया । दूसरे एवं तीसरे प्रकरण में नश्वर जगत के खेल का सुन्दर चित्रण किया है । तदुपरान्त नश्वर जगत में प्रचलित विभिन्न मत-मतान्तर एवं पंथों के खींचातान की बात की है । विराट् ब्रह्माण्ड की उलझने, वेदों का रहस्य, अवतारों का प्रकरण जागनी का प्रकरण, गोकुल लीला, जोगमाया का प्रकरण, दया का प्रकरण, हँसी का प्रकरण आदि के पश्चात् जागनी के प्रकरण है ।

इसमें परमात्मा को क्षर अक्षर से परे अक्षरातीत के रूप में बताया गया है और उनका स्वरूप शून्य निराकार से सच्चिदानन्द स्वरूप बताया है । अन्त में आत्मा जाग्रत होने पर सच्चिदानन्द की अनुभूति हो पाएगी यह स्पष्ट किया है । जैसे कि ...

"मारा वालाजी रे, वल्लभ, कहुं एक विनंती ।

मारा करमतणी रे कथायं, सुणो मारी आपविती ।।"<sup>२२</sup>

इन्द्रावती कहती है, हे मेरे प्रियतम धनी ! मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरे कर्मों की कथाएँ तथा मेरी आप बिती सुनिए ।

"वाला आव्यो ते मारा अषाढ, के रूत मलारमी ।

जाणुं करी रे वालासुं विलास, लेसुं लाण आधारनी ।।<sup>२३</sup>

हे प्रियतम धनी ! आषाढ मास आया है । (इसी महिने में परमधाम से ब्रह्मात्माओं की सुरत इस खेलमें आई थी ), यह वही मल्हार की ऋतु है । मन में ऐसा विचार आता है कि इस ऋतु में अपने प्रियतम धनी के साथ प्रेम विलासकर धनी के अखण्ड सुख का आनन्द लूँ ।

"मारा अवगुण घणां रे अनंत, पण छेह केम दीजिए रे ।

एणे वचने इन्द्रावती अंग, वालो तेड़ी लीजिए रे ।।<sup>२४</sup>

मुझमें असंख्य अवगुण है, फिर भी आप मुझे क्यों वियोग दे रहे हैं ? (आप तो क्षमावान् है) प्रार्थना के ये वचन सुनकर है प्रियतम धनी ! अपनी अज्ञाना इन्द्रावती को अपने पास बुला लीजिए ।

"रूतड़ी आवी रे मारा वाला, वसंत रूत रलियामणी ।

तम विना मारा धणी धामना, लागे अलखामणी रे ।।<sup>२५</sup>

हे प्रियतम ! रमणीय वसंत ऋतु आ पहुँची है, हे मेरे धामधनी ! आपके बिना तो यह ऋतु भी दुःखदायिनी (अरूचिकर) लगती है ।

**श्रीकलश : (गुजराती)**

"रासनो प्रकाश थयो, ते प्रकाशनो प्रकाश ।

ते ऊरवली कलश धरूँ, तेमां करूँ ते अति अजवास ।।<sup>२६</sup>

इन्द्रावती कहती है, वृन्दावन में श्रीकृष्णजी द्वारा की गई अखण्ड रासलीला का प्रकाश रासग्रन्थ में प्रकाशित हुआ । उस रास का प्रकाश (स्पष्टीकरण) प्रकाश ग्रंथ में किया गया । इन दोनों रास तथा प्रकाश ग्रंथों के ऊपर मंदिरों के शिखर पर कलश की भाँति कलशग्रन्थ प्रस्तुत कर रही हूँ । यह कलश ग्रन्थ ब्रज, रास तथा परमधाम की रहस्यमयी लीलाओं से भरा हुआ है । अब मैं इसका स्पष्टीकरण कर रहा हूँ ।



" आम कहूँ वली ए मघे, जिहां तारतमनो विस्तार ।

वासनाओं पाँचे बुधे करी, साख पूरसे संसार ।।<sup>२७</sup>

मैं इस ब्रह्माण्ड के बीच पुनः उत्तम (श्रेष्ठ) स्थान की बात कर रही हूँ, वह स्थान नवतनपुरी है जहाँ तारतम का उदय तथा विस्तार हुआ है । अक्षरब्रह्म की जाग्रत बुद्धि पाँचों वासनाओं को जाग्रत कर स्वयं में समावेश करेंगी तब समस्त संसार के प्राणी इसकी साक्षी देंगे ।

"बुध तारतम लई करी, पसरी बेराटने अंग ।

अक्षरने एणी विधे, रूदे चढ़यो अधिको रंग ।।<sup>२८</sup>

जोत बुध बने अम कने, अमे प्रगट कीधां प्रकाश ।

पुरूं आस अक्षरनी, मारू सुख देखाडी साख्यात ।।<sup>२९</sup>

अक्षर की बुद्धि तारतमज्ञान को लेकर विराट के चौदह लोकों में विस्तृत होगी । अर्थात् श्री तारतम सागर का चारों ओर प्रचार होगा । इस प्रकार अक्षरब्रह्म के हृदय में अखण्ड परमधाम की लीलाओं पर अधिक रंग (आनंद) चढ़ेंगा ।

तारतम की ज्योति तथा अक्षर की बुद्धि दोनों ही मेरे अन्तः करण में विराजमान है । इनके द्वारा मैंने अक्षरधाम तथा परमधाम की लीलाओं का प्रकाश प्रकट किया । अब अक्षर-ब्रह्म की मनोकामना को भी साक्षात् परमधाम के अखण्ड (निज) सुख दिखाकर पूर्ण कर दूँ ।

" इन्द्रावती शुं अंतत रंगे, स्याम समागम थयो ।

साथ मेलो जगववा, इन्द्रावतीने में कह्यो ।।<sup>३०</sup>

इन्द्रावती की अंतरात्माने धामधनी का समागम हो गया है, सद्गुरु कहते थे कि समस्त ब्रह्मसृष्टि को एकसाथ जाग्रत करने के लिए मैंने इन्द्रावती से कहा है अर्थात् जागनी का उतरदायित्व इन्द्रावती को सौंपा है ।

#### (४) श्री प्रकाश हिन्दी :

श्री प्रकाश ग्रन्थ मूलतः गुजराती भाषा में है । महामतिने स्वयं इसका हिन्दी भाषा में रूपान्तर किया है । इसके हिन्दी रूपान्तर का अवतरण अनूप शहर में हुआ है ।

हिन्दी रूपान्तरण में भी प्रकरण संख्या गुजराती की ही भाँति है किन्तु भाव को अधिक स्पष्ट करने के कारण चौपाई संख्या में वृद्धि हुई है । महामतिने स्वयं इसका हिन्दी रूपान्तरण किया है इससे यह स्पष्ट होता है कि इसका महत्त्व विशेष है । इसमें विरवाणी, बेहदवाणी एवं प्रकट वाणी को अधिक स्पष्ट किया है । शेष सभी प्रसंग गुजराती के अनुरूप हैं ।

श्री प्रकाश ग्रन्थ रासलीला के रहस्य को प्रकाशित करता है । पूर्णब्रह्म परमात्माने अपनी आत्माओं को व्रज एवं रास की लीलाओं का अनुभव करवाया । इन लीलाओं में श्रीकृष्ण साथ है इसलिए ब्रह्मात्माओं को नश्वर जगत के सुख-दुःखों का अधिक अनुभव नहीं हुआ । महामति कहते हैं, "प्रेम पियासों न करे अन्तर तो ए दुःख भी दुःख जैसा नहीं लगता । ब्रह्मात्माओं को सांसारिक दुःख - सुखों का अनुभव करवाकर जाग्रत करने के लिए जागती लीला है । प्रकाश ग्रन्थ जागती का प्रथम सोपान है । इसके प्रारंभ में ब्रह्मात्माओं का अवतरण, उन्हें जगाने के लिए श्यामाजी को सद्गुरु के रूप में भेजने का उल्लेख है । वे सुंदरसाथ को अपनी मूल बात याद बताकर सचेत करते हैं । श्री राजजीने श्री श्यामाजी को अपनी शक्ति प्रदान कर ब्रह्मात्माओं को जाग्रत करने के लिए सद्गुरु के रूप में भेजा । ब्रह्मात्माएँ उनके वचनों को समझ नहीं पाई । सद्गुरु के धामगमन होने पर उनके विरह में सन्तप्त इन्द्रावती की वेदना कुछ प्रकरणों में व्यक्त हुई है । अनेक प्रकरणों में ब्रह्मात्माओं को स्वयं जाग्रत होकर दूसरों को जाग्रत करने के लिए प्रेरणा दी गई है । उनमें मार्कण्डेय का दृष्टान्त, राजा परीक्षित एवं शुकदेवजी का संवाद बेहदवाणी प्रकटवाणी आदि मुख्य हैं । सूत कातने के उदाहरण द्वारा कर्तव्य का बोध करवाया है । लक्ष्मीजी के दृष्टान्त द्वारा श्री कृष्णजी सर्वोपरिता समझाई है । बेहदवाणी द्वारा क्षर, अक्षर एवं अक्षरातीत् का रहस्य स्पष्ट किया है ।

इस प्रकार प्रकाश ग्रन्थ अज्ञानरूप आवरण को दूर कर आत्मा को प्रकाशित करता है  
– जैसे

"कछु इन विध कियो रास, खेल फिरे धर ।

खेल देखने के कारन, आईयां उमदा कर ॥<sup>३१</sup>

इन्द्रावती कहती है योगमाया द्वारा रचित वृंदावन में कुछ इस प्रकार से रासलीला कर  
फिर हम ब्रह्मात्माओं की सुरता (क्षण मात्र के लिए) अपने मूलधर-परमधाम में लौटी,  
मायावी खेल देखने की ईच्छा से ही हम इस संसार में आई थी ।

"आशंका ना रहे किसी की, जो कीजे तारतम विचारजी ।

सो रोसनाई ले तारतम की, आए आपन में आधार जी ॥<sup>३२</sup>

यदि तारतम ज्ञान पर विचार करके देखें तो किसी के ।

भी मन में किसी भी प्रकार की आशंका नहीं रहेगी ॥

ऐसे तारतम ज्ञान का प्रकाश लेकर धामधनी हमारे ।

बीच सद्गुरु श्रीदेवचन्द्रजी के रूप में पधारे हैं ॥

" रास प्रकाश छोड़ो जिन खिन, जो बीतक अपनी परवानगी ।

ए छल तुम से क्योंए न छूटे, पर मैं ना छोड़ों तुमे निरवानजी ॥<sup>३३</sup>

"सुंदरबाई अंतरगत कहे, प्रकाश कवन अति भारी जी ।

साथ वचन ए चित दे सुनियो, देखियो तारतम विचारीजी ॥<sup>३४</sup>

रास तथा प्रकाश को एक क्षण के लिए भी हृदय से दूर मत करो । यही अपनी  
प्रामाणिक बीतक है । यह माया तुमसे किसी भी प्रकार छूट नहीं रही है फिर भी मैं तुम्हें इस  
माया में लिप्त रहने नहीं दूँगी ।

सद्गुरु श्रीदेवचन्द्रजी (सुन्दरबाई) मेरे हृदय में बैठकर इस प्रकाश ग्रन्थ के मार्मिक  
वचन कहला रहे हैं । हे सुन्दरसाथजी ! वचनों का ध्यानपूर्वक सुनो और तारतमज्ञान पर  
भली भाँति विचार कर देखो ।

"बलिहारी जाऊँ बहोत बार, देहरी मंदिर द्वार ।

वारने जाऊँ इन जिमी के, जहाँ बसत मेरे आधार ।।<sup>३५</sup>

बलि जाऊँ पाही पलंग सिराने, चादर सिरख तलाई ।

भी बली जाऊँ आंगने, आगे पीछे सब साज ।

जहाँ बैठे उठो पाऊँ घरो, धनी मेरे श्री राज ।।<sup>३६</sup>।।

सद्गुरु धनी जहाँ विराजमान रहे, उस मंदिर के द्वार और देहरी (पर्णकुटी) पर मैं बार-बार बलिहारी जाऊँ । इस भूमि पर मैं न्यौछावर हो जाती हूँ जहाँ मेरे प्राणधार विराजमान है।

मैं उस पलंग, पाटी, तकिया, गदा, चादर और बिछौने पर बलिहारी जाऊँ जहाँ पर प्रियतम सद्गुरु पिछौरी ओढ़कर शयन करते थे । उस पलंग के ऊपर सुंदर चँदवा तना हुआ रहता था ।

मैं पुनः उस आँगन पर बलिहारी जाऊँ, जहाँ आगे पीछे सेवा और आनंद के सभी साधन उपलब्ध था और जहाँ पर मेरे प्रियतम श्री राजजी के स्वरूप मेरे सद्गुरु उठते बैठते और चलते फिरते थे ।

"इतहीं बैठे घर जागे धाम, पूरन मनोरज हुए सब काम ।

धनी महातम इस ताली दे, साथ उठा हँसता मुख लें ।।<sup>३७</sup>

तारतम ज्ञान के प्रताप से ब्रह्मात्माएँ संसार में रहती हुई भी परमधाममें जाग्रत हुई । सबके मनोरथ सब प्रकार से पूर्ण हो गए । महामति कहते हैं, धामधनीने ब्रह्मात्माओं को जाग्रत करने के लिए हँसते हुए ताली दी और समस्त ब्रह्मात्माएँ भी हँसती हुई परमधाममें जाग्रत हुई ।।"

#### (५) श्री कलश (हिन्दी)

श्री कलश ग्रन्थ मूलतः गुजराती भाषा में है महामतिने अनुपशहर में रहते हुए इसका स्वयं हिन्दी रूपांतर किया है । गुजराती से हिन्दी में रूपान्तरित करते हुए इसमें प्रकरणों एवं चौपाईयों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई है ।

''शास्त्र शब्द मात्र जो वाणी, ताको कलश वाणी, शब्दातीत ' कहकर महामतिने ज्ञान के ग्रन्थों के कलश के रूप में इसे शिरोमणि कहा है । महामतिने स्वयं इसे गुजराती से हिन्दी में रूपान्तरित किया और प्रकरणों एवं चौपाईयों की संख्या भी बढ़ाई ।

निजानन्दाचार्य श्री देवचन्द्रजी महाराज को पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए । उन्होंने परमात्मा के साथ वार्तालाप किया । परमात्माने उन्हें अपनी, उनके आत्मा की, नश्वरजगत की और परमधाम की पहचान करवायी । ब्रह्मात्माओं के अवतरण का कारण स्पष्ट किया और उन्हें जाग्रत करने का दायित्व सौंपते हुए तारतममंत्र प्रदान किया । पाताल से परमधाम पर्यन्त का अनुभव करवाया । इसमें श्रीदेवचन्द्रजी एवं श्री कृष्णजी के वार्तालाप का विवरण दिया है ।

इसमें विरह एवं प्रेम का निरूपण हैं । नश्वरजगत का खेल, खेल के पात्र, विभिन्न मत मतान्तरों की पारस्परिक खिंचतान, विराट ब्रह्मांड एवं वेद की गुत्थियाँ (पहेली) आदि समझायी हैं । गोकुल लीलाका वर्णन, योगमाया का वर्णनकर पूर्णब्रह्म परमात्मा की दया का विवेचन किया है ।

इस प्रकार श्रीकलश, ग्रन्थ समग्र स्थान ग्रन्थों के शिरोमणि कलश के रूप में प्रतिष्ठित हैं ।

'कलश' मंदिर का शिखर होता है । वही मंदिर की शोभा होता है, वही मंदिर का गौरव होता है । जैसे.....

सुनियो बानी सोहागनी, हूती जो अकथ अगम ।

सो वीतक कहूँ तुमको, उड जासी सब भरम ।।<sup>३९</sup>

हे सुहागिन आत्माओं ! इन दिव्य वचनों को सुनो जो अभी तक अकथ अवर्णनीय तथा अगम कह गए हैं । मैं तुम्हें वह वृत्तान्त (वीतक) सुनाऊँ जिसे सुनने पर सभी भ्रातियाँ मिट जाएँगी ।

" रास कहा सुनके, अब तो मूल अंकूर ।

कलश इति सबन को, नूर पर नूर सिर नूर ॥<sup>४०</sup>

सद्गुरु के मुखारविन्द से सुने अनुसार मैंने रास का कुछ वर्णन किया है । अब तो उनकी कृपा के कारण परमधाम का मूल संबंध (अंकुर) उदय हुआ है । यह कलशग्रन्थ संपूर्ण धर्मग्रंथ के प्रकाश के समान सर्वोपरि रासग्रंथ तथा उसके प्रकाश स्वरूप प्रकाशग्रन्थ के भी प्रकाश में कलश के समान प्रतिष्ठित होगा । अर्थात् यह वाणी अखण्ड व्रज-रास से परे अक्षरधाम तथा उससे भी पर अक्षरातीत परमधाम की जानकारी देने में कलश के समान श्रेष्ठ सिद्ध होगी ।

"जल जिमी वाए को, अवकास कियो है डंड ।

चौदे तब चारों तरफों परपंच खडा परचंड ॥<sup>४१</sup>

यामें खेल कै होवहीं, सो केते कहूँ विचित्र ।

तिमर तेज रूत रंग फिरें, ससि सूर फिरें नखत्र ॥<sup>४२</sup>

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच तत्त्वों से इस ब्रह्मांड की रचना हुई है । चौदह लोको में चारों ओर इन्ही पाँच तत्त्वों का प्रचंड प्रपंच दिखाई देता है ।

इस जगत में कई प्रकार के खेल होते हैं, उनकी विचित्रता का वर्णन कहाँ तक करूँ । यहाँ पर सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र तथा तारागण घूमते रहते हैं, जिससे दिन (तेज) रात (तिमिर) तथा विभिन्न ऋतुएँ रङ्ग बदलती रहती हैं ।

स्वामी प्राणनाथजी अपने वचनों से सारे सुंदरसाथ को मायावी चक्र से बाहर निकालना चाहते हैं वे कहते हैं कि ...

"एता भी मैं तो कहा, जो साथ को भरम का घेना ।

बचन दो एक कहके, टालं सो दुतिया चैन ॥<sup>४३</sup>

"साथ के सुख कारने, इन्द्रावती को मैं कहा ।

ताथें मुख इन्द्रावती के, कलश सबन का भया ॥<sup>४४</sup>

इतने वचन भी मैंने इसलिए कहे हैं कि सुंदरसाथ पर माया (अज्ञान) का नशा चढ़ा हुआ है । इस प्रकार के दो चार वचन कहकर माया के द्वैतभाव को मिटा दूँ ।

सुंदर साथ को परमधाम के अखण्ड सुख प्रदान करने के लिए मैंने ही इन्द्रावती को यह सब कहने का आदेश दिया । इसलिए इन्द्रावती के मुखारविन्द से प्रस्फुटित यह तारतमवाणी समस्त शास्त्रों के ज्ञान मंदिर पर कलश के रूप में प्रतिष्ठित हुई ।

### (६) श्री सनंध

सनंध का अर्थ सनद होता है सनंध का दूसरा अर्थ प्रमाण होता है । महामतिने मुगल शासक औरंगज़ेब एवं उनके दरबारियों द्वारा धर्म के नाम पर किए जा रहे अत्याचारों को रोकने के लिए उनको अपने संदेश के साथ कुरान के प्रमाण दिए थे । इसलिए इस ग्रंथ का नाम सनंद रखा गया । इसकी भाषा हिन्दी है । इसमें दो प्रकरण अरबी एवं एक सिन्धी भाषा में हैं ।

महामतिने सर्वप्रथम शब म्याराज अर्थात् दर्शन की सोत्र का रहस्य स्पष्ट किया । तद्न्तर रसूल का प्रमाण देकर हिन्दी भाषा की आवश्यकता पर बल दिया । आज से ३५० वर्ष पूर्व ही उन्होंने कहा था कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होनी चाहिए ।

इस ग्रन्थ में कलमा का स्पष्टीकरण, कुरान का रहस्य, मुस्लिमों के आचरण, ब्रह्मात्माओं के लक्षण, रसूल की पहचान, नबी और नारायण के प्रकरण के द्वारा अवतारों का स्थान, एवं महत्त्व समझाया । 'सनंध इमान रसूलकी' के द्वारा इमाम और रसूल की स्पष्टता कर दी है ।

श्री प्राणनाथजीने कुरान और इदीस ग्रंथों का प्रमाण देकर इस रात्रि के आने की बात की है । एक हजार महीने से भी बड़ी इस महिमामयी रात्रि (लैलतुलकदु) में ब्रह्मधाम से ब्रह्मात्माएँ ब्रह्मज्ञान लेकर इस जगत में अवतरित होंगी । उनके प्रताप से लोग इस शोत्र का महत्त्व समझेंगे और परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करेंगे । इसी संदर्भ का व्यक्त करते हुए श्री प्राणनाथजी कहते हैं कि...

ढुंढे सब म्याराज को, सब म्याराज में सब ।

सौ सब म्याराज जाहेर करी, सो सब म्याराज देखसी अब ॥<sup>४५</sup>

सभी लोग ब्रह्म साक्षात्कारकी रात्रिको ढूँढते हैं क्योंकि इसी रात्रि में पूर्णब्रह्म परमात्मा की पहचान होनी है । अब यह रात्रि प्रकट हो गई है । इसलिए अब सभी लोग इसी रात्रि में पूर्णब्रह्म परमात्मा का साक्षात् दर्शन करेंगे ।

"सबको प्यारी अपनी, जो है कुल की भाख ।

अब कहूँ भाषा में किनकी, यामें भाषा तो कै लाखा ॥<sup>४६</sup>"

"बोली जुदी सबन की, और सबका खुदा चलन ।

अब उरजे नाम जुदे धर, पर मेरे तो कहेना सबना ॥<sup>४७</sup>"

"बिना हिसाबे बोलियाँ, मिने सफल जहान ।

सबको सुगम जानके, कहूँगी हिन्दुस्तान ॥<sup>४८</sup>

"बड़ी भाषा एक भली, जो सब में जाहेर ।

करने पाक सबन को, अंतर मांहे बाहेर ॥<sup>४९</sup>

सबको अपने अपने कुल (देश) में प्रचलित भाषा अच्छी लगती है । अब मैं कौन-सी भाषा में बात करूँ ? संसार में तो लाखों भाषाएँ हैं । संसार में सबकी भाषाएँ अलग-अलग हैं और उनकी रीति, चाल-चलन भी अलग-अलग हैं । इस प्रकार सब अलग अलग नामों में उलझे हुए हैं किन्तु मुझे तो सबके लिए कहना है । समस्त संसार में असंख्य भाषाएँ हैं किन्तु इन सभी भाषाओं में से सबके लिए सुगम समझकर भाषाओं में से सबके लिए सुगम समझकर मुझे हिन्दी भाषा (हिन्दुस्तानी) में अपनी बात कहनी है ।

यही भाषा सुंदर और बड़ी है । सभी स्थानों में इसका प्रचलन है । इसलिए इसके द्वारा सभी को बाहर और भीतर से पवित्र करना है ।

"तारीफ रसूल की तो करूँ, जो ईन जिमी का होए ।

या ठौर बात जो नूर पार की, कुबहूँ ना बोल्या कोए ॥<sup>५०</sup>



"या सुध पार के पार की, किन मुखे ना निकसे दम ।

बुजर की महंमद की, करत जाहेर जसम ॥<sup>५१</sup>

"महंमद दीन की पहेचान, काहूँ हुती न एते दिन ।

ना पहेचान कुरान की, ना तो देख थके कै जन ॥<sup>५२</sup>

"पहलेंए सस्ती हुती, मुसलिम दीन कुरान ।

पीछे आति पछताएसी, पर क्या जाने कुफरान ॥<sup>५३</sup>

"सो पहचान अब होएसी, फरसी साफ दुनी दिल ।

किताब याही रसूल की, सुख लसी सब मिल ॥<sup>५४</sup>

रसूल की प्रशंसा अभी संभव होगी, जब वे इस स्वप्न के (जीव) हों । इस संसार में आज तक अक्षर ब्रह्म (नूर) के पार की बात किसीने भी नहीं कही है ।

आज तक किसीने भी जगत के पार अक्षरब्रह्म और उनके पार अक्षरातीतब्रह्म की बात नहीं की । यह रसूल मुहम्मद की महत्ता है कि उन्होंने परमात्मा के विषय में स्पष्टता की है।

आज तक किसी को रसूल मुहम्मद तथा इस्लाम की पहचान नहीं थी और न ही किसीने कुरान की ही पहचान की है। वैसे तो कई लोग कुरान को पढ़कर थक गए हैं ।

कुरान के गुढ़ रहस्य स्पष्ट होने से पूर्व रसूल द्वारा निर्देशित धर्म तथा कुरान का विशेष महत्त्व लोग नहीं समझ रहे थे । अब यह स्पष्ट हो जाने से संभविष्य में ये लोग पश्चाताप करेंगे । वैसे भी ये स्वप्न के ही जीव हैं, सत्य को कैसे समझते ?

अब तारतमज्ञान के प्रकाश में सबको इसकी पहचान हो जाएगी और सारे जगत के लोगों के दिल के संशय भी दूर हो जाएँगे । इस प्रकार कुरान के अर्थ स्पष्ट हो जाने से सभी लोग मिलकर आनन्द का अनुभव करेंगे ।

इस प्रकार स्वामी प्राणनाथने मानव-मानव के बीच खड़ी दिवार को धराशायी करने का प्रयास भी किया और सबके परमात्मा एक ही होने की समन्वयवादी विचारधारा को गुँजती कर दी थी । उन्होंने विचारधारा में स्थित भिन्नता को शाब्दिक भिन्नता बतलाते हुए एक ही परमात्मा का रूप समजाया है ।

### (७) श्री किरन्तन :

आत्मिक ज्ञान के भक्तिपूर्ण पद इस ग्रन्थ में पाये जाते हैं । ये पद वाद्य के साथ गाये जा सकते हैं । स्वामी प्राणनाथ के साहित्य के ये पद तत्कालीन युग की देन हैं । इसमें परमधाम का विस्तृत परिचय दिया है और स्वीकार करने के लिए गुरु (सद्गुरु) की सहायता स्वीकार करने की सलाह दी है । सच्चे गुरु की पहचान देते हुए स्वामीजी ने अपने विचारों को इस प्रकार अभिव्यक्त किए हैं ...

"जो मांडे निरमल बाहेर, देवे न देखाई वाको परब्रह्म सो

महामत कहे संगत कर वकी, कर वाही सौं गोष्ट ग्यान पहेचान ।<sup>५५</sup>

किरन्तन में शास्त्रपुराण, वेद-वेदान्त का सारतत्त्व निरूपित करते हुए कर्मकाण्ड से ऊपर उठकर धर्म को सत्यरूप में समझाने का प्रयत्न किया है । वल्लभाचार्यजी द्वारा की गई हुई श्रीमद्भागवत पंचाध्यायी की प्रशंसा करते हुए उन्होंने संकेत किया है कि अखण्ड ब्रज-रासलीला इस जगत से अलग चिन्मय लोग में हुई, उसे आत्मा से अनुभव किया जा सकता है। संसार में इस प्रतिभा को सत्य मानकर भक्तजन यथार्थ सुख से वंचित रह जाते हैं।

महामति श्री प्राणनाथजी कहते हैं कि परमधाम, अक्षरब्रह्म, ब्रह्मात्माओं को अपने अंश में धारण करनेवाले अक्षरातीत ब्रह्म की सर्वोपरि अद्वैत सत्ता है । यह संसार सत्य का भ्रम और आभास मात्र है । आत्मा के जग जाने पर इसका अस्तित्व नहीं रहता । मानव जीवन नश्वर होते हुए भी अमूल्य है । इस शरीर के द्वारा ही परमात्मा की प्राप्ति संभव हो सकती है । जीवन का ध्येय प्राप्त कर लेना ही इस की सार्थकता है इसलिए इस जीवन को व्यर्थ गँवाना नहीं चाहिए । इसलिए वे कहते हैं कि...

"मेरी मेरी करते दुनी जात है, बोझ ब्रह्मांड सिर लेवे ।

पाऊ पलक का नहीं भरोसा, तो भी सिर सरजनको न देवे ।।<sup>५६</sup>

"सिर ले काम करे माया को निसंक पछाड़े आप अंग,

न करे भजन दोस देवे साईं को, कहे दया बिना न होवे साद्य संग ।।<sup>५७</sup>

'यह मेरा है, वह मेरा है' इस प्रकार कहते हुए पूरे संसार का भार अपने सिर पर लेकर लोग व्यर्थ ही भटक रहे हैं, किन्तु इस क्षणभंगुर देह का पलमात्र का भी भरोसा नहीं है तथापि सर्जनहार परमात्मा के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं करते ।

ऐसे लोग माया के कार्यों (बोझ) को अपने सिर पर लेते हैं और उसीके लिए अपने शरीर को भी समर्पित कर देते हैं । वे स्वयं प्रभु स्मरण तो करते ही नहीं उलटा परमात्मा को दोष देकर कहते हैं कि उनकी दया के बिना संतो का संग प्राप्त नहीं होता ।

'सतगुरु साधो वाको कहिए, जो अगम की देवे गम ।

हृद बेहद सब समजावे, भांते मनको भरम ॥'<sup>५८</sup>

हे साधुजन ! वास्तव में सद्गुरु वही कहलाता है जो अगम्य परमात्मा का वास्तविक परिचय करा दे तथा हृद-सीमित (क्षर ब्रह्माण्ड) और बेहद असीम अविनाशी भूमिका का सम्पूर्ण ज्ञान करवाकर मन के संशयों को मिटा दे ।

#### (८) श्री खुलासा :-

खुलासा का अर्थ होता है स्पष्टीकरण अथवा निराकरण ।

महामति श्री प्राणनाथजी धर्म प्रचार यात्रा में रामनगर पहुँचे थे । उस समय औरंगज़ेब द्वारा भेजे गए पुरदल खान एवं शेख खिदर उनसे मिलने आए । महामतिने उनको कुरान एवं पुराण के विभिन्न प्रसंगों की साम्या की बात समझायी और कहा सभी धर्मग्रन्थ एक ही परमतत्त्व की बात कहते हैं, मात्र भाषा और शैली में अंतर है । खुदा, अल्लाह या ब्रह्म ये सभी शब्द एक ही परमात्मा के लिए प्रयुक्त हैं । कतेब ग्रन्थों में परमतत्त्व के लिए जो बात कही है वैसी ही बात वैदिक ग्रन्थों में कही गयी है । वास्तव में हिन्दु या मुसलमान सभी एक ही परमात्मा की संतान हैं किन्तु धर्म के मर्म को समझे बिना परस्पर लड़ाई करते हैं ।

"जो कुछ कहा कतेबने, सोई कहा वेद ।

दो वंदे एक साहेब के, पर लड़त बिना पाएजो ॥'<sup>५९</sup>

कुरान आदि कतेब ग्रन्थों में वैकुण्ठ को मूलकृत कहा है । मामति श्री प्राणनाथजीने इस ग्रन्थ के द्वारा सर्वधर्म समभाव की आधारशिला रखी है । वस्तुतः सभी धर्मावलम्बी एक दूसरे के मत एवं धर्म ग्रंथों को आदर देने लगेंगे एवं एक दूसरे से अच्छाईयाँ ग्रहण करने लगेंगे तो धर्म के नाम पर फैल रही वैमनश्यता दूर होगी । मानव-मानव में प्यार होगा और धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचार रूक जाएँगे । वर्तमान समय में महामति के विचार एवं कार्य अत्याधिक सान्दर्भिक सिद्ध होते हैं । महामति के विचार इस प्रकार प्रकट हुए हैं....

"ए होत कुरमाया इक का जो किया खुलासा ए ।

किए हादीने जाहेर, याहीं मगज मुसाफ के ॥<sup>६०</sup>

महामति कहते हैं, परमात्मा के आदेशने कुरान में जो कहा है उसका रहस्य सद्गुरु श्री देवचन्द्रजीने मेरे हृदय में विराजमान होकर मेरे द्वारा इस खुलासा ग्रन्थ के माध्यम से स्पष्ट किया है ।

"ए देखो खुलासा फरमान का, मोमिन रें विचार ।

सहें एक सुरत दिल में लई, छोड़ी दुनियां कर मुरदार ॥<sup>६१</sup>

हे सज्जनो ! कुरान में निर्दिष्ट सिद्धांतों का स्पष्टीकरण देखिए । इन पर ब्रह्मसृष्टि ही विचार कर सकेंगी । क्योंकि उन्होंने परमात्मा के स्वरूप को अपने हृदय में धारणकर मिथ्या जगत को तुच्छ माना है ।

" पढे तो हम है नहीं, ए जो दुनियां की चतुराई ।

कहूँ – माए ने हकीकत मारफत, जो ईसा रसूल कुरमाएँ ॥<sup>६२</sup>

"कौन आप कौन और है, ऐसा छल किया खसम ।

सुध न खसम रसूल की, नाहीं गिरो की गम ॥<sup>६३</sup>

कौन रूहैं, कौन फिरस्ते, कौन आदम कौन जिन ।

पढ़ पढ़ वेद कतेब को, पर हुआ न दिल रोसन ॥<sup>६४</sup>

महामति कहते हैं, मैंने संसार का चातुर्यपूर्ण ज्ञान पढ़ा नहीं है किन्तु सद्गुरु प्रदत्त तारतमज्ञान के द्वारा परमधाम की यथार्थता एवं पूर्ण पहचान की बात स्पष्ट कर रहा हूँ जिसे सद्गुरु देवचन्द्रजी एवं रसूल मुहम्मदने कहा है ।

इस ब्रह्मात्माओं को भी यह ज्ञान नहीं कि हम स्वयं कौन हैं और संसार के ये जीव रहा कौन है धामधनीने उन्हें ऐसा छलपूर्ण खेल दिखाया इतना ही नहीं उन्हें यह भी होंश न रही की धामधनी उनके संदेशवाहक रसूल तथा ब्रह्मात्माएँ कौन हैं ?

ब्रह्मात्माएँ कौन हैं, ईश्वरी सृष्टि कौन है, मानव तथा देवगण कौन कहलाते हैं ? बेध तथा कतेब ग्रन्थों को पढ़नेवाले अनेक विधान हो गए परंतु किसी के भी हृदय में इस संदर्भ में ज्ञान का प्रकाश नहीं हुआ ।

### (९) श्री खिलवत :

खिलवत का अर्थ होता है एकान्त में मिलना । आत्मा और परमात्मा के एकान्त मिलन को महामतिने खिलवत कहा है और एकान्त मिलन संबंध चर्चायुक्त ग्रन्थ का नाम भी श्री खिलवत रखा । यह ग्रन्थ सरल हिन्दी में है । प्रथम प्रकरण प्रार्थना का है । ब्रह्मात्माएँ नश्वर जगत का खेल देखने के लिए अवतरित हुई हैं किन्तु जगत के प्रपंच में भुलकर भौतिक दुःख सुखों का अनुभव कर रही हैं । तारतम ज्ञान से जागृत होने पर उन्हें पता चला की उन्होंने नश्वरजगत का खेल देखने के लिए श्री राजजी से मांग की थी अब वे श्रीराजजी से खेल की शिकायत कैसे करेंगी वे अपनी उलझनों के साथ श्रीराजजी से प्रार्थना नहीं करती हैं । महामतिने यहाँ पर उनकी प्रार्थना की वाचा दी है । इसमें श्रीराजजी की, श्यामाजी एवं ब्रह्मात्माओं का पारस्परिक संवाद श्रीराजजी की सर्वोपरिता, ब्रह्मात्माओं को जागृत करने के लिए श्रीराजजी द्वारा श्यामाजी को सद्गुरु के रूप में भेजने का प्रसंग, परमधाम के गूढ़ रहस्य एवं श्रीराजजी ब्रह्मात्माओं पर किस प्रकार कृपा करते हैं इसका रहस्य स्पष्ट किया है ।

इस ग्रन्थ में आत्मा-परमात्मा का संबंध खेल का रहस्य एवं श्रीराजजी एवं परमात्मा की सर्वोपरिता को संवाद के माध्यम से समझाया है । इस ग्रन्थ का पाठ करते हुए हम

श्रीराजजी से बात कर रहे हैं ऐसा अनुभव होता है ।

"ऐसा खेल देखाईया, मांग लिया है हम।

अब कैसे अरज करूँ, कहोगे मांग्या तुम ।।<sup>६५</sup>

महामतिने इन्द्रावती के भाव से श्रीराजजी से प्रार्थना की है, है धामधनी ! इस स्वप्नवत् जगत में भेजकर आपने हमें ऐसा विचित्र खेल दिखाया, जिसे वस्तुतः हमने ही माँगा था । अब इससे बाहर निकलने के लिए मैं प्रार्थना भी कैसे करूँ ? आप कहेंगे कि (प्रेम संवाद के समय) तुमने ही तो इसकी मांग की थी ।

विरह भावना का निरूपण इस काव्य-ग्रन्थ का उद्देश्य है .....

"बैठी सदा चरण तले, कबूँ न्यारी न निमख नेस ।

पाईए न नाम ठाम न दिस कहूँ, ऐसा दिया विदेश ।।<sup>६६</sup>

मानवी के मन का अहम् एक ऐसा परदा है जो जीव और शिव का मिलन नहीं होने देता । वह एक ऐसा सागर है जो पार करना कठिन है । आत्मा अपने अहम् की तुच्छता को त्यागकर, अनन्त असीम रूप को पहचान लेती है, उसी ज्ञान को ब्रह्मज्ञान कहते हैं ।

प्रेम की मदिरा पिलानेवाले साकी प्रेमामृत उड़ेलते जा रहे हैं । प्रियतम की प्यारी अंगनाएँ उसे पी-पीकर मदहोश हुए जा रही हैं । प्रियतमने ही मरजीवा बनकर अपनी आत्माओं के इस भवसागर में मरजीवा बनकर अपनी आत्माओं को ढूँढ़ निकाला है और उन्हें अखण्ड धाम की सुध-बुध दी । परमात्मा की इतनी कृपा होते हुए भी इस संसार की माया छुटती नहीं है ।

ब्रह्मात्माओंने परमधाम से जगत में उतरने से पूर्व परमधाम और अन्य आत्माओं को न भूलने का वादा किया था । उस वचन की याद थी स्वामीजीने इस ग्रन्थ में दी है ।

साफी पिलावे शराब, सहें प्यालें लिजिए ।

इस इश्क का आब, भर भर प्याले पीजिए ।।<sup>६७</sup>

कोई आगे पीछे अव्वल, इसक लेसी सब कोए ।

पहल इसक जिनलियो, सोई सुहागिन होए ।।<sup>६८</sup>

## (१०) श्री परिक्रमा :

परिक्रमाका अर्थ प्रदक्षिणा होता है । महामति श्री प्राणनाथजीने परमधाम के पच्चीस पक्षों का परिभ्रमण करते हुए उनके विशद वर्णनयुक्त ग्रन्थ का नाम परिक्रमा रखा । यह ग्रन्थ महामति की कृति श्री तारतमसागर ग्रन्थ का सबसे बड़ा ग्रन्थ है ।

महामतिने लगभग छः हजार चौपाईयों में इनका विशद वर्णन किया है । यह सर्व विदित है कि परमात्मा एवं उनके धाम का अनुभव मात्र प्रेम के द्वारा ही संभव है । इसीलिए परमधाम का वर्णन करते हैं ।

परिक्रमा ग्रन्थ में सर्वत्र ब्रह्मधाम के विविध दृश्यो का वर्णन है । साथ में धाम की लीलाएँ भी बतायी गयी है । इनके हृदयंगम को धाम की चेतावनी कहा है ।

"पिया इसक रस, ब्रह्म सृष्टि को अरस-परस ।

काहूँ और न इसक खोण, औरों जाए न उठायो बोझ ॥" ६९

प्रियतम परमात्मा प्रेमरस के रसिक है । ब्रह्मसृष्टि भी उसी प्रेम में ओत-प्रोत है । इसीलिए संसार के अन्य जीवों से प्रेम की खोज नहीं हो सकती क्योंकि ब्रह्मसृष्टि के अतिरिक्त अन्य कोई भी इसे शिरोधार्य करने में समर्थ नहीं हो सकता है ।

"बात इसक की है अति धन, पर पावे सोई सोहागिन ।

ब्रह्म सृष्टि बिना न पावे, सनमंध बिना इसक न आवें ॥" ७०

"इसक बसे पिया के अंग, इसक रहे पिऊ के संग ।

प्रेम बसत पिया के चित, इसक अखंड हमेशा नित ॥" ७१

"इसक बतावे पार के पार, इसक नेहेचल चर दातार ।

इसक होए न नया पुराना, नई ठौर न आवत आनां ॥" ७२

"इसक साहेब सों नहीं अंतर, जो अरस-परस भीतर ।

ए सुगम है सोहागिन, जाको अंकूर याही वतन ॥" ७३

प्रेम का रहस्य अति गहन है किन्तु ब्रह्मात्माएँ उसे आत्मसात् कर सकती हैं ।  
ब्रह्मसृष्टि के अतिरिक्त इसे कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता और धामधनी के संबंध के बिना  
यह प्रकट भी नहीं हो सकता है ।

यह प्रेम प्रियतम धनी के अंग-प्रत्यंग में बसा हुआ है और सदा सर्वदा उनके साथ ही  
रहता है। वस्तुतः धामधनी के हृदय में ही यह रहता है, इसीलिए इसे अखण्ड कहा गया है ।

यह प्रेम क्षर तथा अक्षर से परे का मार्ग बताकर अखण्ड परमधाम का अनुभव  
करवाता है । इसलिए यह न कभी नया होता है और न ही कभी पुराना । परमधाम के  
अतिरिक्त ना इसका कोई स्थान है और न ही यह अन्य कहीं से आता है ।

प्रेम और ब्रह्म इन दोनों में कोई अंतर नहीं है दोनों परस्पर ओत-प्रोत हैं । सुहागिनी  
ब्रह्मात्माओं के लिए यह प्रेम इसलिए सुगम है कि इनका संबंध ही अखण्ड परमधाम से है ।

" देखो महामत मोमिनां जागते, जो इक इलमें दिए जगाए ।

कहे सो बातें इक अरस की, तू पी इसक तिनो पिलाए ।।<sup>७४</sup>

महामति कहते हैं, हे ब्रह्मात्माओं । जाग्रत होकर देखो, सद्गुरु प्रदत्त ब्रह्मज्ञान  
(तारतमज्ञान) ने तुम्हें जाग्रत कर दिया है । अब धामधनी तथा अखण्ड परमधाम की बातें  
परस्पर करते रहो एवं अन्य आत्माओं को भी इस प्रेरणस का पान कराओ ।

### (११) श्रीसागर ग्रन्थ :

सागर का अर्थ समुद्र अथात् सिन्धु होता है । इसे नापा-तौला नहीं जा सकता ।  
महामतिने श्रीराजजी, श्यामाजी एवं ब्रह्मात्माओं के स्वरूप शोभा सम्बन्ध आदि को सागर की  
भाँति अपरिमेव बताते हुए, इनके लिए सागर शब्द का प्रयोग किया है । उन्होंने श्री परिक्रमा  
ग्रन्थ में परमधाम के आठ सागरो का वर्णन किया है ये ब्रह्मानन्दरस के सागर हैं ।

(१) नूर (प्रकाश) का सागर

(२) ब्रह्मात्माओं की शोभा का सागर

(३) ब्रह्मात्माओं के एकात्मभाव का सागर



- (४) युगलकिशोर श्री राजश्यामाजी के श्रृंगार का सागर
- (५) प्रेम (ईशक) का सागर ।
- (६) ब्रह्मज्ञान (ईलम) का सागर ।
- (७) सम्बन्ध (निसबत) का सागर ।
- (८) कृपा का सागर या मेहेर का सागर ।

श्रीराजजी स्वयं कृपासिन्धु हैं । उनकी कृपा का कोई पारावार नहीं है । उन्होंने धाम, वृज, रास एवं जागनी इन चारों लीलाओं के द्वारा ब्रह्मात्माओं को अपनी कृपा का अनुभव करवाया है । ब्रह्मात्माओं पर उनकी कृपा पल पल बरसती है ।

इस प्रकार आठ सागरों के द्वारा महामतिने अक्षरातीत की शोभा, स्वरूप, श्रृंगार, कृपा आदि सभी को अपरिमेय बताया है ।

"लेहेरी सुख सागर की, लैसी सहें अरस ।

चाके सरूप पाकौ देखसी, जो हैं अरस-परस ॥"<sup>७५</sup>

परमधाम की ब्रह्मात्माएँ ही इन विशाल सागरों की सुखमयी तरंगों के आनंद का अनुभव कर सकती हैं । ये ही आत्माएँ अपने मूल स्वरूप (पर-आत्मा) को देख सकेंगी क्योंकि उनका पारस्परिक संबंध है ।

"इनों दिल सागर तीसरा, एक सागर सब दिल ।

देखों इनों दिल पैठ के, किन विद्य बैठियां मिल ॥"<sup>७६</sup>

"प्रथम लागूं दोऊ चरन को, धनी ए न छोडाईयो छिन ।

लांक तली लाल एडियां, मेरे जीव के एही जीवन ॥"<sup>७७</sup>

इनके विशाल हृदय को ही तीसरा सागर कहा है । इन सभी ब्रह्मात्माओं का हृदय विशाल सागर के समान है । इनके हृदय में प्रवेश कर इन्हें देखें तो ज्ञात होगा कि ये सभी एक साथ मिलकर किस प्रकार बैठी हुई है ।

सर्वप्रथम में श्रीश्यामाजी के दोनों चरणकमलों में प्रणाम करता हूँ । हे धामधनी ! इन लालिमायुक्त इन चरणों की एडियाँ तथा चरणतल की गहराई को देखकर मुझे ऐसा अनुभव होता है ये ही मेरे जीव के आधार हैं ।

"जो सुख हसक सागर को मांहे हेत प्रती तरंग ।

ए जो अरस अरवाहों को, आए खिलवत के रस रंग ।।"७८

प्रेम सागर के इन अपार सुखों में प्रीति एवं स्नेह की तरंगें उठती रहती हैं, जिससे परमधाम की आत्माओं को मूल मिलावे के आनंद का अनुभव होता है ।

"महामत कहे ए मोमिनो, ए मेहेर बड़ा सागर ।

सागर मेहेर इक कदमों तलें, पीओ अमीरस इक नजर ।।"७९

महामति कहते हैं, हे ब्रह्मात्माओं ! श्रीराजजी की कृपा का यह सागर अति महान है । अब इसी कृपा के द्वारा श्रीराजजी के चरणों में जागृत होकर उनकी दृष्टि के अमृतरस का पान करो ।

## (१२) श्री सिनसागर ग्रन्थ :

श्री सिनसागर ग्रन्थ की भाषा हिन्दी है । इसमें श्रीराजजी के श्रृंगार का विशद वर्णन है । इस ग्रन्थ में श्रृंगार का विशद वर्णन होने से इसे महा-सिनगार भी कहा गया है ।

महामति श्री प्राणनाथजी को सद्गुरुने श्रीराजजी का स्वरूप एवं श्रृंगार विस्तारपूर्वक समझाया था । इसमें श्रीराजजी के वस्त्र एवं आभूषणों की शोभा का विशद वर्णन है ।

सिनगार ग्रन्थ मात्र वर्णनात्मक ही नहीं अपितु जागनी के लिए भी प्रेरक है ।

"वरनन करो हे रूहजी, हकें तुम सिर दिया भार ।

अरस किया अपने दिल को, मांहे बैठाओ कर सिनगार ।।"८०

'रूह चारे वरनन करूं, अखंड सरूप की इत ।

सुपने में सत सरूप की, किन कही न इक सूरत ।।"८१

महामति कहते हैं, हे मेरी आत्मा ! श्रीराजजीने तुझे गुरुतर दायित्व सौंपा है । अब तू उनके श्रृंगार का वर्णन कर । उन्होंने ब्रह्मात्माओं के हृदय को अपना धाम बनाया है । इसलिए तू संपूर्ण श्रृंगार से सुसज्जित उनके स्वरूप को अपने हृदय में अङ्कित कर । मेरी आत्मा इस नश्वर जगत में रहकर अक्षरातीत धामधनी के अखण्ड स्वरूप का वर्णन करना चाहती है किन्तु स्वप्नवत् जगत में आजतक किसीने भी सत्य स्वरूप परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप का वर्णन नहीं किया है ।

"देखो अचरज महामत मोमिनो, जो बेसक हुए हो तुम ।

तुमें किन दर्ई एती बुजर की, दिल अरस कर बैठ खसम ॥" ८२

महामति कहते हैं, हे ब्रह्मात्माओं ! यदि तुम सुन्दर रहित हो गई हो तो इस आश्चर्य को देखो, जिन्होंने तुम्हें इतनी बड़ी गरिमा प्रदान की है वे पूर्ण ब्रह्म परमात्मा तुम्हारे हृदय को परमधाम बनाकर उसीमें विराजमान हो गए हैं ।

"अब भूल हमारी जरा नहीं, और इक कर थके हांसी ।

बात आई सिर हुकम के, अब कोई बिलखे रूह खासी ॥" ८३

"देखना था सो सब देख्या, इक इसक और पातसाई ।

और झांसी रूहों इसक पर, सब देखी जो देखाई ॥" ८४

सो मैं गाया याद कर कर, कबू पाया न विरहा रस ।

नाम सहें ना हुकम सहें, ना कछू सहें अकस ॥" ८५

**(१३) श्री सिन्धी :**

सिन्धी भाषा में होने से इस ग्रन्थ का नाम श्री सिन्धी रखा गया है, वास्तव में इसमें आत्म जागृति का आह्वान तथा विरहिनी आत्माकी पुकार है । जैसे ...

"आंऊ धणियाणी तोहिजीं, हें तूं मूं जी रे अंग ।

मूं मूए जे डिए, हे केड़ी निसबत संग ॥

हे धनी ! मैं आपकी धनीयानी हूँ, आप मुझे इसी शरीर के रहते हुए दर्शन दें । यदि देह छूट जाने पर दर्शन देंगे तो आपके साथ मेरा संबंध ही कैसा ? विरहिणी आत्मा इसी

शरीर के द्वारा अपने प्रियतम धनी से मिलना चाहती है । उसे पिया के दर्शन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहिए । अनेक स्थलों पर महामतिने विरह के साथ प्रार्थना, उपालम्भ भी दिए हैं । सर्वत्र श्री राजजी के आदेश की प्राधान्यता एवं भूमिका बताई गई है । वास्तव में ब्रह्मात्माएँ श्रीराजजी के चरणों में ही रहकर अपनी सुरता के द्वारा नश्वरजगत का खेल देख रही हैं । श्रीराजजी के आदेश के द्वारा ही ऐसा संभव हुआ है । इस प्रकार अन्त में श्रीराजजी के आदेश का महत्त्व समझकर यह ग्रन्थ पूर्ण होता है ।

"आखर वेरा उथणजी, आईं रूहें छेड जा रांद ।

उथी बिच अखसजे, कोड करे मिडूं कांध ।।" ८६

आखर = आखरका, वेश = समय, उथणजी = उठने का, आईं = तुम, रूहें = आत्माओ, छेड जा = छोड़कर, रांद = खेल, उथी = उठकर, बिच = में, अरसजे = परमधाममें, कोड = हर्षपूर्वक, करे = करके, मिडूं = मिलो, कांध = प्रियतम ।

आत्म जागृति के लिए अंतिम समय आ गया है । हे आत्माओं ! अब तुम नश्वर खेल के मोह को त्याग दो एवं परमधाम में जागृत होकर हृदय में उल्लास लेकर अपने प्रियतम धनी से मिला ।

"कीं करियां केडा वंजां, चुआं कींप करे ।

न पेराहयां पडूतर, न अची सगां गरे ।।" ८७

की = कैसे, करियां = करूं, केडा = कहां, वंजां = जाऊ, चुआं = कहूं, कींप = कैसे, करे = करके, न=नहीं, पेराईयां =पाती हूँ, पेडूतर =जवाब, न=नहीं, अची = आ, सगा=सकतीगर= परमधाममें (आपके पास)

हे धनी ! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कैसे कहूँ ? न मुझे प्रत्युत्तर प्राप्त होता है और न ही मैं अपने घर (परमधाममें) आ सकती हूँ ।

"और साहेबी अपनी, देखाई नीके कर ।

क्यों कहु बड़ाई हक की, मेरा खसम बड़ा कादर ।।" ८८

"महामत कहें ऐ मोमिनो, इकें बैठाए तलें कदम ।

करसी हांसी बीच अरस के, जो कही हुकमें इलम ॥"८९

इस प्रकार श्रीराजजीने हमें अपनी प्रभुता का भलीभाँति दर्शन करवाया । मैं धामधनी की महत्ता का क्या वर्णन करूँ मेरे धनी बड़े समर्थ हैं ।

महामति कहते हैं, हे ब्रह्मात्माओं । धामधनीने हमें अपने चरणों में ही बिठाया है । उनके आदेश और ज्ञानने इस जगत में हमारी जो स्थिती की है वे परमधाममें उसका उपहास करेंगे ।

**(१४) श्री मारफतसागर ग्रन्थ :**

मारफत का अर्थपूर्ण पहचान होता है । इसीसे इस ग्रन्थ का नाम मारफत सागर पड़ा ।

ग्रन्थारंभ में परमधाम मूलमिलावे की परिचर्चा के द्वारा ब्रह्मात्माओं का अवतरण, प्रेम का महत्त्व, श्री राजजी की सर्व मूलता आदि स्पष्ट की है ।

महामतिने इस ग्रन्थ में भारतवर्ष में लहराते हुए धर्म ध्वजा का विवरण दिया है । साथ में यह स्पष्टता की है कि अब बाह्यकर्मकाण्ड का ध्वज अपने मूल से हट गया है । खलीकों के द्वारा पूछे जाने पर रसूल मुहम्मदने कहा था कि कल का दिन कयामत है । महामतिने यहाँ पर उसका भी स्पष्टीकरण किया है । रसूल मुहम्मदने कहा था कि कलका दिन कयामत के समय मेरे भाई आएँगे तब मैं भी उनके साथ आऊँगा । महामतिने इस समूह का ब्रह्मात्माओं का समूह कहा है । इस प्रकार मारफतसागर में कुरान के अनेक रहस्य स्पष्ट किए गए हैं । तारतमज्ञान के द्वारा ही यह संभव हुआ है । इसलिए ब्रह्मज्ञान तारतम् ज्ञान के द्वारा होनेवाले अनुभव अथवा पूर्ण पहचान के मारफत कहा है ।

"ढूँढे सब म्याराज को, सब म्याराज में सब ।

सौ सब म्याराज जाहेर करी, सो म्याराज देखसी अ ॥"९०

सभी लोग ब्रह्मसाक्षात्कार की रात्रि को ढूँढते हैं क्योंकि इसमें पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की पहचान होती है । अब यह रात्रि प्रकट हो गई है । इसलिए अब सभी लोग इसमें पूर्ण ब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करेंगे ।

"शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारफत ।

इन चारों को बिने असलाम, जुदी-जुदी कही तजुगत ।।"<sup>९१</sup>

अर्थात् शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारफत सब एक ही हैं परंतु समझे बिना ही धर्म या भक्त इसे अलग कहते हैं ।

"ना कोई कहे बेचून को, नाहीं बेचगून ।

ना कहेनेवाले बेसबी का, नाहीं बेनिमून ।।

ना खाली तब हवा सुन, नाहीं ला मकान ।

ना कछु किया तब हुकम, ए जो कह्या कुंन सुभान ।।"<sup>९२</sup>

उस समय परमात्मा के विषय में शून्य, निराकार निर्गुण अथवा निरंजन कहनेवालों अवधारणाएँ भी नहीं थी । उस समय निराकार सहित यह संपूर्ण शून्य मण्डल नहीं था एवं परमात्माने भी 'हो जा' कहकर सृष्टि रचना का आदेश नहीं दिया था ।

#### (१४) श्री कयामतनामा :

इस ग्रन्थ में कयामत के साथ-साथ वेद एवं कतेब ग्रन्थ ब्रह्मात्माओं के लिए एक ही परमात्मा का संदेश दे रहे हैं इस बात की स्पष्टता की है । ब्रह्मात्माओं का अवतरण उनके लिए तारतम्य ज्ञान का अवतरण एवं इसके द्वारा आत्म जागृति का रहस्य स्पष्ट किया है । प्रत्येक बात की पृष्टि कुरान की आयातों के द्वारा की है । तारीखनामा के द्वारा तो उन्होंने और स्पष्टता कर दी है कि कतेब ग्रन्थों में कयामत की जिस घड़ी की चर्चा है वह घड़ी आ गई है । इस प्रकार महामतिने एक-एक उदाहरण देकर कयामत की बात स्पष्ट की है । इसीलिए यह ग्रन्थ कयामतनामा कहलाया । आशा है सुख जन इन ग्रन्थों का लाभ अवश्य लेगे ।

"जो नूर पार अरस अजीम, ए जो बेचरा कयामत ।

मोमिन दूनी की तफावत, ए फना ओ बीच बका ।।"<sup>९३</sup>

अक्षर से परे अक्षरातीत परमधाम है । उसीकी पहचान के लिए कयामत का विवरण है । ब्रह्मात्माएँ अक्षर से परे अक्षरातीत परमधाम की हैं और जगत के जीव नश्वर भूमिका के हैं । इन दोनों में यही अंतर है ।

" ना पहचान ना निसबत, दुनि गिरो असल दुश्मन ।

एक इक न छोड़े मोमिन, दुनी दुनियाँ बीच बतन ॥" ९४

नश्वर जगत के जीवों को न परमात्मा की पहचान है और न ही उनके साथ संबंध है । इसलिए वे ब्रह्मात्माओं के साथ शत्रुता रखते हैं । ब्रह्मात्माएँ अखण्ड को छोड़ नहीं सकती जब कि नश्वर जगत के जीव नश्वर भूमिका को ही अपना घर समझते हैं ।

**(१४) कयामतनामा बड़ा :**

"खास उमतसों कहियों जाई, ओ मोमिनो कयामत आई

कहेती हों माफक कुरान, तुमारे आगे करो बयान ॥" ९५

महामति श्री प्राणनाथजीने महाराजा छत्रशाल से कहा, स्वयं को श्रेष्ठ समुदाय में कहनेवालों (औरंगज़ेब आदि) से जाकर कहो : हे मोमिनो ! उठो, कयामत का समय आ गया है । मैं तुम्हारे समक्ष कुरान के अनुसार कयामत का विवरण दे रहा हूँ ।

"और तिन दिन, होंसी अंधा धुंध, द्वार तोबा के होसी बंध ।

कह्या होसी और खेस, नब कोई किसी का नहीं खेस ॥" ९६

इस आदि ग्रन्थों की भविष्यवाणी के अनुसार कयामत के समय में चारों ओर अन्धाधुन्धी छा जाएगी अर्थात् विभिन्न धर्मावलम्बियों की सढ़िवादी आस्था में खलबली मचेगी, प्रायश्चित का द्वार बंद हो जाएगा । अर्थात् कर्मकाण्ड का महत्त्व नहीं रहेगा । लोगों की रीतिभँति में अन्तर पड़ेगा । उस समय कोई किसीका मित्र नहीं रहेगा ।

इस प्रकार उपयुक्त से इतना महसूस होता है कि स्वामीजीने सारे आयामों पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है । अतः तारतमवाणी पढ़ने बाद पूर्ण ज्ञान का अहसास होता है ।

### ३.२.१ कबीर के पद :

#### (१) कबीर ग्रन्थावली :

कबीर ग्रन्थावली का रचनाकाल से १५६१ माना जाता है । इसका सम्पादन दो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों को मिलाकर किया गया है । इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है, "यह तो कहना कठिन है कि इस ग्रन्थ के अतिरिक्त और कुछ कबीरदासजीने कहा ही नहीं, पर इतना अवश्य है कि इनके अतिरिक्त और जो कुछ कबीरदासजी के नाम पर मिलें उस उन्हें सहसा ही कहा हुआ तब तक स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए जब तक उसके प्रक्षिप्त न होने का कोई दृढ प्रमाण न मिल जाय ।।"<sup>९७</sup> इस पुस्तक की १५६१ की प्रति को आचार्य रामचन्द्र शुक्लने भी अपने इतिहास में प्रमाणित माना है । परन्तु कुछ विधान इस प्रति के सं. १५६१ के होने के पर संदेह करते हैं । इस प्रति को सं. १५६१ की न माननेवालों ने अपने मत की पुष्टि में केवल यही कहा है कि इस सारी प्रति की लिपि एक-सी नहीं है । बाबू श्यामसुंदरदासजी इस बात को कोई महत्त्व नहीं देते । एक ही काल के दो लेखक भी इसे लिख सकते हैं । डॉ. इजारीप्रसादजी इसे काफी पुरानी मानते हुए भी सं. १५६१ की मानने में संदेह करते हैं । डॉ. रामकुमार वर्मा भी इस प्रति को सं. १५६१ की मानने में संदेह प्रकट करते हैं ।

#### (२) कबीर काव्य कौस्तुभ :

कौस्तुभ का अर्थ होता है "कमल" । कबीरजी के जन्म के बारे में कई क्विदंतियाँ प्रचलित हैं । कई विधान कहते हैं कि कबीर का जन्म एक कमल में हुआ था और निरू नामक जुलाहा दंपतीने उसे पाल-पोसकर बड़ा किया था । कई विधानों का कहना है कि एक किरण के प्रकाश से तालाब के किनारे एक कमल पर एक छोटे से बालक का जन्म हुआ ।

कहा जाता है कि "काशी में एक सात्त्विक ब्राह्मण रहते थे, जो स्वामी रामानांद के बड़े भक्त थे । उनकी एक विधवा कन्या थी । उसे साथ लेकर एक दिन वह स्वामीजी के आश्रम पर गए । प्रणाम करने पर उसे स्वामीजीने उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया । ब्राह्मण देवताने चौंककर जब पुत्री का वैद्यव्य निवेदन किया तब स्वामीजीने सुखेद कहा कि



इससे वचन व्यर्थ नहीं हो सकता, परंतु इतने से संतोष करो की इससे उत्पन्न पुत्र बड़ा प्रतापी होगा । आशीर्वाद के फल स्वरूप जब इस ब्राह्मण कन्या को पुत्र उत्पन्न हुआ तो लोकलज्जा और लोकोपवाद के भय से उसने उस बच्चे को लहर तालाब के किनारे डाल दिया । भाग्यवश कुछ ही क्षण के बाद निरुनाम का एक जुलाहा । अपनी स्त्री निमा के साथ उधर से आ निकला इसे कोई पुत्र न था । बालक का रूप पुत्र के लिए लालपित दम्पति के हृदय को छू गया और वे उसे बालक का भरण-पोषण कर पुत्रवान हुए और वही बालक परम भगवद कबीर हुए ।।<sup>९८</sup>

### (३) कबीर :

हिन्दी संत-कवि ही नहीं अपितु संपूर्ण हिन्दी साहित्य तथा भारतीय संत कवियों में कबीर का अन्यतम स्थान तो है ही पूरे विश्व की संत-परंपरा में भी शीर्ष स्थानीय है । उनका अवतरण मध्यकाल में हुआ था । यह वह काल था जब उदात्त भारतीय चिन्तन सरणी स्वतंत्र चिंतन की प्रवाहमान धारा से हटकर परंपरावाद एवं शास्त्र-प्रमाण की संकीर्ण पंक्ति भूमि तक ही सिमट गयी थी । इसकाल में धार्मिक, संकीर्णता, जातीय संघर्ष , सांप्रदायिक उन्माद एवं सामाजिक भेदभाव चरमसीमा पर थे । तत्कालीन शासकों के साथ मिलकर पंडे-पूजारी और मुल्ला - मौलवी सामान्य जनता का हर तरह से शोषण कर रहे थे । आम जनता की स्थिति "दो पादन के बीच में साबुत गया न कोय" ।।<sup>९९</sup> जैसी थी । रक्षक ही भक्षक बन रहा था ।

मध्ययुग के उस संक्रमणकाल में अद्भुत प्रतिमा, साहस एवं व्यक्तित्व लेकर कबीर का अवतरण हुआ । उनकी धर्म भेद दृष्टि मार्मिक पाखण्ड एवं अंधविश्वासों के कुहासों को चीरकर शाश्वत सत्य एवं मानवता को देख लेने में पूर्ण रूपेण सक्षम थी । धार्मिक जड़ता जाति-व्यवस्था एवं वर्णाभिमान के समर्थको को उन्होंने खुली चुनौती दी और धार्मिक स्वतंत्रता तथा मानव-समानता पर आधारित समाज-संरचना पर बल दिया । किसी भी प्रकार के असत्य और पाखंड के साथ समझौता करना तो वे सीखे ही नहीं थे । इसीलिए उन्होंने शास्त्रानुमोदित परंपरा-पोषित सुखद मार्गको नहीं अपनाया, अपितु मानवता के

उद्धारार्थ , सत्य के कंटीले रास्ते को चुना और उस पर वे अकेले चल पड़े । उनकी दृष्टि में सत्य सर्वोपरि था । सत्य ही उनका साध्य था और साधन भी ।

लोक प्रचलित धारणा है कि कबीर साहेबने वेद-शास्त्रों का केवल खंडन ही किया है, परंतु य धारणा पूर्णतः सही नहीं है । पहले यह याद रखना होगा कि कबीर साहेब किसी के खिलाफ नहीं थे, यदि खिलाफ थे तो अंध विश्वास, पाखण्ड, एवं असत्य के । जब समाज के मार्गदर्शक कहे जानेवाले मुल्ला और पंडित समाजाहित-विरोधी पाखंडपूर्ण आलोक धारणाओं को वेद-कतेब समर्थित बताकर एवं उन्हें जनसमाज पर जबर्दस्ती थोपकर जनता को गुमराह कर रहे थे, तब कबीर साहेब को कहना पड़ा- "नौधा बेद कितेब है, झूठे का बाना", "वेद-कितेब दोऊ फंद पसारा, तेहि फन्दे परू आय बिचारा ।।" <sup>९९</sup> आदि ! इस तरह कबीरजीने कहीं पर भी वेद-कुरान का आँख मूंदकर समर्थ न नहीं किया है । उनकी दृष्टि में मानव हिन्दु, मुसलमान, ब्राह्मण, शुद्र आदि न होकर केवल मानव है और मानव मात्र को सब दिशा में उन्नति करने का समान अधिकार है ।

### (३) बीजक :

बीजक में यह तो नहीं कहा जा सकता कि बीजक के अतिरिक्त कबीर साहेब के नाम से, प्रचलित अन्य वाणियाँ उनके द्वारा ही कही गयी है । क्योंकि उनमें प्रक्षेपों की भरमार है परंतु यह भी नहीं कहा जा सकता कि १.० वर्ष के लम्बे जीवन में उन्होंने बीजक के अतिरिक्त और कुछ कहा ही नहीं है । बीजक के अतिरिक्त उनकी सारी वाणियाँ है परंतु उनकी समस्त वाणियों में बीजक सर्वाधिक प्रामाणिक है । प्रसिद्ध वैष्णव सन्त नाभादासजी महाराजने कबीर साहेब की प्रशंसा करते हुए जो छप्पय कहा है, उसकी एक पंक्ति है....." हिन्दु, तुरूक प्रमान रमैनी शब्दी साखी ।।" <sup>१००</sup> रमैनी, शब्द और साखी का यह क्रम किसी और कबीरवाणी में नहीं अपितु बीजक में ही है । बीजक ही ऐसा ग्रन्थ है जिसमें कबीर साहेब का क्रांतिकारी स्वरूप पूर्ण रूपेण उभरा है ।

बीजक में कबीर साहेबने अपने नामवाची कबीर, कबिरा, कबीरा, कबिरन, आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है । ऐसा उन्होंने क्यों किया, स्पष्टरूप से कुछ नहीं कहा जा

सकता । कबीर साहेबने इन सबका प्रयोग अपने लिये ही किया है, केवल छंद प्रवाह बनाये रखने के लिए मात्राओं में हेरफेर है ।

बीजक हमें बरबस ही सूत्र ग्रन्थों की याद दिलाता है जिसमें छोटा-सा वाक्य बहुत बड़े अर्थ गांभीर्य एवं भाव को छिपाये रहता है । बीजक में रूपक, प्रतीक, अन्योक्तिकथन, उलटबांसी शैली, कहीं पूर्वपक्ष की मान्यताओं का दिग्दर्शन कराने के लिए कहे गए वचन आदि होने से हर सिद्धांत के माननेवालों को अपने दार्शनिक सिद्धांत की स्थापना के लिए जगह मिल जाती है ।

"गोरख रसिया योग के, मुये न जारी देह ।

माँस गली माटी मिली, कोरो माँजी देह ।।" १००

रसिया – रसिक, प्रेमी, कोरो- शरीर की हड्डियाँ, माँजी- साधना से चमकने लगी ।

बीगोरखनाथजी योभाभ्यास के बड़े प्रेमी थे । उन्होंने अपने शरीर को योगाभ्यास में इसलिए तपाया कि यह अमर हो जाय । फलतः उनके शरीर का माँस गलकर मिट्टी में मिल गया । अभिप्राय है कि उन्होंने योगाभ्यास से मांस को गला डाला और उनके देह की हड्डियों मैजे हुए बरतन के समान चमकने लगी ।

"कबीर भरम न भाजिया, बहुबिधि धरिया भेष ।

साँई के परचावते, अन्तर रहि गई रेष ।।" १०१

साई – ब्रह्म, परचावते – परिचय करते – कराते, अन्तर – मन में, रेष – हानि, क्षति, रेख, लकीर, अभ्यास, वासना ।

सद्गुरु कहते हैं कि लोग नाना संप्रदायों में भक्त तथा साधुओं के नाना वेष धारण कर लेते हैं और उनके कर्म कांड तथा वाणी-जाल में उलझ जाते हैं, परंतु उनके मन की भ्रंति नहीं मिटती । गुरु और शिष्य परस्पर ब्रह्म का परिचय करते-कराते हुए घोटाले में रह जाते हैं और उनके मन में किसी – न-किसी रूप में संसार की वासना शेष रह जाती है ।

"कबीर जात पुकारिया चढ़ि, चन्दन की डार ।

बाट लगाये ना लगे, युनि का लेत हमार ।।" १०२

चन्दन की डार – मानवीय सद्गुण, चेतन स्वरूप की स्थिती, बाट – रास्ता ।

कबीर साहेब कहते हैं कि मैं अपने मानवीय सद्गुण एवं आत्मस्वरूप की स्थिती में आरूढ होकर संसार के लिए भी, सन्मार्ग बताए जा रहा हूँ । यदि संसार के लोग बताए हुए सन्मार्ग पर नहीं चलेंगे तो हमारा क्या नुकसान करेंगे, अपना ही अहित करेंगे ।

"एक शब्द गुरुदेव का, ताका अनन्त विचार ।

थाके मुनिजन पण्डिता, बेद न पाँवै पार ॥" १०२

एक शब्द-मोक्ष, अनन्त-असंख्य यहाँ भी अनन्त शब्द असंख्य का ही भाव प्रकट करता है । पा-अन्त, सीमा, तथ्य ।

'मोक्ष' – गुरुदेव के इस शब्द पर मनीषियोंने असंख्य विचार किये हैं । मुनिजन तथा विधानसभा विचार करके थक गए हैं । वेदों ने इसका पार नहीं पाया है ।

"देखै बीजक हाथ लै, पावै धन तेहि शोध ।

याते बीजक नाम भा, माया मन को बोध ॥" १०३

खोज, अनुसंधान, बोध – ज्ञान,

जो जिज्ञासु अपने हाथ में बीजक लेकर देखेगा और चित्त लगाकर पढ़ेगा । वह खोज कर आत्माघात पा जायेगा । इसलिए सद्गुरु कबीरने इस ग्रंथ का नाम बीजक रखा है । इसके अध्ययन से यह ज्ञात हो जाता है कि माया क्या है और मन क्या है ।

कबीर साहेब बीजक में कहते हैं कि माया मन का मोह है । अर्थात् दृश्यजगत तथा अनेक मानसिक क्रांतियों का मोह ही माया है और उसका निर्माता जीव है । जीव ही उसे छोड़कर उससे मुक्त हो सकता है ।

मान लो, किसी ने बीड़ी पीने की आदत बना ली है । अब बीड़ी पीने के प्रति उसकी प्रबल आसक्ति हो गयी है । वह उसके बीना रह नहीं पाता है । सोचिए बिड़ी पीने की आसक्तिरूपी माया किस ईश्वरने उसके भीतर थोपी है और उसके कोन सा ईश्वर मुक्त कर सकता है ? वस्तुतः मनुष्यने ही अपने भूलवश उस माया को बनाया हैं और उसी को छोड़ने

से उसका उससे उद्धार हो सकता है । हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि विकारों का स्वयं अज्ञानवश सृजनवश करते हैं और स्वयं उनमें फँसकर दुःख भोगते हैं परंतु इनकी वास्तविकता जानकर इन्हें हम स्वयं त्यागकर मुक्त हो जाते हैं । अतएव माया मन का मोह है जिसे जीव अपने स्वरूप के भूलवश बनाता है और उसमें स्वयं उलझकर दुःख पाता है । जब उसका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तब उसे एकदम छोड़कर कृतार्थ हो जाता है । अतएव जीव का माया से मुक्त होने का विषय उसका अपना है, तथाकथित ईश्वर का विषय नहीं । यही स्वावलंबन का पथ है, यही कल्याण का आशावादी स्वरूप है और यही यथार्थ है ।

#### ५. सबद (शब्द) :

सन्तो भक्ति सतोगुरु आनी ।  
 नारी एक पुरुष दुई जाया, बूझो पंडित ज्ञानी ।  
 पाहन कोरि गंग एक निकरी, चहुँदिश पानी पानी ॥  
 तेहि पानी दुई पर्व त बूडे, दरिया लहर समानी ।  
 उडि माखी तरवर को लागी, बोलै एकै बानी ॥  
 वह माखी को माखा नाहीं, गर्भ रहा बिनु पानी ।  
 नारी सफल पुरुषवै खाये, ताते रहै उकेला ।  
 कहहि कबीर जो अबकी बूझै, सोई गुरुहम थेला ॥<sup>१०४</sup>

हे संतो ! सद्गुरु शाधक के हृदय में भक्ति का अवतरण करता है अथवा है संतो, अपने हृदय में भक्ति का अवतरण करो । एक भक्तिरूपी नारीने ज्ञान तथा वैराग्य इन दो पुत्रों को जन्म दिया है । हे पंडितो एवं ज्ञानियों ! इस तथ्य को समझो । जैसे हिमालय की शिलाओं का फाड़कर गंगा नदी निकली और मैदानी भाग में आकर उसने चारों तरफ पानी-पानी कर दिया, वैसे मनुष्य के हृदय की अज्ञान-शिला तोड़कर एक भक्ति की गंगा में अंता-ममता के दोनों पर्वत डूब गये, अर्थात् नष्ट हो गये । यहाँ तक कि उस साधक का संसार-सागर ही भक्ति लहर में लीन हो गया ।

सर्वत्र पानी भरजाने पर जैसे जमीन की सारी मक्खियाँ उड़कर वृक्षों पर जा बैठती हैं और वहाँ आवाज करने लगती हैं, वैसे पूरा जीवन अध्यात्म-रस से पूर्ण हो जाने पर मलिन मनोवृत्ति संसारी धरातल से उड़कर और पवित्र होकर स्वरूपज्ञान के उच्चतमवृक्ष पर जा बैठती हैं और एक स्वरूपज्ञान की बातें बोलने लगती हैं । अर्थात् विषयाकारवृत्ति स्वरूपाकार बन जाती है । जैसे बिना नर तथा वीर्य के किसी मादा को गर्भ रह जाय तो आश्चर्य होगा । वैसे विषयवृत्ति बिना अन्य सहारा पाये केवल भक्ति के प्रताप से स्वयंमेव ज्ञानवृत्ति बन जाती है ।

भक्तिनारी तो कल्याणकारी है, परंतु दूसरी माया-नारी है, जिसने जीवों को संसार में भटका रखा है । इस माया नारी ने सभी चेतन पुरुषों का पथभ्रष्ट कर दिया है । इसीलिए चेतन-पुरुष को चाहिए की वह माया-नारी को छोड़कर अकेला हो जाय, असंग हो जाय । कबीर साहब कहते हैं कि जो सबका मानव-जीवन में निज स्वरूप का बोध पाकर स्थित हो गया, वह गुरु हो गया, महान हो गया । मैं उसका दास बनने के लिए तैयार हूँ।

"सन्तो देख जग बौराना ।

साँच कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना ॥

नेमी देखा धर्मी देखा, प्रातः करे अस्नाना ॥

आतम मारी पषाणहि पूजे, उमें किंछक न ज्ञाना ।

बहुतक देखा परी औलिया, पढ़ें कितेब कुराना ॥

कै मुरीद तदबीर बतावै, उनमें उहै जो ज्ञाना ।

आसन मारि डम्भ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना ॥

पीतर पाथर पूनज लागे, तीरथ गर्भ भुलाना ॥

टोपी पहिरे माला पहिरे, छाप तिलक अनुमाना ।

साखी शब्दै गावत भूले, आतम सबरि न जाना ॥

हिन्दु कहैं मोहिं राम पियारा, तुरूक कहैं रहिमाना ॥

आपुस में दोऊ लरि-लरि मूये, मर्म न काहू जाना ॥

धर-धर मन्तर देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना ।।

गुरू सहित शिष्य सब बूढ़े, अन्तकाल पछिताना ।।

कहहिं कबीर सुनो हो सन्ते, है सब भ्रम भुलाना ।।

कतिक कहाँ कहा नहि मामे, सहजे सहज समाना ।।<sup>१०६</sup>

हे संतो ! विचारक देखें तो लगोगा के धर्म के माम पर संसार के लोग पागल हो गये हैं । यदि सच्ची बात कही जाय तो लोग मारने दौड़ते हैं और गुरूओं की झूठी बातों में विश्वास करते हैं । मैंने धर्म के नियमों के पालन करनेवालों को बड़े निकट से देखा है । वे प्रातःकाल ही स्नान करते हैं, परंतु वे जानदार प्राणियों को मारकर बेजान पत्थरों के देवताओं की पूजा करते हैं । इसलिए इनमें कुछ भी ज्ञान नहीं है । मैंने बहुत से पीर तथा औलिया को भी निकट से देखा है । (वे कुरान शरीफ पढ़ते हैं तथा उसके सहायक अन्य किताबों को पढ़ते हैं । वे लोगों को मुरीद (शिष्य) बनाते हैं और उन्हें स्वर्ग पाने का वही तरीका बताते हैं कुर्बानी के नाम पर निरीह प्राणियों की हत्या करना । इसलिए उनमें भी वही भ्रांति है ।

कितने लोग आसन लगाकर बैठते हैं, और सिद्ध होने का दिखावा करते हैं । उनके मनमें धार्मिकता का बड़ा घमंड रहता है । परंतु पूजते हैं....पीतल-पत्थर के जड़-देवता और तीर्थ के अहंकार में थूले फिरते हैं कि हमने सब बड़े-बड़े तीर्थों लिये हैं, अब हम पापों से मुक्त ही हैं ।

कितने लोग विशेष प्रकार की टोपी पहनते हैं, माला पहनते हैं, शरीर के अंगों में छाप लगाते हैं, मस्तक पर तिलक लगाते हैं और अनुमान कल्पना में भटकते रहते हैं । वे साखी-शब्दों के गाने के घमंड में ही भूले रहते हैं । उन्हें अपने स्वरूप की कोई खबर नहीं है ।

हिन्दु कहते हैं कि हमें राम प्रिय है और मुसलमान कहते हैं कि हमें रहिमान प्रिय है । ये दोनों आपस में लड़-लड़कर मरते हैं, परंतु इनमें से कोई इस रहस्य को समझने की चेष्टा नहीं करता कि दोनों एक ही बात कहते हैं । तथ्य तो सब में एक है, केवल शब्दों का फेर है ।

अपनी संप्रदाय की महिमा के अभिमान में पड़ें कितने ही लोग स्वयं गुरुत्व से ही होकर भी घर-घर मंत्र-दीक्षा देते घूमते हैं । ऐसे गुरु अपने शिष्यों को लेकर भव-सागर में डूबते हैं और अंतकाल में उनको पश्चाताप होता है । सद्गुरु कहते हैं कि संतो ये सब भ्रम-भूल में पड़े हैं । कितना कहा जाय, ये कहा ही नहीं मानते । सब सहज की भेड़िया घंसान में पड़ रहे हैं ।

#### (६) 'साखी' :

"साखीग्रन्थ" इस शब्द को सुनते ही बहुतों के मन में तो यही आयेगा कि क्या इस पुस्तक में गवाहों के बयान हैं कि सचमुच उनकी यह धारणा किसी अंश में ठीक है, क्योंकि सद्गुरु कबीरने भी स्वयं गवाह बनकर जनता-जनार्दन के सामने बड़ी ही निर्भिकता के अनेकबार खुले बयान दिये हैं । उनके बयानों का संग्रह होने के कारण इसका नाम साखी ग्रन्थ है ।

साखी यह शब्द साक्षी का अपभ्रंश है । "क्षातृत्वं सति तटस्थत्वं साक्षित्वम्" अर्थात् झगड़े के मूल को जानते हुए भी वादी और प्रतिवादीयों के पक्षपात से जो रहित हो उसे साक्षी (साखी, गवाह) कहते हैं । सद्गुरु कबीर साम्प्रदायिक कलह के मूल (परस्पर की अज्ञानता) को जानते हुए भी साम्प्रदायिक पक्षपात की छूत से कोसों दूर थे । एक सर्व हितैषी तटस्थ व्यक्ति की तरह वे सबों को हितोपदेश किया करते थे, यही कारण था कि वे हिन्दुओं के गुरु और मुसलमानों के पीर बन सके थे । अपनी रस तटस्थता और सर्व हितैषिता का वर्णन उन्होंने कई जगह किया है ।

"कबीर खड़ा बाजार में, सबकी चाहे खैर ।

ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर ।।<sup>१०७</sup>

जो पक्षपात से रहित होता है वह साक्षी बनकर अनेक उलझनों को सुलझाने में समर्थ होता है । बिना साक्षी बने उलझनों का निपटारा कदापि नहीं हो सकता । सद्गुरुने भी तात्कालिक साम्प्रदायिक कलह को मिटाने के लिये ठीक साक्षी का काम किया था । इसका



प्रभाव भी उस समय अपने अपने दीन के दीवानों पर बहुत अच्छा पड़ा था । आईने अकबरी में इस बात का उल्लेख मिलता है कि कबीर साहेब के उपदेशों से प्रभावित होकर शाह अकबरने सर्व धर्मों और मजहबों की एकता का मार्ग पकड़ा था । ऐतिहासिक लोग अकबर की इस प्रवृत्ति को चाहे जिस दृष्टिकोण से देखते हैं, परंतु बात तो निर्विवाद है कि सद्गुरु के उपदेशों में उस समय साम्प्रदायिक कलह मिट गया था ।

जैसे..... "गुरु गोविंद दो खड़े, किसके लागों पाँव ।

बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताया ॥<sup>१०८</sup>

"गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट ।

अंदर हाथ सहार दे, बाहिर बाहै चोट ॥<sup>१०९</sup>

### (७) रमैनी :

कबीर से पूर्व रमैनी बहुत कम मिलती हैं । रमैनी को 'रामाणी' तथा "रामायण" का बिगड़ा हुआ स्वरूप माना गया है । रमैनियों की रचना, दोहा, चौपाईयों में की गई है । रमैनी का प्रयोग स्तुति वर्णन, उपदेश वर्णन या लोकोपकार के लिए किया गया है ।

"जो मिलिया सो गुरु मिलिया,

सीख न मिलिया कोय,

छः लाख छानवे रमैनी,

एक जीवन पर होय ॥<sup>१०९</sup>

तहिया होते पवन नहिं पानी, तहिया सृष्टि कौन उष्पानी ॥१॥

तहिया होते कली नहि फूला । तहिया होते गर्भ नहि भूला ॥२॥

तहिया होते विद्या नहि वेदा । तहिया होते शब्द नहि स्वादा ॥३॥

तहिया होते पिण्ड नहि बासू । नहि घर धरणि न पवन अकासू ॥४॥

तहिया होते गुरु नहि चेला । गम्य अगम्य न पन्थ दुहेल ॥५॥<sup>१११</sup>

(जो लोग यह मानते हैं कि सृष्टि नये सिरे से कभी उत्पन्न हुई है उनसे सद्गुरु पूछते हैं.....) जब आरंभ-काल में पवन तथा पानी नहीं थे तब मूल द्रव्य के बिना सृष्टि किसने बना दी कहते हैं कि उस समय न कली थी न फूल था, न गर्भ था और न उनका मूल

रज-वीर्य । उस समय विद्या, वेद, शब्द, स्वाद आदि कुछ नहीं थे । न तो तब शरीर था और न उसमें बसनेवाला जीव । उस समय पर्वत, पृथ्वी, हवा, आकाश कुछ नहीं थे । उस समय गुरु और शिष्य भी नहीं थे और सरल तथा कठिन -दोनों मार्ग भी नहीं थे ।

फिर जिसका कोई पता-मुकाम नहीं है उस अज्ञात की बातें क्या करते हो ? इस गुण-विहीन दर्शनमें कर्ता और कारण के क्या नाम करोगे ?

इस रमैनी से साफ जाहिर होता है कि सद्गुरु कबीर साहेब सृष्टि का अनादि मानते हैं । इसीलिए उन्होंने यहाँ सृष्टिवादियों से गहन प्रश्न किये हैं ।

#### (८) कबीरबानी :

कबीर की बानी ने आम हिन्दुओं और मुसलमानों को मुग्ध कर लिया लेकिन शंकीर्ण दृष्टिवाले लोगो की आँखो में वे काँटे की तरह खटकते रहे । इसलिए उन्होंने कबीर के खिलाफ हंगामा खड़ा कर दिया और उस समय के बादशाह सिकंदर लोदी तक उनकी शिकायत पहुँची । यह तो पता नहीं चलता की सिकंदर लोदीने कबीर को सजा दी या माफ कर दिया, लेकिन यह जरूर हुआ कि कबीरने कुछ अरसे के लिए बनारस छोड़ दिया । इसका नतीजा यह हुआ कि उनकी बानी दूर-दूर तक फैल गई ।

"सन्त न जात न पूछो निरगुनियाँ ।

साध ब्राह्मन साध छत्तरी, साधै जाती बनियाँ ।

साधनमां छतीस साधै धोबी, टेढ़ी तोर पुछनियाँ ।

साधै नाऊ साधै धोबी, सांध जाति है बरियाँ ।

साधनमाँ रैदास सन्त हैं, सुवच ऋषि सो भँगियाँ ।

हिन्दू-तुर्क दुई दीन बने हैं, कछू नहीं पहचनियाँ ॥<sup>११२</sup>

ए नादानों, संतो की जाति क्या पूछते हो (भगवान के भक्त) साधु ब्राह्मण भी है और क्षत्रिय भी और बनिए भी । साधुओं में छत्तीस जाति के लोग है जो उसे खो रहे हैं । तुम्हारा यह सवाल कितना गलत है । नाई, धोबी, बढ़ई सभी जातियों में साधु हो चुके हैं । उन्हीं में संत रैदास हुए है और उन्हीं में शवयच सुदर्शन जैसे ऋषि जिन्हें भंगी कहा गया है, बैकार में

हिंदु और मुसलमान दो धर्म बन गए हैं, जिनमें कोई अंतर नहीं ।

"मोकों कहाँ ढूँढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में ।

ना मैं देवल ना मैं मस्जिद ना काबे कैलास में ।

ना तो कौन क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में ।

खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तलाश में ।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब खाँसो की खाँस में ॥<sup>११३</sup>

ए बंदे, तू मुझे कहाँ ढूँढ़ता फिर रहा है मैं तो तेरे पास ही हूँ । न मैं मंदिर में मिलूँगा, न मस्जिद में, न काबा और कैलाश में, न पूजा-पाठ में न योग बैराग में, सच्चे मन से खोजनेवाला हो तो उसे मैं पल-भर की तलाश में मिल जाऊँगा । कबीर कहते हैं,

भाई साधु सुनो, वह तो हर साँस में मौजूद है ।

"साधो भाई, जीवित ही , करो आशा ।

जीवित समझे जीवत बुझे, जीवत, भुक्तिनिवास ।

जीवत करम की फाँस न काटु, मुये मुक्ति की आसा ।

तन छूटे जिव मिलन कहत है, सो सब झूठी आशा ॥

अबहूँ मिला तो तबहूँ मिलेगा, नहि तो जमपुर बासा ॥

त गहे सतगुरु को चीन्हें, सत-नाम विश्वासा ।

कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा ॥<sup>११४</sup>

मेरे भाई, जब तक जिंदा रहो तब तक (ईश्वर को पाने की) आशा रखो । समझ-बूझ जीवन के साथ है । मुक्ति भी जीवन में ही संभव है । अगर तुमने अपने जीवन में अपने बंधन नहीं तोड़े, (करम का फँदा नहीं काटा) तो मरने के बाद मुक्ति पाने की क्या आशा रखते हो । यह भ्रम है कि आत्मा शरीर से निकलकर भगवान में मिल जाएगी । अगर वह सब मिल जाय तो तब भी मिलेगा, नहीं तो तुम्हें यमपुरी में ही रहना पड़ेगा । सत्य को आज पकड़ो, सतगुरु को आज पहचानो, सत्-नाम पर आज आस्था रखो । कबीर कहते हैं कि हम तो साधना के दास हैं क्योंकि अंत में साधना ही काम आती है ।

### १८ ३.९ आलोच्य संतो की वाणी का तुलनात्मक अध्ययन :

मध्ययुगीन भक्त या संत कवि पहल भक्त थे और बाद में कवि । इन संतो का उद्देश्य परमात्मा की स्तुति करना था, काव्य करना नहीं था । परमात्मा के गुणगान में जो मन में जो उत्पन्न होता था, उसकी ही निष्पत्ति वे कर देते थे, इसलिए तो भक्तों की रचना में बार-बार दुरसक्ति आती रहती है । परमात्मा के प्रति अपनी असीम श्रद्धा व्यक्त करने के लिए ही अनुभूति विभिन्न शब्दों में बार-बार पुनरुक्ति आती रहती है । परमात्मा के प्रति एक ही अनुभूति विभिन्न शब्दों में बार-बार निष्पन्न हो जाती है । आलोच्य सन्त कवि स्वामी प्राणनाथ और सतं कबीर दोनों मध्य युगीन भक्त कवि होने से उन दोनों सन्त कवियों के काव्यों में जीवन कर्तव्य दोनों सन्त कवियों के काव्यों में पुनरुक्ति दृष्टिगत होती है । इन दोनों संतो का जीवन कर्तव्य की कठोर साधना से पूर्ण था । इन दोनों के लिए उनका जीवन और कथित्यत्व अलग नहीं था । उनका जीवन काव्यमय था और काव्यजीवन के विकारों से पूर्ण । वे सत्य के उद्घाटक थे, सत्य के वीर उपासक थे । उन्होंने अपने काव्यों द्वारा सत्य का संदेश जनता तक पहुँचाया है ।

संक्षेप में दोनों संतो का उद्देश्य कविता द्वारा, साहित्य द्वारा या भक्तपूर्ण पदों द्वारा अपना संदेश जनता को देना चाहते थे, कविता करना उद्देश्य नहीं था । कविता उनके लिए साधन मात्र थी, साध्य नहीं ।

आलोच्य दोनों संतोने अपने पैगाम का सामान्य जनता तक पहुँचाने के लिए साहित्य को साधन बनाया था । साहित्य या काव्य का विधिवत् ज्ञान या अध्ययन करने का सद्भाग्य उन्होंने नहीं पाया था । स्वामी प्राणनाथने अपने एक पद में लिखा है ।...

"लघु दीर्घ पिंगल चतुराई ए तो किवनी छे बड़ाई,

अनो अर्थ हु मणों सही पण आ निधमां ते शोभ नहीं ।।<sup>११५</sup>

इससे स्पष्ट होता है कि पिंगल रचना करना उन्होंने जीवन का उद्देश्य माना था । कबीर भी अपनी अभिव्यक्ति अपने आप अपनी मस्ती में कर देते थे । अतः उन्होंने भी

साहित्य को माध्यम बनाया था । उद्देश्य नहीं । डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे के मतानुसार देवचन्द्र महाराज अपने शिष्यों को कबीर जाटी और संतो के पद सुनाया करते थे । जाटी अर्थात् जाटों के संत गुरूनानक । इस तरह देखा जाय तो स्वामी प्राणनाथ नानक के पदों, कबीर के पदों से प्रभावित थे ।

स्वामी प्राणनाथने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए हिन्दूस्तानी भाषा को सक्षम माना है । अलबत्ता उन्होंने अन्य भाषा में भी काव्य रचना जरूर की है परंतु व्यक्त समाज के हित में उन्होंने हिन्दूस्तानी भाषा को ही महत्त्व प्रदान किया है । स्वामी प्राणनाथ और संत कबीर दोनों संतो के काव्य में परमात्मा के गुणगान, उनके प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त हुई है । परमात्मा की प्राप्ति के लिए नाम स्मरण सबसे बड़ा और सक्षम सम्बल है । नाम-स्मरण में मन लगाने के लिए सद्गुरू की प्राप्ति पर दोनों संतोने बल दिया है । अर्थात् सतगुरू के बिना परात्मा को किसीने प्राप्त नहीं किया था, न कभी किया है । स्वामी प्राणनाथ कहते हैं कि...

गोविन्द के गुन गायके, तापर माँगत दान ।

धिक धिक पड़ो ज मानवी, जो बेचत है भगवान ।।

जो परमात्मा का नाम बेचकर पेट पालते हैं वे बड़े आड़म्बरी हो सकते हैं, सद्गुरू नहीं । स्वामी विवेकानंद भी कहते हैं कि गुरू केवल एक किताब कीड़ा ही नहीं वरन् एक आत्मज्ञानी पुरुष होते हैं जिन्हें आत्मानन्द का प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका होता है ।<sup>११६</sup> स्वामी प्राणनाथ और संत कबीर ऐसे आत्मज्ञानी पुरुष को ही सच्चे गुरू मानते हैं । गुरू ही पथ – प्रदर्शक होते हैं । गुरू के आदेशों के पालन में ही सच्ची गुरूभक्ति समाई हुई है । गुरू के साथ तादात्म्य रखनेवाले खालसापन्थी कहलाते हैं ।

मध्ययुगीन सन्त साहित्य सवर्णों के खिलाफ अत्यंत एवं शूद्रों का आंदोलन माना जाता है । मध्ययुगीन भक्त कवि शूद्र जाति के प्रतिनिधि ही थे । जैसे कि कबीर जुलाहा थे दास चमार थे । आलोच्य दोनों संतोने भी निम्न जाति के प्रतिनिधि को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए वर्णव्यवस्था का विरोध अपने साहित्य में किया ।

आलोच्य दोनों सन्तों ने अपने काव्य में प्रकृति को स्थान दिया है । स्वामी प्राणनाथने षट्ऋतु लिखा है और कबीरजीने "बीजक" लिखकर अपना प्राकृतिक प्रेम अभिव्यक्त किया है । कृष्णभक्ति काव्यों में ऋतुवर्णन की एक प्रणाली थी । इस प्रणाली के निर्वाह में ही स्वामी प्राणनाथने षट्ऋतु काव्य लिखा और संत कबीरजीने "बीजक" लिखा । इस प्रणाली का प्रवाह इतना वेगवान था कि इससे कोई सन्त अछूता नहीं रह पाया ।

आलोच्य संत स्वामी प्राणनाथने अपने रास ग्रन्थ में कृष्णभक्ति के पद दिये हैं और कबीरने अपनी कबीरबानी में राम भक्ति के पद दिये हैं । स्वामी प्राणनाथने रासलीला का वर्णन किया है ।

आलोच्य संतोंने अपने काव्य के प्रेरणा तत्कालिन परिस्थितियों से पायी थी । फिर भी परिस्थिति के अलावा साहित्य में परमात्मा के रूप का वर्णन भी किया है । स्वामी प्राणनाथजी को काव्य की प्रेरण कैदखाने में मिली थी । स्वामी प्राणनाथजी की वाणी कैदखाने में हुई थी । स्वामी प्राणनाथकी वाणी कैदखाने में ही अपने भाई के द्वारा लिखी गयी थी । कबीरजी को तीर्थाटन अनुभवों से पदों की प्रेरणा मिली थी । स्वामी प्राणनाथजी की वाणी तो अभी थोड़े ही समय पहले तक प्रणामी मंदिरों के ग्रन्थागारों में छुपी हुई रही थी । डॉ. नरेश पंडया लिखते हैं कि अब भी कई साहित्य, कृतियाँ अभिसंधित्सु की प्रतीक्षा में पड़ी हुई हैं ।<sup>११७</sup> स्वामी प्राणनाथने विभिन्न उदाहरणका प्रयोग अपने साहित्य में किया है । दोनों संतों की वाणी में आक्रोशी स्वर मिलता है ।।

आलोच्य दोनों सन्तों ने गुरु की वाणी को ही गुरु का रूप समझकर ग्रन्थ को ही गुरु मानने का आदेश दिया है । उस आदेशानुसार प्रणामी भक्तों का स्वरूप साहब या कुलजमस्वरूप साहब अपने मंदिरों की गुरुगादी पर बिराजमान हुए हैं ।

शब्दों में आदेश देकर एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की नींव डाली गयी थी, जो बाद में प्रणामी संप्रदाय में भी स्वरूप साहब को पवित्र ग्रन्थ के रूप में स्वीकार कर निभायी गयी ।

**चेप्टर -३**  
**--: संदर्भसूचि :-**

| क्रम | पुस्तक का नाम  | लेखक का नाम  | प्रकाशन वर्ष                                      | पृ.नं.  |
|------|--|--|---|---------|
| (१)  | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा   | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईल्हाबाद                    | पृ -११६ |
| (२)  | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा   | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईल्हाबाद                    | पृ-११७  |
| (३)  | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा   | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईल्हाबाद                    | पृ-११७  |
| (४)  | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन पौराणा   | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईल्हाबाद                    | पृ-११७  |
| (५)  | श्री रासग्रंथ  | महामति श्री प्राणनाथजी<br>प्रणित धर्मदासजी महाराज<br>तथा बाबाजी श्री<br>लक्ष्मीदासजी | श्री ५-नवतनपुरीधाम<br>- जामनगर,<br>आचार्यश्री-१०८ | पृ-१०८  |
| (६)  | श्री प्रकाशग्रंथ<br>(गुजराती)                            | महामति श्री प्राणनाथजी<br>प्रणित धर्मदासजी महाराज<br>तथा बाबाजी श्री<br>लक्ष्मीदासजी | श्री ५-नवतनपुरीधाम<br>- जामनगर,<br>आचार्यश्री-१०८ | पृ-०३   |
| (७)  | श्री षट्त्रितु एवं श्री<br>कलश                           | महामति श्री प्राणनाथजी<br>प्रणित धर्मदासजी महाराज<br>तथा बाबाजी श्री<br>लक्ष्मीदासजी | श्री ५-नवतनपुरीधाम<br>- जामनगर,<br>आचार्यश्री-१०८ | पू- ०१  |
| (८)  | श्री कलश<br>(गुजराती)                                    | महामति श्री प्राणनाथजी<br>प्रणित धर्मदासजी महाराज<br>तथा बाबाजी श्री<br>लक्ष्मीदासजी | श्री ५-नवतनपुरीधाम<br>- जामनगर,<br>आचार्यश्री-१०८ | पृ-०२   |
| (९)  | श्री प्रकाशग्रंथ<br>(हिन्दी)                             | महामति श्री प्राणनाथजी<br>प्रणित धर्मदासजी महाराज<br>तथा बाबाजी श्री<br>लक्ष्मीदासजी | श्री ५-नवतनपुरीधाम<br>- जामनगर,<br>आचार्यश्री-१०८ | पृ -२०  |
| (१०) | श्री सनंध  | महामति श्री प्राणनाथजी प्रणित<br>धर्मदासजी महाराज तथा<br>बाबाजी श्री लक्ष्मीदासजी    | श्री ५-नवतनपुरीधाम<br>- जामनगर,<br>आचार्यश्री-१०८ | पृ -८६  |

















|       |   |  |  |         |
|-------|---|--|--|---------|
| (९१)  | श्री स्वामी प्राणनाथ<br>प्रणित मारकत सागर | महामति श्री प्राणनाथजी<br>प्रणित धर्मदासजी महाराज<br>तथा बाबाजी श्री | ई.स. २००६<br>श्री ५-नवतनपुरीधाम<br>- जामनगर, | पृ-२१५  |
| (९२)  | श्री स्वामी प्राणनाथ<br>प्रणित मारकत सागर | महामति श्री प्राणनाथजी<br>प्रणित धर्मदासजी महाराज<br>तथा बाबाजी श्री | ई.स. २००६<br>श्री ५-नवतनपुरीधाम<br>- जामनगर, | पृ-२१८  |
| (९३)  | श्री स्वामी प्राणनाथ<br>प्रणित मारकत सागर | महामति श्री प्राणनाथजी<br>प्रणित धर्मदासजी महाराज<br>तथा बाबाजी श्री | ई.स. २००६<br>श्री ५-नवतनपुरीधाम<br>- जामनगर, | पृ-२६१  |
| (९४)  | श्री स्वामी प्राणनाथ<br>प्रणित मारकत सागर | महामति श्री प्राणनाथजी<br>प्रणित धर्मदासजी महाराज<br>तथा बाबाजी श्री | ई.स. २००६<br>श्री ५-नवतनपुरीधाम<br>- जामनगर, | पृ-२६२  |
| (९५)  | कबीर साहित्य और<br>सिद्धांत               | पक्षदत्त शर्मा   | पल्लव प्रकाश<br>दिल्ली                       | पृ - २५ |
| (९६)  | कबीर साहित्य और<br>सिद्धांत               | पक्षदत्त शर्मा   | पल्लव प्रकाश<br>दिल्ली                       | पृ-८५१  |
| (९७)  | कबीर साहित्य और<br>सिद्धांत               | पक्षदत्त शर्मा   | पल्लव प्रकाश<br>दिल्ली                       | पृ-८५३  |
| (९८)  | कबीर साहित्य और<br>सिद्धांत               | पक्षदत्त शर्मा   | पल्लव प्रकाश<br>दिल्ली                       | पृ-८५५  |
| (९९)  | कबीर साहित्य और<br>सिद्धांत               | पक्षदत्त शर्मा   | पल्लव प्रकाश<br>दिल्ली                       | पृ-११९३ |
| (१००) | कबीर साहित्य और<br>सिद्धांत               | पक्षदत्त शर्मा   | पल्लव प्रकाश<br>दिल्ली                       | पृ-११९९ |
| (१०१) | कबीर साहित्य और<br>सिद्धांत               | पक्षदत्त शर्मा   | पल्लव प्रकाश<br>दिल्ली                       | पृ-१२२४ |
| (१०२) | कबीर साहित्य और<br>सिद्धांत               | पक्षदत्त शर्मा   | पल्लव प्रकाश<br>दिल्ली                       | पृ-१३२० |
| (१०३) | कबीर साहित्य और<br>सिद्धांत               | पक्षदत्त शर्मा   | पल्लव प्रकाश<br>दिल्ली                       | पृ-१६५४ |
| (१०४) | सद्गुरु कबीर<br>विरचित बीजक               | व्याख्याकार अभिलाषदास  | -  | पृ-७४   |
| (१०५) | सद्गुरु कबीर<br>विरचित बीजक               | व्याख्याकार अभिलाषदास  | -  | पृ-७६   |
| (१०६) | साखीग्रंथ                                 | विरल टीका टिप्पणीकार<br>पं.श्री. हजूर प्रकाशमणि नाम<br>साहेब         |  | पृ-१    |

|       |   |  |   |        |
|-------|---|--|---|--------|
| (१०७) | साखीग्रंथ   | विरल टीका टिप्पणीकार<br>पं.श्री. हजूर प्रकाशमणि नाम<br>साहेब |   | पृ-१   |
| (१०८) | साखीग्रंथ   | विरल टीका टिप्पणीकार<br>पं.श्री. हजूर प्रकाशमणि नाम<br>साहेब |   | पृ-२   |
| (१०९) | कबीर पदावली :<br>एक अध्ययन                              | डॉ. सुधाबहन पौराणा   | शोधछात्रा<br>देवी आर. वाला,<br>सौ. युनि. छात्रा | पृ -२२ |
| (११०) | सद्गुरु कबीर<br>विरचित बीजक                             | -  | -   | पृ-९६  |
| (१११) | कबीरबानी  | अली सरदार झाकीर  | -   | पृ-०१  |
| (११२) | कबीरबानी  | अली सरदार झाकीर  | -   | पृ-०१  |
| (११३) | कबीरबानी  | अली सरदार झाकीर  | -   | पृ-०३  |
| (११४) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन पौराणा  | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईल्हाबाद                  | पृ-१५२ |
| (११५) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन पौराणा  | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईल्हाबाद                  | पृ-१५३ |
| (११६) | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरुनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधाबहन पौराणा  | प्रकाशन वर्ष -१९९६<br>ईल्हाबाद                  | पृ-१५८ |



## अध्याय – ४

### आलोच्य संत कवियों के काव्य में वैचारिक विविधता ।

#### ४.१ स्वामी प्राणनाथजी के साहित्य में विविध विचार :

##### प्रस्तावना :

विचार साहित्य की शक्ति है । जीवन के विधेयात्माक विचार ही प्रगति के सोपानों का मार्ग प्रशस्त करते हैं । विचार का साहित्यिक स्वरूप विवेक या मर्यादा भी है । विचार मानवी के मस्तिष्क में आलोडित चिंतन, मनन और समझदारी है । इसीसे करणीय-अकरणीय का ज्ञान प्राप्त होता है । अपने मनमें विचार आलोडित होते रहने के कारण ही ज्ञान में मानवी के मन में रही हुई भावनाओं की अभिव्यक्ति हो सकती है । अतः विचार ही मस्तिष्क की ज्योति का अखण्ड रूप है ।

##### विचार का शाब्दिक अर्थ :

भाषा के शब्दकोश में विचार के अनेक अर्थ प्राप्त होते हैं। विचार पर अभिव्यक्ति के कुछ अर्थों पर मैं प्रकाश डालना चाहूँगी ।

हिन्दी विश्वकोश के अनुसार "विचार वह है जो मन में सोचा जाय और सोचकर निश्चित किया जाय अर्थात् सोचना ही विचार है या सोचते हुए फलश्रुति निश्चित करने की क्रिया ही विचार है ।<sup>१</sup>

विचार वह है, जो मन में उत्पन्न हो या संदिग्ध विषय पर सोचकर यथार्थ निर्णय लेने की प्रक्रिया को विचार कहते हैं ।<sup>२</sup>

इसके उपरांत विचार का मतलब है मन का अपनी आत्मा के साथ बातें करना । "विचार आत्मा की मूक या अध्यात्मक बातचीत है ।<sup>३</sup> हिन्दी साहित्य के कविश्री मैथिलीशरण गुप्तने भी 'पंचवटी' काव्य में लिखा है कि...

"कोई पास न रहने पर भी,  
जनमन मौन नहीं रहता ।  
आप आपकी सुनता है वह,  
आप आपसे कहता है ।।"<sup>४</sup>

युक्तायुक्त वाक्य द्वारा जहाँ अप्रक्षार्थ का साधन होता है, उसे विचार कहते हैं ।

"तर्क, निर्णय, विचारणा, वितर्क , व्यूह आदि विचार के पर्याय हैं ।"<sup>५</sup>

### विचार की परिभाषा :

विचार की परिभाषा देने का प्रयत्न किया जाय अथवा विचार की सूक्ष्म व्याख्या की जाए तो स्पष्ट होगा कि जहाँ संत्रास, पीड़ा, विक्षोभ, कुण्ठा, निराशा, निःसहायता आदि अनुभूतियाँ होती हैं, वहाँ जब तक वे केवल अपने मौलिक रूप में एकाकी हैं तब तक वे केवल भावना मात्र रहती हैं परंतु जहाँ पर इन स्थितियों को अन्तिम रूप में सच न मानकर इनके निष्कासन पाने की बेचैनी है, उनमें निहित मूल कारणों की तह तक पहुँचने की व्यग्रता है । इस संदर्भ में यथार्थ के गहरें स्तरों की परख और पहचान पाने के लिए वास्तविकता की भीतरी प्रक्रियाओं का साक्षात्कार कर उन्हें सही संदर्भ में समझने के लिए परिस्थिति से जो टकराव है वहीं विचार का जन्म होता है । जो जीवन के अनुभवों के साथ संबंध रहते और जीवन की जटिलता से जन्म लेने के कारण महत्वपूर्ण भी हो जाते हैं । डॉ. रमेश कुंतल मेघ अपने विचारों को मूर्त रूप देते हुए कहते हैं कि ..... " यंत्रणा, आंतक और फूहडता की अग्नि के बीच में से गुजरने के बाद अगर अनुभव समृद्ध होते हैं तब संवर्धित होते हैं तथा सिद्ध होते हैं तब 'ज्ञान' और विचार में परिवर्तन हो जाते हैं । अर्थात् ज्ञान और विचार बनते हैं ।"<sup>६</sup>

विचार से मेरा मतलब सर्जनात्मक विचार से हैं जो मूलतः एक बौद्धिक चैतन्यगत प्रक्रिया है और जिसका मूल आधार वस्तु एवं परिस्थिति है । साहित्य सर्जन में रचनाकार

अपनी वास्तविक परिस्थितियों को उसके सही संदर्भों में समझने के लिए परिस्थिति से टकराते हैं। रचनाकार का परिस्थिति से जितना अधिक गहरा टकराव होगा, उसी आधार पर रचनाकार के विचार प्रामाणिक होंगे तथा उसी अनुपात में स्थिति की सही पहचान संभव हो सकेगी। "इन्द्रियबोध अथवा भावना से भिन्न भाव पर मानसिक केन्द्रियकरण की परिणती है विचार।"<sup>७</sup> पदार्थों के समस्त अभिज्ञान को विचार शब्द से अभिहित किया जाता है। इस दृष्टि से विचार परिधि में 'निर्णय', 'अवधारणा' तथा 'तर्क' की प्रक्रिया भी आ जाती है।

'विचार' पर विभिन्न दृष्टि से विचार करते हुए प्राचीनकाल से विद्वान अपने-अपने मत प्रकट करते रहे हैं। विद्वान, ऋषिगण कभी अपने मत की पुष्टि के लिए तो कभी अपने वक्तव्य को सिद्ध करने में विचार की आवश्यकता बताते रहे हैं। रचनाकार रचना के सर्जनात्मक विचार को ऐसा तत्त्व ही नहीं मानते, जिसके प्रयोग कोई सामान्य सत्य का आख्यान करने के लिए उपयोग में लिया जाय। विचार तो मानवीय परिस्थिति से मानवीय आवेगों से जुड़े रहे हैं तथा उसी स्थिति द्वारा निष्पन्न होकर वास्तविकता को विश्लेषित करते हुए, उसकी पहचान को अधिक गहरा बनाने की एक 'दृष्टि' भर होता है, और इसी अर्थ में वह विशिष्ट भी है और रचना में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

#### ४.१.१ स्वामीप्राणनाथजी के देश प्रेम के प्रति विचार :

महामति में अपनी देश-भावना फूट-फूटकर भरी थी। यद्यपि इसे एक बहुजातीय परिकल्पना से जोड़कर अपने धर्म, समाज, संस्कृति देश और पहचान के लिए वे आजीवन जागनी अभियान में जुटे रहे। उनका अथाक् श्रम और अनवरत उपक्रम किसी भौगोलिक या साम्प्रदायिक सीमा में बंध नहीं सका। वे सागर पथिक थे। 'कुलजम सागर' के महायात्री जो समान धर्मों, समान उद्देश्य के संकल्पधनी सुन्दर साथियों को साथ लेकर समान सोचवाला एक विश्व समाज बनाना चाहते थे। इसलिए मेहराज ठाकुर आरंभिक असलताओं के बाद, यहाँ तक कि राजनैतिक दुरभिसन्धियों के बाद, यहाँ तक कि राजनैतिक दुरभिसन्धियों के शिकार होने के बाद, सबको क्षमादान करते हुए - "देश, धर्म और समाज

के उत्थान के लिए हमेशा आगे बढ़ते रहें ।<sup>6</sup> इन सब में आधारभूत समन्वय ढूँढने के प्रयत्न उन्हें विश्व के अन्य महान धर्मों के आदर्शों एवं आस्थाओं, अवतारी शक्तियों और संदेशों के निकट ला दिया । इस स्वस्थ संकल्प और उदार दृष्टिकोणने उन्हें अन्योन्य धर्मों और सम्मान्य संप्रदायों से संवाद करने का अवसर भी दिया । सांप्रदायिक संकीर्णता से मुक्तिने उनकी आरंभिक कठिनाईयाँ दूर कर दी । इसीलिए सबसे पहले वे अपने ईष्ट और प्राणधार अपनी धार्मिक पहचान के साथ, परमात्म शक्ति में पूरी निष्ठा, भक्ति और प्रपत्ति को भी आत्म कसौटी पर फस लेना चाहते थे ताकि कोई बाहरी शक्ति उन्हें इस संकल्प से विचलित न कर सके । हालाँकि आर्षवाणी, गुरुपरम्परा और परवर्ती शास्त्रों के साक्ष्य से उन्होंने समस्त विश्व और इसके सभी धर्मों को एक ही विश्वनियन्ता की महान संकल्पना बताया ।

महामतिने अपने देश के लिए जो किया वो शायद ही कोई अन्य कर सकता है वे देश के लिए इतना सोचते थे कि उन्होंने अपनी पत्नी, अपने परिवार की भी परवा नहीं की । राजगदी छोड़ दी और जेल भी गए । फिर भी उन्होंने हार नहीं मानी । वे देश के लिए लड़ते रहे । आजादी के बाद भी कई धर्मों में मिथ्याचार फैला हुआ था जिसे दूर करने का बड़ा महामतिने उठाया था । औरंगज़ेब के द्वारा किये गए भारत की जनता पर अत्याचार वो देख नहीं सके और उसे उस अत्याचार से मुक्ति दिलाने के लिए उन्होने भरसक प्रयत्न किये । अपने देश को वे खरे अर्थ –सही अर्थ में स्वतंत्र देखना चाहते थे । फिर भी किसी तरह के बंधन में बंधना उन्हें पसंद नहीं था । वे अपने देश के लिए कुछ करके जाना चाहते थे । जो उन्होंने कर दिखाया ।

### **गुरुभक्ति के प्रति विचार :**

गुरु देवचन्द्रजी द्वारा प्रदत्त तारतममंत्र आज मानवजाति के लिए आत्मजागरण का अमृत संदेश है । वे समस्त मानवीय जनजीवन के आध्यात्मिक गुरु बनकर इस धरती पर अवतीर्ण हुए । उनके गुरु महिमा-मण्डित व्यक्तित्वने एक और अध्यात्मिक की चिन्मय ज्योति जलाई तो दूसरी और विश्वबंधुत्व की विराट,भावभूमि पर मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

महामतिजीने यहाँ अपने गुरुजी के माध्यम से यह कहना चाहा है कि गुरु ऐसा होना चाहिए जो शिष्य की कमियाँ दूर करके उसे शिष्यत्व प्रदान करे । कबीरजी की एक साखी यहाँ पर याद आ जाती है। उन्होंने गुरु की महिमा बताते हुए अपने विचार इस प्रकार प्रकटय किये हैं ।

"गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, गढि गढि काढै खोट।

अंदर हाथ सहार दे, बाहिर बांहे चोट ।। <sup>१९</sup>

अगर शिष्य की गुरुभक्ति सही और निःस्वार्थ है तो गुरु उन्हें जरूर परमात्मा की प्राप्ति करवाएँगे । अगर गुरु ही पथभ्रष्ट है तो अपने साथ शिष्य को भी ले डूबेगा । इसीलिए कबीरजी कहते हैं कि...

"गुरु गोविंद दोनो खड़े, काके लागु पाय,

बलिहारी गुरु आपनी गोविंद दियो बताय ।। <sup>२०</sup>

स्वामी प्राणनाथजी भी यही कहते हैं कि सच्चे गुरु से जीवन सफल हो जाता है । अपना मनुष्यावतार सार्थक हो जाता है । सच्चे गुरु के बिना हम भटकते रहते हैं ।

भारतीय साधना के क्षेत्र में 'गुरु' की अनिवार्य आवश्यकता रहती है । श्री प्राणनाथजीने भी गुरु का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है। वास्तव में उनकी आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं साम्प्रदायिक विचारधाराओं का एकमात्र केन्द्र 'गुरु' ही है । सद्गुरु की खोज, पहचान, प्राप्त, निर्देशानुसार कृत्य एवं उसमें विश्वास एवं समर्पण आदि को ही उन्होंने सभी समस्याओं का हल बताया है । सद्गुरु की कृपा से ही पूर्णब्रह्म परमात्मा के दर्शन संभव है ...

"देत दिखाई बाहेर भीतर, ना भीतर बाहेर भी नांही ।

गुरु प्रसादें अंतर पेंख्यां, सो शोभा बरनी न जाई ।। <sup>२१</sup>

अनेक तप करने पर भी सद्गुरु की शरण में जाए बिना साधक परमात्म तत्त्व का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता ।

महामति प्राणनाथजी गुरु में परमात्मा की शक्ति के कार्यान्वित होने को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार सद्गुरु ही परमात्मा के स्वरूप का वास्तविक ज्ञाता होता है ।

"सत्गुरु सोई मिले जब सांचा, तब सिंध बिंद परचावे ।

प्रकट प्रकाश करे परब्रह्म सों, तब बिन्द अनेक उड़ावे ।।<sup>१२</sup>

निर्गुण संतो के समान स्वामी प्राणनाथजीने सर्वत्र सद्गुरु की महत्ता का गान किया है और कपट्टी गुरुओं और वंचको से सावधान रहने का उपदेश दिया है । परमात्मा के गुण गाकर भक्ति को व्यवसाय का साधन बनानेवाले साधकों पर तीव्र प्रहार करते हुए वे कहते हैं केवल उसी गुरु की शरण में जाना चाहिए जो उसे परमात्मा की पहचान कराये और साधक की आत्मा को सांसारिक विषयों से विमुख कर परमात्मा की ओर उन्मुख कर दे ।

### भाषा के प्रति विचार :

सामान्य जन के दैनिक जीवन में प्रयुक्त परस्पर विचार विनिमय की भाषा जन-भाषा कहलाती है जो कि लिखित रूप से स्वभावतः भिन्न होती है । इसे प्रायः भाषा का उच्चरित रूप कहा जाता है । समस्त ज्ञान-विज्ञान दर्शन और नीति का साहित्य शास्त्र भाषा में ही लिखा जाता है ।

महामतिने भारत राष्ट्र में व्यापक, सरलतम, सर्व ग्राह्य 'हिन्दुस्तानी ' भाषा को अपनाया । भले ही उनके पर्यटनक्रम में उसमे अनेक प्रान्तीय भाषाओं और विशेष रूप से राजभाषा फारसी, अरबी शब्दों को बाहूल्य दिखाई देता है । सुखद आश्चर्य का विषय है कि उन्होंने अनेक भाषाओं में प्रकटित वाणी को लिपिशब्द करते हुए देवनागरी लिपि को माध्यम बनाया । सहज 'हिन्दुस्तानी की भाषा' के लिये उनके उद्गार देखिए ...

"बिना हिसाबें बोलियाँ, मिने सफल जहान ।

सबसे सुगम जानके, करूँगी हिन्दुस्तान । ।

बड़ी भाषा एही भली, जो सबमें जाहेर ।

करने पाक सबन को, अन्तर मांहे बाहेर ।।<sup>१३</sup>

इस अतः साक्ष्य के आधार पर यही कहा जा सकता है कि महामति की भाषा 'प्रत्यक्ष' भाषा रही है । अपने आशय को सरल से सरल स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त करना उनका प्रमुख उद्देश्य रहा है ।

महामतिजी की मातृभाषा गुजराती थी । प्रारंभिक चार ग्रन्थों की भाषा गुजराती है लेकिन उनकी भी लिपि देवनागरी ही है किन्तु जब उन्होंने समस्त भारत को सम्बोधित करने का संकल्प लिया तो उन्हें सबकी सांझी भाषा हिन्दी ही उचित जान पड़ी ।

"बोली जुदी सबन की, और सबका जुदा चलन ।

सब उरजे नाम जुदे घर, पर मेरे तो कहना सबन ।।<sup>१४</sup>

वे धर्म प्रचारार्थ भारत के अनेक स्थलों पर गए और जहाँ भी गए वहाँ की भाषा के शब्दों को यथा-संभव अपनाकर जनता को उपदेश दिया । इस प्रकार उन्होंने अपनी भाषा को लोक स्तरपर उतारा और हिन्दी भाषा को व्यापक दृष्टिकोण दिया ।

महामति द्वारा विभिन्न भाषाओं का नागरीलिपि में लिखने के प्रयास के संबंध में डॉ. भोलानाथ तिवारी का कथन है कि "एक बात जो देखने मात्र से भारत को इनका ऋणी बना देती है वह यह है कि इतनी भाषाओं में कही "वाणी" एक ही नागरी लिपि में लिखी गई । राष्ट्रीय एकता के लिए उनके द्वारा उठाए महान कदम पर कदम रखकर हम चल न पाए । नहीं तो भाषा द्वारा देश के बँटवारे से हम बच जाते ।<sup>१५</sup>

**हिन्दी के प्रति विचार :**

महामतिने अपनी भाषा को 'हिन्दुस्तानी' नाम दिया। श्री प्राणनाथजी की हिन्दी 'हिन्दुस्तानी' अथवा हिन्दवी का ही विकसित रूप है, जिसे सही बोली कहा जाता है । उन्होंने खड़ीबोली के माध्यम से जनता को उच्चकोटि का विपुल धार्मिक साहित्य प्रदान किया। उसमें खड़ीबोली का प्रारंभिक तथा विकासशील दोनों ही रूप बड़ी मधुरता एवं सरलता से मुखरित हुए हैं ।

आजकल खड़ीबोली भारत की राष्ट्रभाषा हो गई है इसलिए इसका रूप व्यापक हो गया है । इसलिए वे कहते हैं कि...

"सबको प्यारी अपनी, जो है कुल की भाख ।

अब कहूं भाषा में किनकी, यामें भाषा तो कै लाख ।।<sup>१६</sup>

इस अवतरण में महामति इस बात को स्वीकारते हुए कहते हैं कि किसी को भाषा और कुल में प्रचलित बोली प्यारी लगती है और ऐसी लाखों बोलिया हो सकती हैं। इसी तरह असंख्य मत-मतान्तर, रीत-रिवाज हैं-जिनमें सारी दुनिया उलझी है। हम बेहिसाब बोलियों के बीच मुझे हिन्दी में ही अपनी बातें रखनी हैं क्योंकि यह भाषा सहज और सुगम हैं ।

महामतिजी को हिन्दु के साथ-साथ हिन्द के मुसलमानों को भी हिन्दी में ही संदेश देना था ।

हिन्दी भाषा संबंधी महामतिने अपने विचार के अनुसार सर्वजन सुलभ हिन्दी को ही व्यापक स्तर पर अपनाया । शब्द भंडार चाहे किसी भी भाषा का हो किन्तु उसकी सहज अभिव्यक्ति में रूप रचना के प्रत्यय हिन्दीभाषा की ही है जो कि प्रादेशिक विभिन्नता से प्रभावित है । उनकी हिन्दी भावों को वहन करने में पूर्णतः सक्षम रही है । उनके विचार गंभीर होते हुए भी सहज और बोधगम्य है । व्याकरण संबंधी किसी भी प्रकार का बंधन उन्हें मान्य नहीं रहा । उनकी प्रमुख विशेषता यह रही है कि उन्होंने जगत का तटस्थ भाव से परखकर उसका सही रूप प्रस्तुत कर दिया ।

वस्तुतः शब्दों के चयन एवं प्रयोग में महामति प्राणनाथने किसी भाषा विशेष की वर्तनी एवं विन्यास की कैद को भी नहीं स्वीकारा । सहज और अनुकूल भावाभिव्यक्ति के लिए जिस समर्थ शब्द या भाषा की आवश्यकता पड़ी, उसका उन्होंने मुक्त मन से प्रयोग किया । उनके विचार में धर्म, धर्म ग्रन्थ एवं भाषा पर किसी व्यक्ति, विचारधारा, जाति या संप्रदाय एकाधिकार नहीं । उन पर सबका समान अधिकार है । इन सबको वे संकीर्ण दायरों से बाहर निकाल लाए ।



## ईश्वर की एकात्म-भावना के विचार :

महामति कहते हैं कि वे सारे धर्मों को एक कर देंगे । वे लिखते हैं कि, निष्कलंक बुधावतार और इमाम महेदी (प्राणनाथजी) आकर एक रस करेंगे अर्थात् वेद, उपनिषद, गीता और भागवत, कुरान हंजील सारे धर्म ग्रंथों का सार लेकर एक ही मार्ग बताएँगे । पूर्व में हिन्दु और पश्चिम से आए मुसलमान सभी धर्मों के माननेवाले उनके वश में आ जायेंगे और ईश्वर की एकात्म भावना को स्थापित करेंगे । हिन्दु और मुसलमान दोनों पूछते हैं कि क्या ये एक ही समय आयेंगे ? महामति उसका भी निर्णय किये देते हैं । ज्योतिषशास्त्र कहता है कि विजयाभिनंदन निष्कलंक बुधावतार लेकर कलियुग-आसुरी प्रवृत्तियों का संहार करेंगे । इंजील में लिखा है कि महान ईसा दोबारा आकर ईश्वरीय राज्य स्थापित करेंगे । यहूदी कहते हैं कि मुसा के हाथों सभी की मुक्ति होगी । सबने अपनी अपनी बात पकड़कर अलग चलन बना लिया लेकिन सबने ईश्वर की प्रशंसा की...

"आए के करसी एक रस, मसरक मगरब होसी बस ।

कोऊ केहेसी क्या दोऊ होसी एक बेर, तिनका भी कर देऊ

जोतिष कहे विजयाभिनंदन, सब कलजुग को करसी निकंद ।।

अंजीर कहे ईसा बुजरक, सो आए के करसी इक ।

यहूद कहें मूसा बड़ा होए, ताके हाथ छूटें, सब कोय ।

यों सारों ने रसम जुठी कर लई, सब बुजरगी धनी कीकही ।।<sup>१७</sup>

महामतिजी आगे कहते हैं कि समस्त धर्मों के माननेवाले अलग-अलग नाम रखकर आपस में ही उलझे हुए हैं । समस्त ब्रह्मांड के स्वामी अंतिम युग में पधार चुके हैं । उन्होंने सबको उनके धर्म ग्रंथ और भाषा में समझा दिया है कि अब कोई भी एक दूसरे से अलग नहीं रह गया । संसार के सारे धर्मग्रंथों ने उनके आगमन की साक्षी दी हैं । अलग धर्मग्रंथों और उनकी और अलग भाषाओं में एक ही सत्ता को विभिन्न नाम देकर उनके आगमन की घोषणा की है । तारतम ज्ञान से सद्गुरु ने सत्य-असत्य को अलगकर दिया है । माया और ब्रह्म की सही पहचान करा दी । पूर्व और पश्चिम, हिन्दु-मुसलमान दोनों में कर्मकाण्ड

और शराब के कारण झगड़ा बढ़ता चला गया था । दोनों परस्पर उलझे रहे थे । प्राणनाथ स्वामीजी ने धर्मग्रंथों का यथार्थ और आध्यात्मिक ज्ञान प्रगटकर दिया । उन्होंने आसमान, और धरती-सार संसार को दुई या द्वैत के अज्ञान से मुक्त करके निर्मल बना दिया ।

यों उरझे जुदे नखाम धरा, रब्ब आलम का आया आखर । अपनी-अपनी समझे सब । जुदा न रह्या अब । सब किताबों दर्ई साख । जुदे नाम जुदी लिखी भाख । सत् असत् दोऊ जुदे किये । मायाब्रह्म चिन्हाएके दिए । दोनों जहान में थी उरझन । कर्मकांड शरियत चलन ।<sup>१९</sup> करी हकीकत मारफत रोशन । साफ किये आसमान घरन ।

महामति कहते हैं कि रसूल सह उल्लाह (आनंद, अंग श्यामा देवचंद्रजी) और इमाम महेंदी (प्राणनाथजी) इन तीनों को कुरान में एक ही स्वरूप कहा गया है । कुरान में इन्हें शरियत का ज्ञान देनेवाला, हकीकत बयान करनेवाले और संपूर्ण पहचान देनेवाले सभी स्वरूप परमात्मा के प्रेम का अमृत पिलानेवाले हैं ।

सारी दुनिया को एकरस करने के बारे में महामति कहते हैं कि कतेब ग्रंथों में लिखा है । ईसा रूह उल्लाह (देवचंद्रजी) दुनिया में चालीस वर्ष तक राज्य करेंगे जब सारी दुनिया एकरस हो जायेगी । मुहम्मद साहब के बाद की ग्यारहवीं सदी के अंतिम दस वर्षों में ब्रह्मात्माओं का जागरण होगा । बारहवीं सदी के प्रारंभिक तीस वर्षों में समस्त संसार के लिये बहिश्तों परमधाम के द्वार खोल दिये जायेंगे । महामति का यश परमधाम चारों ओर फैल जायेगा (जब ईसा रूह, अल्लाह ने दूसरे जामे में होकर (महामति) ने राज्य किया) ।

तारतमणवाणी से अखण्ड, परमधाम (बहिश्त) का आनंद चारों तरफ प्रगट और प्रसारित हुआ । इस आनंद को प्राप्त करने के लिये सारी दुनिया के लोग भाग-भाग कर आने लगे । उन सबके अलग-अलग वर्णवेश छुट गए । सारे मानवों का एकरस होना यही है...

"फरसी राज चालीस बरस । सब जहान होंसी एकरस । ।

साहेबी उमत की साल दस । पीछे चौदे तबकों बाढ़यों जस । ।

अखंड भिस्त इस जाहेरी । होए रोसन सबमें बिसारी ।।

दुनिया दौड़ मिली सब धाए । छूट गए बरन भेख ताए ।।<sup>२०</sup>

उन्होंने इसबात को बार-बार दुहराकर कहा है कि ईश्वर एक है – जिसे विभिन्न धर्मों के अनुयायियों ने अलग-अलग नाम रख दिये हैं । उन्होंने सारे धर्मों की मूलभूत एकता पर जोर देकर उनके बीच संघर्ष की स्थिति को समाप्त करने हेतु प्रयत्न किया ।

**देश की जनता में सद्भाव के विचार :**

महामति प्राणनाथ जानते थे कि प्रत्येक धर्म के मूल पुरुषों की शास्त्रों में या धर्म ग्रंथों की एकता स्थापित किये बिना सद्भावना केवल एक खोखला नारा मात्र रह जाती है । वे अपने दर्शन को धर्म ग्रंथों या शास्त्रों के सद्भाव को देश की नींव पर खड़ा करना चाहते थे । इसीलिए उन्होंने समस्त धर्मों के धर्म ग्रंथों के विद्वतापूर्ण, उदार, मौलिक एवं आध्यात्मिक सद्भाव पर बल दिया । धर्म ग्रंथों की इतनी व्यापक भूमिका के साथ समन्वय महामति की देन है । महामति धर्म के कारण बनाई गई सीमाओं को तोड़कर धर्म का वह रूप दिखाते हैं जिसमें सभी धर्म समाहित हो गए ।

आध्यात्मिक महोत्सव साधकों के शाश्वत प्रेम एवं समर्पण का अनिवार्य अंग था, जो शास्त्रीय या साम्प्रदायिक धरातल से सर्वथा अलग, मानवीय और व्यावहारिक आधार लिये था । अपने संकल्प के अनुरूप, जब महामति इस ऐतिहासिक दायित्व को व्यावहारिकता प्रदान करते हुए आगे बढ़े तो इस कार्य में, जैसा कि स्वाभाविक ही था, उन्हें तत्कालीन मुगल बादशाह औरंगज़ेब से टकराना पड़ा, जो इस्लाम और शरियत का जरूरत से ज्यादा पाबन्ध था । वह विभिन्न धर्मों में सद्भाव स्थापित करनेवाले अपने भाई दाराशिकोह के द्वारा धार्मिक सद्भाव के लिए किए जा रहे प्रयासों से क्षुब्ध तो था ही, स्वभावतः उसे मंदिर, देवल आदि ढहाने-जैसी बातें तनिक भी विचलित नहीं करती थी । वह इस्लाम या शरा के विरोध में एक शब्द भी सुनने को तैयार न था । लेकिन महामति के साथी, उनके बारह 'मोमन' (पुण्यात्मा) शिष्य अपनी जान की परवाह किए बिना कभी जामा मस्जिद की नमाज

के वक्त तो कभी लाल किल्ले की दीवारों के पार से 'अल्लाह' और ईश्वर को समान घोषित करनेवाली आयातों और श्लोकों का पाठ ऊँचे स्वर में करते रहते थे ताकि ऊँचा सुननेवाली तत्कालीन सत्ता और सरकार के कानों तक उनका अनुरोध पहुँच सके । वे सुरपुत्र (हिन्दु होते हुए भी असुरों, हिन्दु ईतर) की सेवा में जुटे हुए थे और खुद अपने मन्दिर ढ़हा रहे थे ...

"सुर ने केहेलाए रे सेवा करे असुर की,  
जो दारूबाए उड़ावे देहुर ।  
हिन्दु नाम रे सेन्या तिनकी हो खड़ी,  
ऐसा कुलिऐँ किया रे केहेर । । २१

यहाँ उन ऐतिहासिक संदर्भों का उल्लेख करना भी आवश्यक जान पड़ता है, जिसने भारत में हिन्दु एवं मुसलमान के परस्पर सद्भाव में बहुत बड़ी भूमिका निभाई । हमारी भारतीय चिन्तन परंपरा औरंगज़ेब के बड़े भाई दाराशिकोह (१६१५-१७०९) को किसी शाहजहाँ के शाहजादे से ज्यादा, एक रहस्यावादी दार्शनिक के रूप में याद करती हैं । उसके जीवन का महान स्वप्न धार्मिक सहभाव और सद्भाव उसकी बर्बतापूर्ण और अकाल हत्या के कारण पूरा न हो पाया । वह स्वप्न था - सारे धार्मिक विश्वासों, आस्थाओं, विश्व की समस्त प्रजातियों और संस्कृतियों और मानवता की एकता का ।<sup>२२</sup> लेकिन वह समन्वयपूर्ण दृष्टि विभिन्न संप्रदायों तथा धार्मिक मतवादों के आपसी विवाद विरोध और टकराव में खो गई । शाहज़ादा दाराशिकोह, अपने कवि मित्र चन्द्रभानु से अकसर हिन्दु-मुस्लिम के धार्मिक एकत्व की चर्चा करते रहते थे । वे जानते थे कि उनकी यह बात जामा मस्जिद के उलेमाओं के गले नहीं उतरेगी । दाराशिकोह का मानना था - ईश्वर, प्रत्यय, प्रकृति, ज्योति, ग्रह नक्षत्र आदि की आधारभूत अवधारणाओं के बारे में हिन्दू-मुसलमान की सोच में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है । उनके अनुसार कुरान में जिस गुप्त ग्रन्थ का उल्लेख है - वह है वेद ! हालाँकि ऐसा कहते हुए दारा को इस बात की आशंका थी कि धर्मान्ध मुसलमान उनके इस विश्वास पर ध्यान न देंगे । और उन्हें दोषी या काफिर ठहराएँगे ।<sup>२३</sup> लेकिन वे तौहीद -

एकेश्वरवाद के पक्ष में अपने तर्क और तथ्य जुटाते रहे । उनकी यह धारणा थी कि कुरान में नील नदी की दो शाखाएँ बताई गई है – बहेर-उल-आवयाद और बहेर-उल-आसवाद । एक सफेद है तो दूसरी नीली । यह खार्तुम में आकर मिल गई हैं । इस मुहाने का नाम है मजम-उल-बहरीन । दारा का मानना था कि यह हिन्दुस्तान की हिन्दुओं और मुसलमानों का मुहाना है । यही मजमा-उल-बहरैन है । हिन्दु और मुसलमान दोनों के धर्म अल्लाह के पास जाने का एक ही रास्ता बताते हैं और कहते हैं ईश्वर एक है और उससे बड़ा कोई नहीं । दाराशिकोह ने मजमा-उल-बहरीन (रचनाकाल ई.१६५६) में ब्रह्मविद्या और अल-कुरान की परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाली धाराओं को मिलाना चाहा था । जो ब्रह्म है, वही खुदा है – अलग-अलग नाम में क्या रखा है ? महामति भी यही कहते हैं ।

महामति की मान्यता यह रही है कि ईसा और मुहम्मद भी सर्वथा पूज्य हैं । वे दोनों कालान्तर में ईसा (रूह अल्लाह) और आखिरी मुहम्मद (इमाम मेहदी) के रूप में प्रकट हुए । चूँकि तीनों स्वरूप एक ही शक्तिपूँज (पूर्ण ब्रह्म के तेजांश) से संयुक्त हैं।... इसलिए वे एक समान सम्माननीय और सपूज्य हैं ।

"श्री ठकुरानी रूह अल्लाह, मोहम्मद कृष्ण श्याम ।

सखियाँ रूहें दरगाह की, सुरत अक्षर फिरस्ते धाम । २४

### देश की एकता के प्रति विचार :

सद्गुरु निजानन्द स्वामी देवचन्द्रजी अपने जीवन में प्रथम चालीस वर्ष तक इन तथाकथित संप्रदायों की अन्दरूनी कमजोरियों और विकृतियों के कारण हो रही सामाजिक दुर्गति एवं अधोगति से परिचित थे । उनसे आदेश एवं प्रेरणा पाकर मेहराज ठाकुरने अपने समय और समाज का निकट से जानने की चेष्टा की और आरम्भिक असफलताओं के बाद और महामति पद पाने के बाद धर्म, देश एवं समाज को समन्वय का स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान किया । उन्होंने सभी धर्मों का विश्वनियन्ता की महान संकल्पना का अंग बताकर समस्त मानव समुदाय के लिए एक ही धर्म की एकता की कल्पना की । यही नहीं, उन्होंने सभी धर्मों के आदर्शों एवं सिद्धांतों में भी ऐक्य दिखाने का सफल प्रयास किया । उन्होंने धर्म

का मूल संकल्प प्रकट कर उसका सत्य और परमात्मा का शुद्ध स्वरूप दिखाने का प्रयत्न किया.....

"जो कछु कह्या कतेबने, सोई कह्या वेद ।

दोऊ बन्द एक साहेब के, पर लड़ते बिना पाये भेद ।<sup>२५</sup>

धर्म को साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से मुक्त कर उसे व्यापक अर्थ एवं आशय प्रदान करना महामति का उद्देश्य रहा । उन्होंने देश को एकता में बांधने के लिए साम्प्रदायिक मतभेद, वर्ण -वर्ग और भाषाई पार्थक्य और मूल्यों में अनावश्यक विवाद एवं टकराव हो ही नहीं ।

भारत आरंभ से ही, धार्मिक-उदारता, सहिष्णुता और विभिन्न उपासना पद्धतियों को सम्मान देता रहा है । धर्म के नाम पर यहाँ उस तरह के युद्ध या जेहाद के बारे में कभी सोचा तक नहीं गया जैसा कि ईसाई मतावलम्बी देशों और इस्लामी कौमों के बीच होता रहा है । सत्य के प्रवक्ता एवं प्रतिष्ठाता महामति लोगों में जाग्रति पैदा कर, संसार, जगत, देश में 'ईश्वरीय राज्य' लाना चाहते थे । अपने जीवनकाल में उन्होंने भारत तथा पश्चिमी एशिया के देश अरब और इराक आदि देशों का भ्रमण किया था । उस समय के प्रचलित धर्मों , साधना-पद्धतियों एवं संस्कृतियों को उन्होंने बड़े करीब से देखा था । उन्होंने सभी उपासना पद्धतियों में एकता, एकात्मकता और समानता के सूत्रों को खोजकर मानवधर्म एवं विश्वशान्ति का आह्वान किया था, जिसकी स्पष्ट झलक उनके व्यक्तित्व एवं वाङ्मय में विद्यमान है ।

मानवीय संकट को महामतिने अपने समय का सबसे बड़ा सवाल समझा था और स्पष्ट तौर पर व्यक्ति को, समाज को और राष्ट्र को सारे दिगन्त, एक नया शिखर प्रदान करना चाहते थे।

"ए कहती हूँ प्रकट, ज्यों रहे न संसे किन ।

खोल माए ने मुसाफ के, सब भाने विकल्प मन ।।<sup>२६</sup>

महामति एक ऐसा सीमाहीन समाज और राज्य बनाना चाहते थे, जिसमें हिन्दु हो मुसलमान-सत्य का आराधक ईश्वर-भक्त या खुदा का एक-एक हिन्दुत्व और ईस्लाम ही नहीं, बल्कि किसी भी धर्म की कसौटी पर खरा उतरे। गीता-पुराण ही नहीं, कुरान और अंजील (बाईबल) तथा जबूर और तौरत धर्म ग्रन्थों को भी एक दूसरे धर्म के माननेवाले पर्याप्त आदर की दृष्टि से देखें और उन्हें अपने सदाचरण का एक हिस्सा बनाएँ। महामति की मूल प्रेरणा यह रही है कि अलग-अलग भेष, भाषा, स्थान, जातिगत रूढ़ियों पहचान और मान्यताओं के बावजूद सभी एक हैं। सबका आराध्य और काम्य एक ही है।<sup>२७</sup> इसलिए एक ही मूल से पृथक हुए, अपनी-अपनी भौगोलिक सामाजिक, सांस्कृतिक और सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक पहचान के बावजूद, सबको पूरी स्वतंत्रता पाने का अधिकार है और इसलिए विरोध और विवाद नहीं, बल्कि परस्पर विश्वास, प्रेम और संवाद ही देश की एकता में जोड़ सकता है और यह सबसे महत्वपूर्ण मंत्र और मंच है।<sup>२७</sup> उन्होंने एकता की अनिवार्यता पर जोर दिया है। यह व्यापक विनियोग एवं बहु-सांस्कृतिक समाज की दृष्टि से कितना उपयोगी और क्रान्तिकारी है, इसे आज सहज ही समझा जा सकता है।

### **अंधश्रद्धा, आडम्बर, छूआछूत का विरोध :**

महामतिने अपने समय के समाज की प्राथमिक अनिवार्यता के अनुरूप धार्मिक सामाजिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता की जोरदार वकालत की थी लेकिन वह निरंकुश या विवेकशून्य नहीं थी। उन्होंने धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वास, छूआछूत समाज में व्याप्त कुरृतियों को दूर करने के लिए उन्होंने आस्थावानों का समर्पित जत्था भी 'सुन्दर-साथ' की संज्ञा से तैयार किया था जो उनकी सफल सामाजिक संगठन क्षमता का द्योतक था। इसमें हिन्दु धर्म के विभिन्न पन्थों और विश्वासों के लोग समत्व भाव से सम्मिलित हुए तथा महामति के जागनी अभियान के ध्वज, आदर्श और मशालवाहक बने।

महामति जानते थे कि जागनी का लक्ष्य कोई 'सोई हुई कौम' नहीं प्राप्त कर सकती। यह कायरों का नहीं – सिंह सायरों का सक्षम समुदाय है और समर्पित साधकों के संकल्प से दीप्त उपस्थिति हैं। वे कहते हैं कि...

"अंग दिए बिना आवेस, नहीं उपजे प्रेम उपाए ।

आवेस दे करू जागनी, लेऊ अंग में मिलाए ॥

अब दुःख आवे तुमको, तहाँ आड़ा देऊँ मेरा अंग ।

सुख देऊँ भाँत होन जो होय न बीच में भंग ॥ २८

महामति प्राणनाथ की अमृतवाणी (तारतमबानी) में विश्व की प्रतिनिधि धार्मिक अवधारणाएँ एकाकार हो गई हैं । उनके अनुसार, किसी भी धर्म का बीज-मन्त्र और मर्म व्यष्टि-केन्द्रित नहीं – समष्टि में समाहित होता है । विश्व की विभिन्न धर्म –संस्कृतियों को एक समान पूज्य और मान्य बताते हुए भी, उन्होंने इन सबकी अन्तरंग अन्विति, अनुरोध और इनमें निहित मूल आशय पर विशेष बल दिया । सामाजिक नवोत्थान के साथ धार्मिक ऐक्य और समूहों के लिए स्वतंत्र व्यक्ति चेतना के लोक-समर्पण को, अभिषेकपूर्ण विसर्जन को – इस नई आध्यात्मिक क्रान्ति को – उन्होंने 'जागनी' नाम दिया ।

महामतिने अनावश्यक रूढ़ियों एवं थोथी मान्यताओं के कट्टर अनुपालन से ही धार्मिक विभेद और विलगाव की कुप्रवृत्तियों को तोड़ने का प्रयत्न किया । महामति हिन्दु और मुसलमान दोनों ही धर्म के अनुयायियों से इस अंधश्रद्धा और कूपमंडूकता को छोड़ने का आग्रह करते हैं...

पारस्परिक कलह, द्वेष और छुआछूत, वैमनस्य को दूर करने के लिए महामति जन्म-मरण की पहली और आखिरी सच्चाईयों से दोनों को प्रबोद्ध देते हैं ।

"ब्राह्मण कहे हम उत्तम, मुसलमान कहे हम पाक ।

दोरू मुट्ठी एक ठौर की, एक राख दूजी खाक ॥ २९

"मिलाप हुआ जब मेहदी से, तब कहा महामति नाम ।

अब मैं हुई जाहेर, देख्या वतन बका धाम ॥ ३०

महामति प्राणनाथने छुआछूत और ऊँचनीच के भेदभाव को मिटाने के लिए गुरु पुत्र बिहारीजी का भी विनम्र विरोध किया । उन्होंने विधवा स्त्री को सुंदर साथ में सामिल कर के



दिक्षा दी । उन्होंने इसलिए विरोध किया था कि संस्थाश्रित या साम्प्रदायगत रूढ़ियों का अनुपालन उनके स्वभाव में न था, इसलिए भी कि वे किसी राजा या राजकाज के साथ नहीं बल्कि व्यापक समाज के साथ जुड़ना चाहते थे । संघर्ष और उत्कर्ष दोनों ही क्षेत्र में महामतिने अपने उदात्त स्वर में क्षत्रियोचित आह्वान करते हुए, जातीय नवोत्थान और स्वधर्म के स्वाभिमान के लिए अपना तन-मन अर्पित कर दिया ।

**मानवमात्र के प्रति सहानुभूति के विचार :**

एक विश्वधर्म की अवधारण केवल सिद्धांत ही नहीं थी बल्कि महामतिने इसका कार्यान्वयन भी किया । इस समय यातायात के साधनों की कमी के कारण महामति का एक विश्वधर्म की स्थापना के लिये सारे विश्व में प्रचार करना संभव नहीं था । लेकिन भारतवर्ष के सीमित क्षेत्र में उन्होंने धार्मिक और सामाजिक एकता के लिए यथासंभव प्रयास किये ।

हिन्दू-मुस्लिम की एकता मध्यकालीन भारत की सबसे बड़ी समस्या थी और वह आज भी है । इसके लिए भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ ही प्रयास हो गए थे । विकृत और भ्रष्ट भारतीय सामाजिक परंपराओं और सांस्कृतिक गतिविधियों पर कबीर, नानक, दादू आदिने जो मर्मन्तक प्रहार किया उसकी अगली कड़ी महामति प्राणनाथ हैं ।

महामति के पहले कबीर, नानक, दादू जैसे संत कवियोंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात की थी और इसके लिए उन लोगों ने भरसक प्रयास भी किये थे । लेकिन इन संत-कवियों से आगे बढ़कर महामतिने अपना सारा जीवन इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये समर्पित कर दिया था । महामति इस बात को बहुत अच्छी तरह से समझते थे कि हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य भारतीय समाज के लिए कलंक है और जैसा कि वह आज भी है इसीलिये उन्होंने इन दोनों धर्मों के अनुयायियों में एकता और सहिष्णुता की भावना जागृत करने का प्रयास किया । यह समय की मांग थी कि दोनों के झगड़े खत्म करके दोनों में एकता स्थापित की जायें जिससे भारत में शांति का स्थायी वातावरण स्थापित हो ।

जब महामतिने औरंगज़ेब को समझाने का प्रयत्न किया और उन्हें सफलता नहीं मिली, तब भी वे निराश नहीं हुए। उन्होंने उसके विरुद्ध विशाल जनमत तैयार करने की योजना बनाई। वे भारतवर्ष के बहुत सारे हिन्दु राजाओं के पास गए किन्तु किसी में भी औरंगज़ेब का विरोध करने का साहस नहीं हुआ। अंत में बुंदेलखंड में महाराजा छत्रशाल से भेंट हुई। जहाँ महामतिने हिन्दुओं पर औरंगज़ेब के धार्मिक अत्याचारों का उल्लेख किया। अंत में वे कहते हैं छत्रशाल बुंदेलाने जब यह ललकार सुनी तब वह तलवार लेकर सबसे आगे खड़ा हो गया। उसने महामति की सेवा और हिन्दु धर्म की रक्षाका भार अपने सिर ले लिया। स्वामीने प्रसन्न होकर उस महान सेनानायक सम्राट का अभिषेक किया...

"बात ने सुनी रे बुंदेले छत्रशालने, आगे आये खड़ा ले तलवार।

सेवा ने लई रे सारी सिर खँच के, साँइये किये सैन्यायित सिरदार।।<sup>३१</sup>

छत्रशाल उस समय तक साधारण सामंत थे किन्तु उनके साहस और देशभक्ति को देखकर प्राणनाथजीने उन्हें राजशक्ति, लोकशक्ति, हीरों की खाने और एक आध्यात्मिक शक्ति प्रदान की। महामतिने सारे बुंदेलखंड में राजनैतिक चेतना का बिगुल बजा दिया और छत्रशाल को एक महाराजा बनाकर उनका राजतिलक किया। इस प्रकार सच्चे अर्थों में उनके पथ-प्रदर्शक, धर्मगुरु बन गए। उन्होंने उनके सभी कार्यों को आध्यात्मिकता प्रदान की और छत्रशालने भी मानवामात्र के प्रति सहानुभूति प्रकट की।

### **कबीरजी के साहित्य में विविध विचारों का प्रवाह :**

(कबीरजी के जीवन-काल में भारत को हिन्दु और इस्लाम धर्म के ठेकेदारोंने भोली-भाली जनता में पाखण्डी प्रचार और अंधविश्वास तथा धर्म के बाह्याङ्गम्वरों के जल फैलाने को गुढ़ बनाया हुआ था। )

मनुष्य जगत का सबसे विवेकशील प्राणी है। इसी कारण वह सृष्टि के अन्य प्राणियों से न केवल श्रेष्ठ है बल्कि अलग भी है। इन्द्रियबोध, भाव और विचार मनुष्य और पशु दोनों में विद्यमान है, किन्तु मात्र प्रसार और परिष्कार की दृष्टि से उनमें काफी अन्तर है

। उनके बीच सबसे भेद का अन्तर विचारों के क्षेत्र में हैं । मनुष्य के पास विचार करने की अद्भूत क्षमता है । जब कि पशु के पास इसका अभाव है । मनुष्य अपने और पराये दोनों के बारे में सोचने की क्षमता रखता है जब कि पशु खासतौर से अपने और अपनों के बारे में...

"यही पशु-प्रवृत्ति है जो आप आप ही चरे ।

वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे ।।<sup>३२</sup>

– मैथिलीशरण गुप्त

यानि मनुष्य की मनुष्यता इसी सोच के नाते कायम है । मनुष्य की सोच का दायरा अपने से लेकर विश्व तक फैला है जबकि पशु की सोच का दायरा अपने से लेकर अपने पालनेवाले तक । इस प्रकार पशु की तुलना में मनुष्य का ज्ञान प्रसार अधिक व्यापक एवं गहरा है । इतना ही नहीं बल्कि वह अधिक परिष्कृत और समृद्ध भी है । मनुष्यने अपने ज्ञान का प्रसार और परिष्कार अपने लम्बे सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के तहत किया है जब की पशु में इस नाम की चीज ही नहीं है ।

सामाजिक जीवन की विकासयात्रा में मनुष्य के विचार, उसके इन्द्रियबोध और भावबोध की तुलना में तेजी से बदलते रहते हैं । पैदावर के तरीके और मनुष्यों के परस्पर आर्थिक संबंधों से इनका गहरा संबंध होता है । यही कारण है कि शेक्सपियर और तुलसीदास के अनेक विचारों से सहमत न होकर भी पाठक उनके साहित्य में रस लेता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि साहित्य में विचारों की भूमिका नगण्य है या उसका सौन्दर्य इन्द्रियबोध और भावों पर ही निर्भर हैं । साहित्य में मनुष्य के विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका है और इसलिए स्थापत्य, शिल्प, चित्रकला, संगीत से उसका स्थान ऊँचा है ।<sup>३३</sup> इस प्रकार जीवन में ही नहीं, बल्कि साहित्य में भी विचारों का महत्व असंदिग्ध है ।

'विचार' शब्द अंग्रेजी के 'चोट' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है । इसका अर्थ है बुद्धि-व्यापार, सोच-विचार, चिन्तन-विचार, ख्याल, धारणा, राय, मत, दृष्टिकोण, अभिप्राय

या विचारधारा ।<sup>३४</sup> कार्लमार्क्सने विचारधारा (*Ideology*) शब्द का प्रयोग 'कला' (*Art*) के संदर्भ में किया है । उनकी दृष्टि में कला, जिसके भीतर साहित्य भी है, विचारधारा का एक ही रूप (आईडियोलोजिकल फार्म ) हैं ।

जिस दिन महात्मा कबीर का आविर्भाव हुआ उस दिन देश में विविध प्रकार की धार्मिक मान्यताएँ प्रचलित थी । लोग इन मायाजाल में आबद्ध थे । सर्वत्र असत्य और मिथ्यावाद से और उनकी प्रतिक्रियाओं से प्रभावित होकर ही अवतीर्ण हुए थे । बाह्याङ्गम्वरों और असत्य के प्रति तिरस्कार था और क्रान्ति की यह भावना कबीर के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है । कबीरजी की वाणी सदियों से हमारे मन और विचारों को मथते रहे हैं कि हमें अन्याय, अत्याचार, धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक कुरूपियों से संघर्ष करने की प्रेरणा देते रहे हैं । आज भी उनके विचार उनका चिन्तन, जीवन-दर्शन उतना ही प्रामाणिक एवं प्रासंगिक है जितना उनके अपने युग में था ।

**सतगुरु को अंग के बारे में कबीरजी के विचार :**

"मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव ।

मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य भाव ।।<sup>३५</sup>

गुरु स्वरूप को ध्यान करने पर किसी ध्यान की आवश्यकता नहीं होती और गुरु चरणों की पूजा के अनन्तर दूसरी पूजा की आवश्यकता नहीं होती । इसी प्रकार गुरु वचन को हृदय में धर लेने पर दूसरे नाम को उसमें धरने की जरूरत नहीं होती और अपने भाव को सत्य बनाने पर सत्य को ढूँढने की जरूरत नहीं होती । यस्य देवे परा भक्तियथा देवे तथा गुरौ तस्यैते कथिता ह्यर्था : प्रकाशन्तै महात्मनः" श्वेताश्वरे के इस वचन के अनुसार गुरुभक्ति से शून्य मुक्ति का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता । क्योंकि मुक्ति के मंदिर की कुंजी सद्गुरु के पास है । बिना उनकी कृपा से उसका मिलना असंभव है । इसीलिए यह कहा गया है कि "तद् विज्ञानार्थं गुरुमेवाभि गच्छेत्" अर्थात् परमार्थ तत्त्व को जानने के लिये अधिकारी को गुरु की शरण में ही जाना चाहिए । गीता में भी यह स्पष्ट कहा गया

है कि... "तदिधि प्रणियातेन परिप्रशनेन सेवया उपदेक्ष्यति ते, ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शि नः"। उस तत्त्व को जानने के लिये गुरु को प्रणाम करो, उसकी सेवा करो और विनयपूर्वक उनसे पूछो ऐसे आचरण से प्रसन्न होकर सद्गुरु तुमको मुक्ति तत्त्व का उपदेश देंगे । इत्यादि श्रुति और स्मृतियों के वचनों के आकलन से स्पष्ट है कि, गुरु की पूजा और ध्यान मुक्तिप्रद होने के कारण अन्य देवताओं की पूजा और ध्यान से श्रेष्ठ है । इसी प्रकार गुरु का सत्योपदेश नाम स्मरण से अधिक फलदायी होने के कारण आवश्यक ग्राह्य है ।

"सतगुरु मारा बान भरि, डोला नांहि शरीर ।

कहु चुंबक क्या करि सकै, सुख लागै वही तीर । । ३६

"सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर ।

नाम ' अकेला रहि गया, चित्ता न आवै और । । ३७

सतगुरु के उपदेश को सुनते ही चित्त स्थिर हो गया । संसारी लोग उसे बहुत कुछ अपनी ओर खिंचना चाहते हैं, परंतु वह आनन्द के सागर को छोड़कर जाना नहीं चाहता ।

मेरे हृदय की आसक्ति को पहचान कर सद्गुरु ने ऐसा पूरा उपदेश दिया कि शिक्षा से हटके दूसरी ओर चित्त नहीं जाता ।

"सतगुरु तो सत भाव है, जो उस भेद बताय ।

धन्य शीष धन भाग तिहि, जो ऐसी सुधि पाय । । ३८

'हरी भई सब आतमा, सतगुरु सेव्या मूल ।

चहुदिस फूटी वासना, भया कली सों फूल । । ३९

भावों की सत्यता ही साहब का स्वरूप है, जो इस मत को मान लेता है वह बड़भागी है, क्योंकि उसकी मुक्ति में संदेह नहीं रहता ।

जिस प्रकार मूल के सींचने से पेड़ की डालियाँ हरी भरी हो जाती हैं और कलियाँ खिलकर चारों ओर सुगंध फैला देती हैं, इसी प्रकार पूरे सद्गुरु के शरण से पूर्णपद मिल

जाता है, जिससे श्रेय और प्रेम दोनों की प्राप्ति हो जाती है ।

"सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत, किया उपकार

लोचन अनंत उधारिया, अनंत दिखावनहार ।।"<sup>४०</sup>

यह सतगुरु उपदेश है जो माने परतीत ।

करम भरम सब त्यागी के चलै सो भवजल जीत ।।"<sup>४१</sup>

कबीर कहते हैं कि सतगुरु की महिमा अपार है उसने हम पर कई उपकार किये हैं । हम उसके ऋणी हैं । उस अविनाश अखंड पुरुष की आँखों की एक झलक से हमारा जीवन धन्य हो जाता है । सद्गुरु के उपदेश से मानो हम ब्रह्मलोक में विचरते हों । सब संसार की मोह माया का त्याग कर के हमारा जीवन धन्य हो गया हो । उसकी एक दृष्टि से हमें सब सत्य दिखाई देता है ।

**४.१.२ संगति और सेवक के बारे में कबीरजी के विचार :**

● **संगति के बारे में कबीरजी के विचार :**

"कबीर संगति साधु की, नित प्रति कीजै जाय ।

दुरमति दूर बहावसी, देखी सुमति बताय ।।"<sup>४२</sup>

"कबीर संगति साधु की, निष्फल कभी न होय ।

होसी चंदन बासना, नीम न कहसी कोय ।।"<sup>४३</sup>

कबीरजी कहते हैं कि जो लोग साधु की संगति करते हैं उसकी प्रीति दिन-ब-दिन बढ़ती जाती है । उसकी (बुद्धि)मति कभी नहीं बिगड़ती है । सदैव सुमति (अच्छी बुद्धि) रहती है । हमेशा दूसरों के प्रति प्रेम बढ़ता रहता है । जो साधु-संत की संगति करता है उसका कोई भी काम, कार्य निष्फल नहीं होता । जिस तरह चंदन में से सुगंध कम नहीं होती उसी तरह साधु के संपर्क में रहने से कुमति नहीं होती । चंदन के पास चाहे निम के पेड़ हो तो भी उसकी कड़वी बास छूकर भी नहीं जाती उसी तरह साधु-संतों के संग रहने से कभी हमारे भीतर दुर्गुण नहीं आते ।

"कबीर संगति साधु की, जो करि जानै कोय ।

सफल बिच्छु चंदन भये, बांस न चंदन होय ॥"४४

जो लोग साधु-संतो का संग करते हैं उनका जीना कभी निरर्थक नहीं जाता । परंतु जो लोग दुर्गुण से भरे हैं वे कभी अपना जीना सार्थक नहीं करते । जिस तरह बिच्छु के भीतर विष भरा पड़ा है वे कभी चंदन की महक से सुगंधित नहीं होता या साप के जहर में कोई फर्क नहीं आता उसी प्रकार दुर्गुणी व्यक्ति के जीवन में कभी सगुण या साधु संतो के संगी की आशा रखना व्यर्थ है ।

"मथुरा, काशी, द्वारका, हरद्वार, जगन्नाथ ।

साधु संगति हरिभजन बिन, कछू न आवै हाथ ॥"४५

"साखि शब्द बहुते सुना, मिटा न मनका दाग ।

संगति सो सुधरा नहीं, ताका बड़ा अभाग ॥"४६

कबीरजी कहते हैं, कि आप चाहे जितने भी तीर्थस्थान घूम लो, रटन कर लो चाहे वह तीर्थस्थान मथुरा, काशी, द्वारिका, जगन्नाथ क्यों न हो लेकिन साधु संतो के संग नहीं उसकी संगति नहीं तो सब पर्यटन व्यर्थ है । क्योंकि हरिभजन आपने कहीं पर भी किया नहीं सब जगह घूमे फिरे, मौज-मस्ती की और घर आ गए इस तरह जिंदगी बिता दी । इस तरह पूरी जिंदगी में कुछ हाथ नहीं आता । जिसने भगवान का रटन नहीं किया उसका जीना व्यर्थ है । वे कहते हैं कि जिसका मन ही मैला, दाग से भरा पड़ा है उसके सामने चाहे परमात्मा भी आए तो भी वह उसे नहीं पहचान पाएगा, क्योंकि उसके मन में खोट है । जो साधु-संतो की संगति से नहीं सुधर सकता उससे बड़ा अभागा और कोई नहीं है ।

"राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय ।

जो सुख साधु संग में, सो वैकुण्ठ न होय ॥"४७

कबीरजी का ज्ञान साधुओं की संगति का परिणाम है । साधुओं के साथ रहने से उसे बड़ा आनंद आता था और उसे बहुत कुछ जानने समझने को भी मिलता था । जब कबीरजी का अंतिम समय आता है तो उसे बहुत दुःख होता है, क्योंकि उसे उसका साधु-संग जो

छूटा जा रहा था । वे कहते हैं ऐसा सुख तो वैकुण्ठ में भी नहीं मिलता । जैसा सुख साधुओं के साथ रहने से मिलता है ।

"चंदन परसा बावना, विष ना तजै भुजंग ।

यह चाहै गुन आपना, कहा करै सतसंग ।।"४८

चंदन कितनी भी खुशबू फैलाए या सुगंध प्रदान करे परंतु साप कभी भी अपना ज़हर (विष) नहीं छोड़ता । क्योंकि यही उसका दुर्गुण या लक्षण है । उसी तरह अपने ही गुण बुरे हो तो सतसंग करने से भी क्या होगा ? जिसे अपने आपको सुधारना ही नहीं तो दूसरों के लाख प्रयत्न करने पर भी क्या होगा ?

"कबीर विषधर बहु मिले, मनिधर मिला न कोय ।

विषधर को मनिधर मिले, विषधर अमृत होय ।।"४९

मणिधारी सर्प की मणि में वह गुण होता है कि सर्प के काट लेने पर सर्पमणि को लगा देने से वह विष को खींच लेती है । पश्चात् उसे दूध में डाल देने से दूध अमृत के समान गुणकारी हो जाता है। कोढ़ी को वह दूध यदि पिला दिया जाय तो उसका कोढ़ दूर हो जाता है ।

"मैं सींचो हित जानि के, कठिन भयो है काठ ।

ओछी संगति नीच की, सिर पर पाड़ी बाट ।।"५०

जल के इस प्रकार उदारता दिखलाने पर भी काठ अपनी नीचता को नहीं छोड़ता । वह सदैव उसके सिर पर चढ़ा रहता है और जल के ऊपर से ही अपना आना-जाना जारी रखता है । यहीं नीचो की नीचता है ।

"साधु संगति गुरुभक्ति जु, निष्फल कबहुँ न जाय ।

चंदन पास है – रूखड़ा, (सो) कबहुँ चंदन भाय ।।"५१

"साधु संगति गुरुभक्ति रू, बढ़त बढ़त बढ़ि जाय ।

ओछी संगति खर शब्द रू, घटत घटत घटि जाय ।।"५२



साधु संगति गुरुभक्ति के समान दिन-ब-दिन बढ़ती ही जाती है और कुसंगति गधे की रेंकन (आवाज) के समान धीरे-धीरे घटती ही जाती है ।

सेवक के बारे में कबीरजी के विचार :

"सेवक सेवा में रहै, अन्त कहूं नहि जाय ।

दुःख सुख सिर ऊपर सहै, कहै कबीर समुझाय ।।"५३

सेवक सेवा में रहै, सेवक कहिये सोय ।

कहै कबिर सेवा बिना, सेवक कभी न होय ।।"५४

सेवक सेवा में रहै, सेव करै दिनरात ।

कहै कबिर कुसेवका, सनमुख ना ठहरात ।।"५५

"कबिर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नाँव ।

गले में राम की जेबड़ी, जित खँचे तित जाँव ।।"५६

सेवक के बारे में कबीर कहते हैं कि जो सेवक प्रभु की सेवा में लीन रहता है उसका कभी अंत नहीं होता । प्रभु उसके दुःख, सुख अपने ऊपर ले लेते हैं । जो सेवक प्रभु की सच्चे मन से सेवा करता है वही सच्ची सेवा है और वही सच्चा सेवक कहलाता है । प्रभु की सेवा के बिना सेवक नहीं कहलाता चाहे वह कितना भी अच्छा क्यों न हों । जो सेवक प्रभु की दिनरात सेवा करता है उसीके सन्मुख प्रभु अपने दर्शन देते हैं । जो सेवा के नाम से ढोंग करता है प्रभु उसके सामने कभी नहीं जाते । कबीर कहते हैं कि वो तो प्रभु का एक कुत्ता मात्र है जिसका नाम मोती है उसके गले में तो हमेशा राम नाम का रटन करने वाली जीहवा है । वो कभी अपनी मनमानी नहीं करता जिधर उसके प्रभु उसे ले जाते हैं वहीं वो जाते हैं ।

" सतगुरु बरजै सिष करै, क्यों करि बाचै काल ।

दहुँ दिसि देखत बहि गया, पानी फूटी पाल ।।"५७

"साहब के दरबार में, कभी काहु की नाँहि ।

बंदा मौज न पावही, चूक चाकरी माँहि ।।"५८

पाल- तालाब का बाँध - जिस प्रकार पाल के टूटने से पानी काबू से बाहर हो जाता है । उसी प्रकार गुरु की आज्ञा का भंग करनेवाला शिष्य संसार में बह जाता है । प्रभु के दरबार में कभी बंदा दुःखी नहीं रहता । वो तो हरपल मौज मस्ती में ही रहता है । जब तक वो सेवक बनकर प्रभु की सेवा करता है तब तक प्रभु उसके पास होते हैं । परंतु जब प्रभु की सेवा करना वो चुक जाता है तो वो दुःखी हो जाता है और प्रभु दूर जाने लगते हैं ।

"आस करै वैकुण्ठ की, दूरमति तीनों काल ।

शुक कहि बलि ना करी, ताते गयों पताल ॥"५९

गुरु की आज्ञा का पालन न करने पर कैसी दुर्गति होती है उसका उदाहरण यहाँ पर इस प्रकार है । शुक्राचार्यने बलिराजा को वामन को दान देने से रोका था, परंतु उसने गुरु की आज्ञा नहीं मानी इसलिए उसे पाताल में जाना पड़ा । भगवान विष्णु वामन का रूप लेकर बलिराजा की उदारता की परीक्षा लेने आए और दान में तीन ड़ग माँगे । बलिराजा को पहले से ही उसके गुरु शुक्राचार्यने सचेत कर दिया था । परंतु उसने उसकी आज्ञा का पालन नहीं किया । और अंत में पाताल में जाना पड़ा ।

" गुरु आज्ञा माने नहीं, चलै अटपटी चाल ।

लोक, वेद दोनों गए, आगे सिर पर काल ॥"६०

"गुरु मुक्ति मागो नहीं, भक्ति दान दे मोहि ।

और कोई जाँचौ नहीं, जिसदिन जाँचौ तोहि ॥"६१

"गुरु मुख गुरु आज्ञा चलै, छाँडि देई सब काम ।

कहै कबिर संसार में, सो कहिये गुरुमुख ॥"६२

जो शिष्य अपने गुरु की बात नहीं मानता, उसका मन कभी स्थिर नहीं रहता उसके मन में बूरे विचार चलते रहते हैं । अटपटी चाले उसका मन चलता रहता है । जो शिष्य षडयंत्रकारी बनता जाता है उसे उस लोक में तो क्या परलोक में भी जगह नहीं मिलती । मृत्यु उसके सिर पर मंडरा रही होती है ।

जो शिष्य गुरु से मुक्ति नहीं मांगता और भक्ति मांगता है वो शिष्य सच्चे अर्थ में मोक्ष का अधिकारी बन जाता है । क्योंकि उसको तो सिर्फ भगवान ही चाहिए, उसे तो चारों ओर प्रभु ही दिखाई देते हैं । अगर भगवान प्रसन्न होकर कुछ मांगने के लिए कहे तो भी वो भगवान से भक्ति ही मांगेगा ।

जो शिष्य गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करता है वो कभी संकट में नहीं पड़ता । जो अपने गुरु के पदचिह्नों पर चलता है जो अपने सारे काम छोड़ देता है वो कभी दुःखी नहीं होता । गुरु के हर वचन को वह बड़े ध्याने से सुनता है और उसका पालन करता है । ऐसे शिष्य मिलने से गुरु भी धन्य हो जाते हैं ।

**सुमिरन को अंग के बारे में कबीरजी के विचार :**

"नाम रतन धन पाय कर, गांठ बांध न खोल ।

नहीं पाठन नहि पारखी, नहि ग्राहक नहि मोल ।।"६३

"नाम नाम सबकोई कहै, नाम न चिन्है कोय ।

नाम चिन्ही, सतगुरु मिलै, नाम करावे सोय ।।"६४

"नाम बिना बेकाम है, छप्पन भोग विलास ।

क्या इन्द्रासन बैठना, क्या बैकुंठ निवास ।।"६५

"नाम रतन सो पाई हैं, ज्ञान दृष्टि जेहि होय ।

ज्ञान बिना नहि पावई, कोटि करै जो कोय ।।"६६

जो सेवक राम नाम का रतन प्राप्त कर लेता है, जो राम नाम की पोटली बाँध लेता है, उसकी गांठ कभी नहीं खुलती । नाहि वह बीकी जाती है और नाहि वह परखी जाती है नाहीं वह बेची जाती है और नाहि उसका कोई मूल्य होता है । क्योंकि वह तो अमूल्य है और जो राम राम कहता है उसका जीवन धन्य हो जाता है । सतगुरु रूपी उसे राम रटानेवाले प्रभु मिल जाते हैं फिर दूसरे नाम की उसे क्या आवश्यकता । जो राम का नाम नहीं लेता, प्रभु का स्मरण नहीं करता वो बेकाम का हो जाता है और जो प्रभुमय बन जाता है उसके सामने छप्पन भोग विलास भी तुच्छ हो जाते हैं । राम स्मरण के बिना तो उसे

इन्द्रासन पर बैठना भी अच्छा नहीं लगता और बैकुंठ भी मिल जाए तो भी उसे किसी काम का नहीं लगता ।

राम नाम का रतन धन पाके सभी प्रकार का दृष्टि ज्ञान मिल जाता है और बिना ज्ञान के उसे कुछ पता नहीं होता । जो शिष्य प्रभु को कोटि कोटि वंदन करता है उसे दूसरे भक्त-संत भी प्रणाम करते हैं।

"यह औषधि अंग ही लगि, अनेक उघरी देह ।

कोरु फेर कूपथ करै, नहिं तो औषधि येह ॥" ६७

"सत नाम निज औषधि, सतगुरू दर्ई बताय ।

औषधि खाय रू पथ रहै, ताकि बेदन जाय ॥" ६८

राम नाम की औषधि (दवाई) ऐसी हो जो शरीर में एकबार लग जाय फिर किसी प्रकार का रोग नहीं रहता । कभी वो भक्त कुमार्ग पर नहीं जाता, उसके हर दुःख का इलाज सिर्फ राम स्मरण ही है फिर कोई पीड़ा नहीं रहती । वह औषधि सतगुरू ही बता सकते हैं जिसके माध्यम से प्रभु के पास जाते हैं । प्रभु की प्राप्ति होती है ।

"पूंजी मेरी नाम है, जाते सदा निहाल ।

कबीर गरजे पुरुष बल, चोरी करै न काल ॥" ६९

"कबीर हरि के नाम से, सुरति रहै करतार ।

ता मुख सें मोती झरे, हीरा अनंत अपार ॥" ७०

"कबीर हरि के नाम में, बात चलावै और ।

तिस अपराधी जीव को, तीन लोक हित गैर ॥" ७१

"साहेब जना संभारता, कोटि विघन हरि जाय ।

राई भर बसंदरा, केता काठ जराय ॥" ७२

सुमिरन ऐसी पूंजी है जो कभी खत्म ही नहीं होती और कोई उसकी लूटफाट नहीं करता और नाहि उसकी चोरी होती हैं । जो पुरुष-स्त्री अपने बल पर ऐसी पूंजी पा लेता है

उसका काल भी कोई नहीं बिगाड़ सकता । हरि का नाम लेने से तो हर प्रकार के दुःख चले जाते हैं । ऐसा लगता है जैसे हम वैकुण्ठ में हो । प्रभु की भक्ति करने से मुख में मिठास भर जाती है और मोती झरने लगते हैं । हरि का नाम लेने से चौरासी फैंरों की चिंता से मुक्त हो जाते हैं और जीव मुक्त हो जाता है । प्रभु का नाम लेने से सभी प्रकार के संकट, आपत्ति दूर हो जाते हैं ।

"कबीर सूता क्या करे, जागी जपो मुरार ।

एक दिना है सोवना, लंबे पाँव पसार ।।"७३

"कबीर सूता क्या करे, उठिन भजो भगवान ।

जम घर जब ले जायेंगे, पड़ा रहेगा म्यान ।।"७४

कबीर कहते हैं कि अभी भी समय है । जाग जाओ इस कलियुग में भक्तिभाव ही साथ रहेगा । सोने से नसीब भी सो जाते हैं । अंतिम समय में प्रभु को याद करने से क्या फायदा । गुजराती में कहावत है कि "जाग्या त्यारथी सवार" प्रभु भजन के लिए हम जागृत हो गए तो हमारा जन्म सफल हो जायेगा क्योंकि एक दिन तो पाँव पसारकर हमें जम के घर जाकर सोना ही है । जब यमदूत हमें ले जायेंगे तब जागने से क्या फायदा ।

"सहकामी सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम ।

निहकामी सुमिरन करै, पावे अविचल राम ।।"७५

"थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय ।

हरदी लगै न फिटकारी, चोखा ही रंग होय ।।"७६

सबलोग मिलकर नाम स्मरण करते हैं तो उसे श्रेष्ठ धाम नसीब होता है और जो अपने आप स्मरण करता है उसे अविचल राम की प्राप्ति होती है ।

राम का थोड़ा स्मरण बहुत सुखदायी होता है जो उसका स्मरण करता है वो ही वो जानता है । बस उसका हृदय शुद्ध होना चाहिए ।

"दुःख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय ।

जो सुख में सुमिरन करै, दुःख काहे को होय ।।"७७

"तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँय ।

बारी तेरे नाम पर, जित देखु तित तूँय ।।"७८

"माला फेरत जुग गया, मित्र न मन का फेर ।

करका मनका डारि दे, मनका मन का फेर ।।"७९

"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि ।

मनवा तो चहू दिस फिरै, यह तो सुमिरन नाहि ।।"८०

मनुष्य में अवगुण यह रहा है कि वह सुख में नाम स्मरण भूल जाता है और जब उस पर दुःख होता है तो भगवान की याद उसे तुरंत ही आती है । मनुष्य अपना यह अवगुण छोड़कर सुख में भी प्रभु स्मरण करे तो कभी उसे दुःख का सामना नहीं करना पड़ता । जब व्यक्ति में अहम् आ जाता है तो उसमें दूसरा कुछ नहीं रहता परंतु जब वह अहम् को त्यागकर दूसरों में खो जाता है तो वह निर्मल बन जाता है । उसे हर जगह बस प्रभु ही दिखाई देते हैं । जो व्यक्ति अपने मन को निश्चल करता है वही भवपार हो जाता है ।

आज कल लोग जिस प्रकार दिखावा करते हैं उसी प्रकार पहले भी लोग ऐसा दिखावा करके लोगों को अंधश्रद्धा में डालते थे । अपने हाथ में झुटमुट की माला लेकर उसका एक-एक करके मनका फिराते हैं परंतु मन में तो कपट चल रहा होता है । जिसका मन ही शुद्ध न हो उसकी माला करने का कोई अर्थ नहीं होता । मन में ऊँच-नीच के भाव पनप रहे होते हैं और जाति भेद का संदेश देते हैं । दूसरा उसका अवगुण यह है कि हाथ में माला फिरती है मुँह में जीहवा का हलनचलन चिल्ला-चिल्लाकर रहता है और उसका मन तो चारों दिशाओं की ओर भटकता रहता है तो फिर यह नाम स्मरण कैसा ? इसका कोई फायदा नहीं होता ।

## प्रेम और विरह के बारे में कबीरजी के विचार :

### प्रेम के बार में कबीरजी के विचार :

"यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाँहि ।

सिस ऊतारे भूय धरै, तब पैठे धर माँहि ।।"८०

"प्रेम ना बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय ।

राजा परजा जो रूचै, सिस दये ले जाय ।।"८१

"प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चिन्है कोय ।

आठ पहर भीजा रहै, प्रेम कहावै सोय ।।"८२

कबीरजी कहते हैं कि प्रेम कोई ऐसी वैसी चीज नहीं है वह तो तलवार की धार पर चलना है । प्रेम करना मतलब खाला (मौसी) का घर नहीं है । प्रेम किसी स्त्री की बात यहाँ पर कबीरजीने नहीं कही है । प्रेम करने का अर्थ प्रभु के साथ प्रेम करना होता है । जिसे बहुत सारे संकटों का सामना करना पड़ता है । इसमें तो सिस भी उतारना पड़ता है तब जाके प्रभु भक्ति मिलती है । प्रेम कभी कहीं नहीं मिलता और कहीं नहिं बिकता । प्रेम कोई बाज़ार में बेचने की चीज़ नहीं है, जिसे बेचा जाय । प्रेम तो ऐसी अमूल्य वस्तु है जिसे राजा हो या प्रजा अपना सिस उतारकर ले जाय । प्रेम का अर्थ है प्रभु नाम की भक्ति, जो धन्य बनना चाहता है वो ही उसे पा सकता है । दिखावा करनेवाला व्यक्ति प्रेम नाम का ढिंढ़ोरा पिटता है परंतु प्रेम क्या उसका उसे निशा तक नहीं रहता और जो प्रेम को जानता है वह प्रेम रस में आठों पहर भीगा रहता है ।

"प्रेमी ढूँढ़ते मैं फिरू, प्रेमी मिलै न कोय ।

प्रेमी समां प्रेमी मिलै, विष से अमृत होय ।।"८३

जो प्रेमी को ढूँढ़ता है उसे प्रेमी कभी नहीं मिलता परंतु जब प्रेमी प्रेमी से मिलता है तो मानो जीवन अमृतमय बन गया फिर उसे जीने मरने की कोई चाह नहीं रहती ।





"जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जानु मसान ।

जैसे खाल लुहार की, साँस लेत बिन प्रान ।।"८४

कबीर कहते हैं कि जिस घर में प्रेम नहीं होता, सत्कार, सम्मान नहीं होता उस घर को स्मशान ही समझ लेना चाहिए । जिस तरह लोहे की खाल लुहार पिटता है तो ऐसा लगता है जैसे बेरहम हो उसी तरह प्रेम के बिना घर भी बिना प्रान के स्मशान की तरह ही है।

"जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु है मैं नाहि ।

प्रेम गली अति सांकरी है, तामें दो न समौहि ।।"८५

"नैनन की करि कौठरी, पुतली पलंग बिछाय ।

पलकों की चिक डारिकै, पिय को लेय रिझाय ।।"८६

"तुम मति जानों बिधुरे, साजन प्रति घटाय ।

बैपारी का व्याज ज्यूं, दिन दिन दून बढ़ाय ।।"८७

कबीरजी कहते हैं कि राग-द्वेष, ईर्ष्या-धृणा, चिंता-शोक, विकलता आदि में जीवन जीनेवाले तो बहुत लोग हैं, किन्तु प्रेम में जीवन जीनेवाला व्यक्ति दुर्लभ है । यदि सभी लोग प्रेम में जीवन जीने लगे तो यह धरती स्वर्ग बन जाय । ग्रंथकर्ता मानो अपने आप को ही संबोधितकर मानवमात्र को कहते हो कि हे कबीर, "प्रेम-पाट का चोलना पहनकर नाचो ।"८८ यहाँ 'नाचो' का अभिधा अर्थ नहीं, किन्तु 'लक्षणा' अर्थ है । यहाँ नाचने का अर्थ जीवन का व्यवहार करना । मतलब कि है मानव, सबसे प्रेम का व्यवहार करो ।"

संसार में प्रेम दुर्लभ वस्तु है । परिवार या समाज के नाम से संसार में कई मनुष्य एक साथ रहते हैं, परंतु वे वहाँ परस्पर प्रेमपूर्वक रहते हो, यह बहुत बड़ी बात है । किसी युवक-युवती की पारस्परिक आसक्ति प्रेम नहीं है । वह मोह है । प्रेम में निष्काम भावपूर्वक सेवा की जाती है, मोह में भोग पाने की भावना होती है । प्रेम तक पहुँचने में

स्वार्थ का परदा है । जो व्यक्ति अपना स्वार्थ जितना कम कर देता है वह उतना ही प्रेम का व्यवहार अधिक कर सकता है । स्वार्थ को जीते बिना जीवन में प्रेम का उदय नहीं हो सकता । अपने झूठे अहंकार तथा झूठे स्वार्थ के व्यामोह में पड़कर लोगों में पारस्परिक प्रेम नहीं रह जाता । प्रेमविहीन जीवन रूखा तथा निराशाग्रस्त हो जाता है । जिस परिवार एवं समाज के व्यक्तियों में परस्पर प्रेम नहीं है, वहाँ कलह, कटुता, आपाधापी एवं राग-द्वेष का ही बाज़ार गरम रहता है । जिसके जीवन में प्रेम का संचार नहीं है, जो मानव मात्र के प्रति प्रेम एवं जीव मात्र के प्रति करुणा नहीं रखता, उसका जीवन नही स्मशान है । इसीलिए सद्गुरुने कहा है कि पोथी पढ़-पढ़ के जगत के लोग मर जाते हैं, परंतु वे पंडित नहीं होते।

यदि हम परस्पर प्रेम का व्यवहार करते हैं तो सुखी रोटी खाकर, कटे वस्त्र पहनकर और टूटी झोंपड़ी में कटी चटाई पर सोकर भी सुख से रह सकते हैं और यदि हम अपने साथियों में प्रेम का व्यवहार न रखकर धृणा, द्वेष आदि का व्यवहार रखते हैं, तो किंमती भोजन, वस्त्र, आसन, आवास आदि का उपभोग करते हुए भी अशांत एवं नरक का जीवन बिताते होंगे । हम जहाँ जायं, जितने प्राणी मिलें, सबको प्रेम की निगाह से देखें और सबसे प्रेम का व्यवहार करें, यही प्रेमपाट का चोलना पहनकर नाचना है । हमारे जीवन का सारा व्यवहार प्रेमपूर्ण होना चाहिए ।

**विरह के बारे में कबीरजी के विचार :**

"बिरह बाण जेहि लागिया, औषध लगे न ताहि ।

सुसुकि - सुसुकि मरि-मरि जीवै, उठे कराहि कराहि ।।"८८

जिसको विरह का बाण लग गया है, अर्थात् जो समझता है कि मेरा लक्ष्य मुझसे अलग है, उसको स्वरूप-विचार की औषधि नहीं लगती । वह तो अपने लक्ष्य को पाने के लिए सिसक-सिसककर रोता है, मुर्छित होता है, जानता है और अपने प्रियतम के वियोग की याद में बारम्बार कराह उठता है ।

संसार में यह भ्रम पालनेवाले अधिकतम लोग है कि परमात्मा से हम बिछुड़ गए हैं। इस वियोग का हम जितनी तीव्रता से अनुभव करेंगे परमात्मा उतनी ही जल्दी हमें दर्शन देंगे । जो लोग ऐसे गहरे भ्रम में पड़े है उनके सामने यदि स्वरूप-विचार की बातें करो कि तुम्हारा परमात्मा तुमसे अलग नहीं है, तुम्हारा आपा तुमसे बिछुड़ ही नहीं सकता, तुम्हें बाहर से कुछ पाना नहीं है, तुम्हें केवल सारी वासनाओं को छोड़कर अपने स्वरूप में लौट आना है, तुम स्वयं शुद्ध-बुद्ध अविनाशी चेतन हो, तुम वासनाओं को छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित हो इत्यादि । तो यह औषध उनको नहीं लगती । वे तो परमात्मा को पाने के लिए रोने-पीटने में आनंद मानते हैं ।

लोग रोकर, गाकर तथा नाच-कूदकर ईश्वर को रिझाने के चक्कर में पड़े रहते हैं । आज भी ईश्वर को पाने के ऐसे सनकी है जो समझते है कि यदि हम ईश्वर के दर्शन के लिए हठपूर्वक पर्वत से कूद पड़ेंगे तो वह नीचे से मुझे अपनी गोद में उठा लेगा और जब वे जोश में कूद पड़ते है तब उनके हाथ-पैर टुट जाने के अलावा कुछ नहीं होता ।<sup>९</sup>

"सुखिया सब संसार हे, खावै और सोवै ।

दुखिया दास कबीर है, जागै और रोवै ।।"<sup>१०</sup>

"अँखडिया झाँइ पड़ी, पंथ निहारी निहारी ।

जीभड़िया छाला पड़या राम पुकारी पुकारी "

कबीर आगे कहतै है कि इस संसार में ऐसा कोई ईश्वर होता तो कम से कम ईश्वर के नाम पर लड़नेवालों तथा खून-खराबा करनेवालों को तो वह समझा-बुझाकर अब तक ठीक रास्ते पर ला ही दिया होता । वह सर्वसमर्थ ईश्वर, व्यभिचार, चोरी, डाका, हत्या, आतंकवाद, मिलावटबाजी, कालाबाजारी, घूसखोरी एवं समस्त क्रूर-कर्मों को समाप्त कर संसार में आनन्द का राज्य कायम कर दिया होता । परंतु ऐसा कुछ नहीं है । संसार में सर्वत्र कारण-कार्य की व्यवस्था व्याप्त है जो व्यक्ति जैसा कार्य करत है वह वैसा फल पाता है । कर्मों के नियम ही उसे फल दे देते हैं । बस, संसार के शाश्वत नियमों को ही ईश्वर कह

सकते हैं । इसके अलावा कोई ईश्वर नहीं, जो कहीं बैठा कुछ कर रहा हो या किसी के रोने-गाने से वह उसको आकर दर्शन दे तथा उसका कोई कल्याण कर दे । मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कर्मों को सुधारे, अपने आत्मस्वरूप को पहचाने और सारी वासनाओं को छोड़कर अपने आत्माराम में स्थित हो ।

**पवित्रता के बारे में कबीरजी के विचार :**

"कबीर जात पुकारिया, चढ़ि चन्दन की डार ।

बाट लगाये ना लगे, पुनि का लत हमार ॥"९१

कबीर साहब कहते हैं कि मैं अपने मानवीय सद्गुण एवं आत्मस्वरूप की स्थिति में आरूढ़ होकर संसार के लिए भी सन्मार्ग बताए जा रहा हूँ । यदि संसार के लोग बताए हुए सन्मार्ग पर नहीं चलेंगे तो हमारा क्या नुकसान करेंगे । अपना ही अहित करेंगे ।

मानवीय सद्गुण तथा स्वरूपस्थिति के समान कोई सुगंधी नहीं है । परंतु उदाहरण के लिए चन्दन के सिवा और किसका नाम लिया जाय । अतएव सद्गुरूने यहाँ चन्दन की डाली का सुंदर रूपक दिया है । मानवीय सद्गुण एवं स्वरूपस्थिति चन्दन की डाली है जिसमें हर समय सुगंध ही है । दया, शील, क्षमा, करुणा, संतोष, सत्य आदि मानवीय सद्गुण हैं और सारी जड़ वासनाओं को छोड़कर अपने आत्मस्वरूप एवं चेतन स्वरूप में स्थित हो जाना स्वरूपस्थित है । वे कहते हैं कि जो मेरी बातों पर ध्यान नहीं देगा, वह मेरा क्या बिगाड़ेगा । वह अपना ही नुकसान करेगा ।

"बाह लगाये ना लगे, पुनि का लेत हमार"९२

यह मजबूरी संसार के सभी महापुरुषों के सामने थी और आज भी है । हमारे बीच महापुरुष आते हैं परंतु हम अपने प्रमोदवश उन्हें नहीं समझ पाते । उनके बताए हुए सन्मार्ग पर चलना तो दूर हम उनके प्रति द्वेषभाव कर अपने अंतःकरण को बिगाड़ते हैं । संसार के सभी महापुरुषों की अवहेलना करनेवाले लोग उनके सामने ही थे । परंतु इसको लेकर उन्होंने अपना काम बन्द नहीं किया । वे स्वयं अपने शुभ-मार्ग पर चलते रहे और दूसरों के

लिए सत्प्रेरणा देते रहे । जो उनकी ओर ध्यान दे वे उनसे लाभ लेकर अपना कल्याण करते रहे ।

पवित्रात्मा मानव समाज के लिए प्रकाशस्तंभ है । यदि सच्चे ज्ञान एवं पवित्र रहने से संपन्न पुरुष हमारे बीच में होते हैं तो वे हमारे लिए एवं मानव-समाज के लिए अमोघ वरदान होते हैं । ज्ञान तथा सद्गुण की बात कहनेवाले लोग तो हमें बहुत मिल जाते हैं । परंतु, जो उनके आचरणों से संपन्न हों, ऐसे व्यक्ति दुर्लभ हैं, यदि ऐसे पुरुष हमारे बीच हो तो वे हमारे लिए प्रेरणास्त्रोत हैं और हमारा परम सौभाग्य है । अतएव हमें महापुरुषों से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को ऊपर उठाना चाहिए ।

**स्वार्थ और परमार्थ के बारे में कबीरजी के विचार :**

**स्वार्थ के बारे में...**

"मन स्वार्थी आप रस, विषय लहर फहराय ।

मन के चलाये तन चलै, जाते सबरस जाय ।।"९३

मन अपने इन्द्रिय-विषयों के स्वाद का स्वार्थी है । उसमें विषयों की ही लहरियाँ उठती रहती हैं । मन के विचलित होते ही शरीर विचलित हो जाता है, जिससे सर्वस्व नष्ट हो जाता है।

मन स्वार्थी है, खुदगर्ज है । वह सदैव अपने रस में डूबा रहता है । उसे सदा विषयों के स्वाद प्रिय है, क्योंकि वह अनादिकाल से उनमें आसक्त है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध ये पांच विषय हैं । सामान्य मनुष्य के मन में प्रायः हर समय कोई न कोई विषय की लहर विद्यमान रहती है और वह उसी में डूबा रहता है । साधारण आदमी भी हर समय अपने मन को रोकता है। जिस विषय से वह अपने मन को नहीं रोक पाता, उस विषय से वह कम-से-कम अपनी इन्द्रियों को तो रोकता ही है । मनुष्य का मन हर क्षण जैसे सोचता है उसके अनुसार इन्द्रियों से आचरण करके तो वह जीवित ही नहीं रह सकता । जब किसी एक विषय में मनुष्य का मन निरन्तर चलता है और उससे वह अपने को अलग नहीं करता, तो उस विषय में उसके मन में एक मोह उत्पन्न हो जाता है । मोह उत्पन्न होने पर वह

कर्तव्य-अकर्तव्य, हित-अहित का विवेक खोकर घोर अंधकार में पड़ जाता है और वह उसी विचलित मन के अनुसार बह जाता है।

साधारण गृहस्थ हो या वेषधारी, जो व्यक्ति स्त्रियों के कामोद्दीपक अंगों के सहित उनका स्मरण करता रहेगा, वह एक न एक दिन अपने पद से गिर जायेगा । हजार ज्ञान, हजार युक्तियाँ, कुसंग तथा कुस्मरण की बहिया में बह कर पता नहीं कहा चले जाते हैं । मन विचलित होने पर शरीर विचलित हो जाता है और मन तथा शरीर दोनों विचलित होगए तो मानो सर्वस्व चला गया । अर्थात् उसका सब प्रकार से पतन हो गया । इसी प्रकार कोई साधारण स्त्री या साधिका यदि किसी पुरुष के अंगों सहित उसकी देह में अनुरक्त होने लगी तो वह धीरे-धीरे उस तरफ फिसलकर अपने आप को खो देगी । अच्छे से अच्छे साधक भी कुसंग के कारण ही गिरते हैं । स्त्री के लिए पुरुष तथा पुरुष के लिए स्त्री विरोध आलंबन है । विरोधी आलंबन के निरंतर धूर-धूरकर दर्शन तथा डूब-डूबकर स्मरण करते रहने से पतित होने के सिवा कोई चारा नहीं है ।

साधन एवं साधिका को चाहिए कि जिन दर्शनों, शब्दों, स्पर्शों, स्मरणों आदि से मन में काम-वासना संबंधी मलिनता पैदा हो उन्हें साँप-बिच्छु में भी भयंकर समझ कर उनसे दूर होते रहें । जिन-जिन दृश्यों एवं शब्दों से मन विचलित हो, वे सब कुसंग हैं । अनादिकाल से विषय-वासना में वासित मन को कुसंग से हटाकर तथा परहेज रखकर ही शुद्ध बनाये रखा जा सकता है । जो पतंगे के समान मूढ़ बनकर दीप-ज्वाला एवं विरोधी आलंबन में चिपकेगा, उसका विनाश रखा-रखाया है । एक बुढ़ा एक सुन्दरी को रोज-रोज ललचाई हुई दृष्टि से देखते-देखते इतना पागल हो गया कि एक दिन बलात उसके कमरे में घूसने लगा, परंतु उस सुन्दरीने इतने जोर से फाटक बंद किया कि बूढ़े का सिर तथा चेहरा फाटक से टकराकर रक्तरंजित हो गया । वह मुर्छित होकर वहीं गिर पड़ा तथा लोगों के बीच में हास्यास्पद हो गया । एक नवयुवक एक युवती को दूर से ही रोज-रोज देखकर उसके मोह में इतना मूढ़ हो गया कि वह एक दिन उसके घर जाकर उससे अपनी मनोकामना के अनुसार याचना करने लगा । उस युवती को उस मूढ़ पर इतना गुस्सा आया कि उसने उसके उपर

पत्थर दे मारा और वह जमीन पर गिर पड़ा । लोग इकट्ठे हो गए । उस पर थू-थू करने लगे । उसे पुलिस के पास ले गए । पुलिसने उसके आधे बाल मुंडवा दिये, आधी मूंछ तथा दाढ़ी कटवाकर तथा मुख में स्याही लगाकर बाज़ार में घुमाया। ये "नैन रसिक" लोग इतने अंधे हो जाते हैं कि अपनी नैतिकता, शांति एवं प्रतिष्ठा को और दूसरे तथा समाज की प्रतिष्ठा को एकदम भूलकर अपनी नाक कट्टी में डूबो देते हैं ।

अतएव सद्गुरु कबीर सावधान करते हैं कि मानव तथा साधक ! तू सावधान हो जा । तुं चाम, बाल, वस्त्र की बनावट के मिथ्या व्यामोह में पड़कर अन्धा मत बन ! ये नर-नारियों के शरीर हड्डी, मांस, मल, मूत्र के पात्र हैं । इनमें कुछ सार नहीं हैं । मांगने से मन की तृप्ति नहीं होती, किन्तु त्याग से ही तृप्त होता है । विषयों की मलिनता नरक हैं । इससे मुक्त होना ही जीवन की उच्चता है ।

**परमार्थ के बारे में :**

"सुख के संगी स्वार्थी, दुःख में रहते दूर ।

कहै कबीर परमार्थी, दुःख सुख सदा हजूर ॥"९४

सभी देहधारी जीव अनेक प्रकार की कामनाओं के अधीन हैं । सारी कामनाएँ किसी की पूरी नहीं होती । अतएव कामनाओं में भंग पड़ने पर आदमी तुरन्त क्रोध के आधिपत्य में आ जाता है । अपनी कामनाओं की पूर्ति में तथा अपने अहंकार के पोषण में मनुष्य हठ करता है । फिर इतना ही क्या, अहंकार- कामना के वश होकर सारे अनर्थ करता है । इस प्रकार सभी जीव अनादिकाल से बिगड़ैल हैं । जैसे...

" है बिगराचल ओर का, बिगरो नाहिं बिगारो ।

घाव काहि पर घालो, जित देखो तित प्राण हमारो ॥"९५

है बिगराचल ओर का अर्थ तरफ, दिशा, पक्ष अथवा घोर, सिरा, अंत आरंभ आदि हैं । वैसे जब हम 'समास में ओर घोर' कहते हैं तब उसके अर्थ क्रमशः 'आरंभ-अंत' होता है । इसलिए 'ओर' का अर्थ यहाँ पर आरंभ होता है । चूंकि सृष्टि का आरंभ कहीं न होने

से सब कुछ अनादि है । इसलिए यहाँ अर्थ किया गया प्राण अनादिकाल से ही बिगड़ैल है । यहाँ अनादि और आरंभ का झमेला न बढ़ाकर सरल अभिप्राय इतना ही है कि देहधारी पहले से ही बिगड़ैल हैं । इसलिए तुम उनके साथ बिगड़ैलपन का काम करके उन्हें अधिक बिगड़ैल मत बनाओं ।

"है बिगराचल ओर का, बिगरों नाहिं बिगारों ।" इस पंक्ति में गहरा मनोविज्ञान और करुणा है । चाहे अपने पास के रहनेवाले हों और चाहे बाहर के मिलनेवाले किसी भी मनुष्य से संबंध होने पर हमें यह सावधानी बरतनी चाहिए कि उन्हें हमारे द्वारा किसी प्रकार का कष्ट न हो । अगले आदमी को कष्ट होने में देरी नहीं लगेगी । जहाँ हम से कुछ सावधानी हुई वहाँ अन्य को कष्ट हुआ । यदि हमारा मन और व्यवहार ठीक है, कोई अपनी अल्पस्वता एवं मनोमालिन्यतावश दुःखी होता है, तो उसमें हमारा अपराध नहीं है । परंतु हमें हर समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि हमारे मन, वाणी एवं कर्मों द्वारा किसी अन्य को कष्ट न हो । जो किसी-न-किसी मनोविकार को लेकर पहले से ही दुःखी बन बैठे हैं । उनका तुम्हारी थोड़ी-सी चूक से दुःखी हो जाना सहज है । कितने लोगों का ऐसा पक्का मन है चाहे जैसा उलटा-सीधा व्यवहार पाकर दुःखी नहीं होता । हमें अपने आप को ऐसा बनाना चाहिए कि हम दूसरों से कटु-के-कटु व्यवहार पाकर भी दुःखी न हों । परंतु हमसे दूसरों को दुःख न हो इससे आगाह रहें।

"घाव काहि पर घालो, जित देखो प्राण हमारो ।" इस पंक्ति में करुणा की सीमा है और करुणा के प्रति अतिशयोक्ति भी । हमें अपने प्राण ज्यादा प्रिय होते हैं । एकबार एक राजा और उसके मंत्री में विवाद हो गया था । कि पुत्र प्रिय है या प्राण ! राजा कहता था कि पुत्र प्रिय है और मंत्री कहता था कि प्राण प्रिय हैं । मंत्रीने इसको प्रमाणित करने के लिए एक बड़े पिंजरे में गर्म तवे पर एक बच्चे सहित बंदरिया को छुड़वा दिया । बंदरिया अपने बच्चे को पेट में चिपकाये हुए तवे पर भागती रही । परंतु जब उससे न सहा गया तब उसने पेट से बच्चे को नोचकर तवे पर रख दिया और उस पर अपने पैर रखकर बैठ गयी । अतः सिद्ध हो गया कि प्राणी को सबसे ज्यादा अपने प्राण प्रिय है ।



यहाँ कहा गया है "जित देखो तित प्राण हमारों" अर्थात् जितने लोग हैं सब हमारे प्राण-प्रिय हैं । यह सर्व सामान्य के लिए अतिशयोक्ति लगेगी परंतु अच्छा भाव रखने से प्राणियों के प्रति अपने मन में करुणा की प्रगति होगी । यहाँ अथर्ववेद के एक मंत्री की याद आती है । अथर्वाऋषि कहते हैं। "मैं उपदेश करता हूँ कि तुम लोग उदार हृदयवाले, सुंदर मनवाले और द्वेषरहित बनो तथा एक-दूसरे से ऐसा व्यवहार करो जैसे गाय अपने नवजात बछड़े से करती है ।" यहा भी अतिशयोक्ति है । जैसे गाय अपने बछड़े से प्रेम करती है वैसा प्रेम लोग एक दूसरे से कहा कर पाते हैं ! परंतु ऋषि ऐसा इसलिए कहता है कि जिससे मनुष्य के मन में दूसरों से प्रेम करने पर जोर पड़े ।

सद्गुरु कहते हैं कि किस को चोट पहुँचाओँगे, सारे जीव तो हमारे प्राण प्रिय हैं ! यह भावना जिसके मन में आ जाये उसका मन स्वर्ग बन जायेगा । यदि यह भावना हर मनुष्य में आ जाये तो पूरा संसार स्वर्ग बन जायेगा । कम-से-कम हमें अपने में यह भाव लाकर अपने मन को स्वर्ग बना लेना चाहिए ।

**काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद के बारे में विचार :**

"जजा ह तन जियत न जारो,

जोब जारि युक्ति तन पारो ।

जो कछु युक्ति जानि तन जरै,

हे घट ज्योति उजियारी करै ॥" ९६

'ज' अक्षर के माध्यम से सद्गुरु उपदेश करते हैं कि हे साधक ! जीते जी इस शरीर को घोर तपस्या में मत जलाओ, जवानी का प्रमाद तथा कामादि कामनाओं को जलाकर शरीर से साधना करो । यदि वासनाओं की निवृत्ति का उपाय जानकर शरीर की आसक्ति जला दे तो साधक इसी जीवन में ज्ञान-ज्योति से आलोकित हो जाय ।

सद्गुरु यहाँ तीन बातें बताते हैं ।

पहली बात है... शरीर को घोर तपस्या में मत जलाओ, दूसरी बातें हैं शरीर और जवानी का अहंभाव जलाकर साधना करो । तिसरी बात है कि यदि मनुष्य साधना करते हुए वासनाओं का त्याग करता है तो उसे इसी जीवन में ज्ञान का आलोक मिल जाता है ।

साधना है इन्द्रिय और मन पर विजय पाने का प्रयास । इसमें मैथुन, मोहादि भोगों का त्याग तो होता है किंतु शुद्ध सात्त्विक एवं संतुलित आहार, विहार, व्यवहार लेते हुए सेवा, स्वाध्याय, ध्यान, चिंतन आदि द्वारा वासनाओं पर विजय प्राप्त करने हेतु प्रयास चलता है । संसारी विषय भोगी होता है । तपस्वी शरीर को संताप देनेवाला होता है । किन्तु साधक बीच का रास्ता पकड़ता है । वह न भोगी होता है और न काया-पीड़क । वह भोगों से विरत होकर, मध्यवर्तीय भोजन-वस्त्र लेते हुए आराम से रहता है और स्वाध्याय, चिंतन तथा ध्यान से वासनाओं पर विजय प्राप्त करता है ।

सद्गुरु कबीर मध्यममार्गी हैं, । संसार के सभी साधक इसी पथ से कल्याण पाते हैं ।

"ममा के सेये मर्म नहिं पाई , हमसे से इन मूल गँमाई ।

माया मोह रहा जग पूरी, माया मोह हि लखडु विचारी ।।"१७

कबीरजी उपदेश देते हैं कि माया का सेवन करने से मनुष्य का विवेक सो जाता है, इसलिए वह सत्य और असत्य का मर्म नहीं समझ पाता । सांसारिक वस्तुओं का अहंकार करने से मनुष्य अपनी वास्तविकता को भूल जाते हैं । संसारियों के मनमें माया का मोह परिपूर्ण हो रहा है । इसलिए विवेक द्वारा माया-मोह की परीक्षा करो ।

उक्त पंक्तियों में चार बातें बतायी गयी हैं ।

- (१) मायामें आसक्त रहनेवाला वास्तविकता नहीं समझ सकता ।
- (२) माया का अहंकारी आदमी अपनी सच्चाई खो देता है ।
- (३) सबके मन में माया का पूरा मोह भरा है, अतएव

(४) माया मोह की विवेकपूर्ण परीक्षा करो । चारों बाते बड़ी महत्वपूर्ण हैं । हम इन चारों पर विचार करें ।

"ममा के सेये मर्म नहिं पाई" बड़ा तलस्पर्शी बचन है । जो जितना ही माया का सेवन करेगा, वह उतना ही मूढ़ बनेगा । माया के सेवन का अर्थ है संसार के रागरंग में डूबने से विवेक सो जाता है और जिसका विवेक सो गया हो, वह सत्य और असत्य के मर्म को नहीं समझ सकता । मन तो एक है । जब मन में दुनिया का रागरंग रहेगा, तब विवेक कैसे जगेगा और विवेक जगे बिना सार और असार की परख कैसे होगी । एतएव जो जीवन को मर्म जानना चाहे, वह रागरंग छोड़े ।

"हमारे से इन मूल गँमाई" दूसरी बात है । "हमारे का तात्पर्य है हम-हम करके, अर्थात् शरीर और शरीर के नाम, रूप, वर्ण, आश्रम आदि को अपना ही रूप मानकर उनमें अहंकार करनेवाला व्यक्ति अपना मूल खो देता है । हर व्यक्ति का अपना मूल स्वरूप है चेतन । मैं शरीर नहीं हूँ । शरीर न होने से उसके नाम-रूप मेरे नहीं हैं । जो मैं नहीं हूँ उसको मान लेने से अपना मौलिक "मैं" विस्मृत हो जाता है । मैं शरीर हूँ ऐसा अहंभाव आते ही, मैं शुद्ध चेतन हूँ यह भाव खो जाता है । अतएव शरीरभिमान रखकर अपने मूल स्वरूप एवं चेतन स्वरूप का बोध नहीं हो सकता और न स्वरूपस्थिति हो सकती है । इसलिए जिसे अपनी मौलिकता में रहना हो, जो अपनी मूल स्वरूप में स्थित रहना चाहता हो, जो अनन्त सुख का रूप है, वह सदैव देहाभिमान का तिरस्कार कर ।

"माया मोह रहा जग पूरी" संसार में सर्वत्र माया-मोह का ही पसारा है । संसार में देखो, तो हर आदमी मोह-मूढ़ है । केवल मात्रा का अंतर है । कोई इतने प्रतिशत मूढ़ है और कोई उतने प्रतिशत, किन्तु विद्वान-अविद्वान, धनी-गरीब, उच्चवर्ग-निम्नवर्ग जहाँ तक देखो, सब माया में मूढ़ हैं । हां कूछ सुख जीव इससे जागते है और कुछ जागने के उपक्रम में रहते हैं ।

अतएव सद्गुरु अंतिम बात में हमें आज्ञा देते है "माया मोह हि लखहु बिचारी ।" अर्थात् विवेकपूर्ण माया-मोह को देखो कि वह क्या है । जब हमारे हृदय में विचार एवं

विवेक की जाग्रति होती है और जब हम विवेकपूर्ण दृष्टि माया-मोह पर डालते हैं, तब माया-मोह खो जाता है, । माया-मोह न तो अंधकार मात्र है । अर्थात् संसार के प्राणी-पदार्थों के प्रति जो हमारे मन में मोह होता है वही तो माया-मोह है । वह अंधकार मात्र है । विवेक-सूर्य के उदित होने पर उसका कहाँ अस्तित्व ।

विवेक न होने से ही संसार के प्राणी-पदार्थों में मोह होता है । विवेक उदित होने पर मोह समाप्त हो जाता है । सद्गुरु अंतिम बात यही कहते हैं कि तुम विचारपूर्वक माया-मोह को देखो तो पाओगे वह खो गया है । सबसे अनासक्त होना ही असंगतता है और यही मौलिक स्वरूप में निवास हैं ।

**क्षमा, शील और संतोष के बारे में विचार :**

"सोना सज्जन, टूटि जुँ सौ बार ।

कुजन कुम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार ।।<sup>९८</sup>

महाकवि कबीर कहते कि सोने के गहने बनते हैं । वे अनेक बार टूटते हैं और उन्हें गलाकर पुनः उनके अनेक बार नये-नये गहने बना लिये जाते हैं । यही बात सज्जनों और साधुजनों की है । उनमें कारणवश कभी-कभी मत विभिन्नता हो जाय तो वे उसे अनदेख कर समय-समय पर परस्पर मिल लेते हैं । मत की भिन्नता संसार का स्वभाव है, परंतु इसको लेकर सज्जन तथा साधुजन मन में बैर नहीं बनाते । यदि कोई अपने मन में किसी के लिए वैर पालता है तो इससे उसकी अपनी ही हानि है । किसी के लिए भी मन में बैर पालने से मन की दशा खराब होती है । जहाँ मन की दशा ही खराब हो गयी वहाँ शांति कहां मिल सकती है । अगर कोई संत के प्रति विरोध करता है, उनकी ईर्ष्या में लगा हो, उनकी निंदा करता हो फिर भी सज्जन एवं संत उसे क्षमा करते रहते हैं । क्योंकि उसका चरित्र (शील) शुद्ध होता है । वे समझते हैं कि शरीर तो पानी का बुलबुला है । इसके फूटने में देरी नहीं लगती । फिर ऐसे क्षणभंगुर जीवन में किससे वैर किया जाय । वैर, विरोध ईर्ष्या में तो लाभ किसी का नहीं केवल हानि है । साधुजन अपने आप को दुर्जनो से बचाकर अपने मन को सदैव सबके प्रति स्वच्छ रखते हैं ।

साधु संतो के बिलकुल उलटे होते हैं कुजन एवं दुष्टजन । इनके लिए कुम्हार के बनाये मिट्टी के घड़े का उदाहरण उपयुक्त है । मिट्टी के घड़े को यदि एक बार धक्का लग जाय तो वह टूट जाता है और पुनः कभी नहीं जुड़ता । दुर्जन का स्वभाव ऐसा होता है यदि वे एकबार टकरा गए तो जीवनभर के लिए बैर बांध लेते हैं । कितने लोग एकबार फरक पड़ जाने पर सदा के लिए टूट जाते हैं और दूसरे से न बोलने या दूसरे अमुक के दरवाजे पर

न जानते का बिभत्स शपथ खा लेते हैं । वे मरते समय भी अपने बच्चो से भी कहे जाते हैं कि अमुक मेरा शत्रु है । उससे सम्बन्ध न रखना । बन सके तो उससे बदला लेना । इस तरह उसके जीवन में अंत तक क्षमा, शील, संतोष जैसे गुण ही नहीं होते । सिर्फ साधु संत ही ऐसे गुणवान होते हैं जो हरबार गलती होने पर क्षमा कर देते हैं । अपने गुणों से अपने चरित्र को बनाए रखते हैं और हर चीज में अपना संतोष मान लेते हैं ।

"क्षमा बडन को चाहिए, छोटन को उतपात ।

कहा विस्तु को घटि गयो, जो भृगु मारी लत ।।"९९

"शील, क्षमा जब उपजै, अलख दृष्टि तब होय ।

बिना खिल पहुँचै नहीं, लाख कथे जो कोय ।।"१००

"संतोष ही सहीदान है, शब्द ही भेद विचार ।

सतगुरु के परताप ते, सहज शील मत सार ।।"१०१

**दया और दीनता के बारे में विचार :**

"जहाँ दया वहाँ धर्म है, जहाँ लोभ वहाँ पाप ।

जहाँ क्रोध वहाँ काल है, जहाँ क्षमा वहाँ आप ।।"१०२

"दया दया सब कोई कहै, मर्म न जानै कोय ।

जात जीव जानै नहीं, दया कहाँ से होय ।।"१०३

"दया धर्म का मूल है, पाप मूल संताप ।

जहाँ क्षमा तहाँ धर्म है, जहाँ दया तहाँ आप ।।"१०४

कबीरजी कहते हैं कि जिसके घर में दया का गुण होता है वहाँ धर्म अवश्य पनपता है । वहाँ के लोग उदार होते हैं । जिस घरमें बड़े दिलवाले होते हैं वहाँ धर्म की स्थापना हमेशा होती है । उसका उलटा जिस घर में लोभ होता है उस घर में किसी न किसी तरह से कोई न कोई पाप करता रहता है । उस घर में लोग क्रोधित जल्दी हो जाते हैं । वहाँ दया, धर्म, पुण्य कुछ नहीं होता । जो लोग क्षमा को जानते हैं वहीं सच्चा धर्म है । वहीं भगवान का वास होता है । दया हमेशा धर्म का मूल रही है । दुःख हमेशा कुछ न कुछ पीड़ा देता रहता है । इसलिए क्षमा करना, दया करना वहीं सच्चे अर्थ में सच्चा संत है ।

"जो बुरा देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।

जो दिल खोजो अपना, मुझ सा बुरा न होय ॥"१०५

दास्य भावना की भक्ति के अन्तर्गत दीनता का आना स्वाभाविक ही है । आत्म-निवेदन करते समय भक्त अपने को अकिंचन मानकर भगवान की शरण में पहुँचता है । यह भगवान् के दरबार में भक्त का नम्र निवेदन होता है । कबीरजीने इस भावना के बहुत से पद लिखे हैं...

"कबीर कृत्ता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ,

गले राम की जेवडी, जित खिंचे तित जाऊँ ॥"१०६

उक्त पद में कबीरदास ने दीनता की हद कर दी है । यहाँ हमने कबीर की भक्ति के साधनों और उनकी विचारधारा पर संक्षेप में विचार करके देखा कि उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में भगवान की कृपा का ही विशेष रूप से आश्रय लिया है । क्रियात्मक प्रयास अर्थात् योग इत्यादि साधनों की ओर कोई विशेष बल नहीं दिया परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि आपने योग की निन्दा की है । निन्दा आपने भगवान-मिलन के किसी प्रतिष्ठित साधन की नहीं बल्कि थोड़ा बहुत जितना बन पड़ा है, समर्थन ही किया है ।

**कथनी और करनी के बारे में विचार :**

"कथनी मीठी खांडू सी करनी विष की लोय ।

कथनी से करनी करै, विषय से अमृत होय ॥"१०७

"गावै कथै विचारै, बाहीं, अनजाने का दोहा,

करहिं कबीर पारस परसे बिना, जस पाहन भीतर लोहा ॥"१०८

पारस पत्थर वैसे तो काल्पनिक है किन्तु बातों को समझाने के लिए उसका उदाहरण कवि-जगत में चलता है । जिस लोहा में खूब मोरचा लगा हो ऐसा लोहा चाहे पारस-पत्थर के भीतर ही पड़ा हो, वह सोना नहीं बन सकता । क्योंकि लोहा और पारस में मोरचा परदा बनकर दोनों का स्पर्श नहीं होने देता । यही दशा मलिनता में लिपटे हुए जीव की है । वे ज्ञान के ग्रंथ पढ़ते हैं, गाते हैं, उनका व्याख्यान करते हैं, परंतु बोध और आचरण की जगह पर कोरे-के-कोरे ही रहते हैं । जो व्यक्ति अपने में अहंकार, कामना तथा नाना मनोविकारों

का पालन करेगा, उसका वाक्यज्ञान उसके कल्याण में सहायक नहीं बन पायेगा । इसलिए कबीर कहते हैं कि...

"जैसी कहै करै जो तैसी, राग द्वेष निरुवारे ।

तामें घटे बढ़ै रतियो नहिं, यहि विधि आयु संवारे ॥ १०९

"जैसी कहै करै जो तैसी" बहुत बड़ी बात है । पुस्तकें पढ़कर, प्रवचन सुनकर तथा संसार की घटनाओं को देखकर मनुष्य को अनेक प्रकार की जानकारीयों प्राप्त हो जाती है । उन जानकारीयों को वह दूसरों के सामने सहज ही कह सकता है । परंतु उनके अनुसार अपने आचरण बनाने में त्याग और श्रम करने पड़ते हैं । थोड़ी भी जानकारी बहुत बड़ा काम कर देती है । यदि उसका आचरण जीवन में हो रहा है और बहुत बड़ी जानकारी किसी काम की जिसका आचरण आदमी नहीं करता है या कम करता है । किसी साधारण-से-साधारण आदमी से कह दो कि वह काम, क्रोध, लोभ, माया, मोह, राग, द्वेष आदि पर अपने विचार कहे, तो वह अपनी बुद्धि तथा वाक्यशक्ति के अनुसार यही कहेगा कि ये सब नरक के द्वार हैं परंतु वह उन्हें नरक समझकर उनका त्याग नहीं कर पाता बल्कि उन्हें बड़े प्यार से अपनाता है । इसका अर्थ यह है कि आदमी गलत को गलत जानता तो समझ जाता है और उसे गलत कहता भी है, परंतु उसे त्याग नहीं पाता, तो उसको वे जानना और कहना सार्थक नहीं होता । आदमी के जीवन में तब ऊँचाई आती है जब वह जिसे गलत समझता है उसको त्यागने के लिए कमर कस लेता है और जिसे सही समझता है उसे ग्रहण करने के लिए कमर कस लेता है ।

जितना कहने में आता है उतना तत्काल करने में तो किसी से भी नहीं आता, परंतु जिसे करने की चेष्टा है वह धीरे-धीरे अपनी कथनी को करनी में उतारता जाता है । कथनी को करनी में उतारना असंभव तो है ही नहीं, कठिन भी इसीलिए लगता है कि मनुष्य के मनमें विषयाशक्ति है परंतु जिसे कल्याण एवं जीवन में परम शांति की इच्छा है वह आचरण में जी-जान से डट जाता है । जैसी कथनी वैसी करनी की परिभाषा है "राग द्वेष निरुवारे ।" राग कहते हैं आसक्ति को और द्वेष कहते हैं कि किसी के लिए जलन एवं ईर्ष्या रखने को निरुवारने का अर्थ है छुड़ाना, हटाना या त्याग करना । राग, द्वेष ही संसार के बंधन हैं । राग के भीतर ही आसक्ति, कामना, लालसा, माया, मोह, ममता, काम, क्रोध, लोभ, आदि हैं और द्वेष के अन्दर ईर्ष्या, वैर, जलन, क्रोध, हिंसा, आदि हैं । इसीलिए कबीरजी कहते हैं कि...

"तामें घटे बढ़ै रतियों नहिं" अर्थात् उक्त स्थिति में रतीभर न घटे और न बढ़े । इसका अर्थ लाक्षणिक है और वह है एकरस एवं अचल रहना । हमारी राग-द्वेष विहीनता की स्थिति अविचल होनी चाहिए । किसी साधना में निरन्तरता एवं अविचल निष्ठा उस दिशा की सफलता की कुंजी है । राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त हो जाना साधना नहीं सिद्धि है । और सिद्धि की कसौटी यही है एकरस, अबोल, अडोल । राग द्वेष से सर्वथा मुक्त साधक शांत हो जाता है । सद्गुरु कहते हैं कि इस प्रकार अपना सुधार करना चाहिए । यही जीवन धारण करने का फल है ।

## दोनों संतो के विचारों की तुलना :

स्वामी प्राणनाथ लघु, दीर्घ और पिंगल चतुराई को जानते हुए भी इसका प्रयोग करना ठिक नहीं समझा और कबीरजी की वाणी तो सत्य को प्रेरणा देनेवाली वाणी है । सत्य के उद्घाटक सन्त का व्यक्तित्व विशाल क्षितिजों को स्पर्श करने के लिए उर्ध्वगामी जीवन-पथ पर अग्रसर होते हुए मानवता का पैगाम देता है ।

स्वामी प्राणनाथजी प्रथम सन्त थे, जिन्होंने सारे भारतवर्ष में सारे देश की जनता के लिए सबकी समझ में आ सके, ऐसी हिन्दुस्तानी भाषा को राष्ट्रभाषा या एक भाषा के रूप में अपनाने की सलाह देते हुए कहा है कि...

"बड़ी भाषा एही भली, जो सबमें जाहेर ।

करने पाक सबन को अंतर मांहे बाहेर ।।"

प्राणनाथजी के ये विचार राष्ट्रभाषा के प्रारंभिक विचार थे । यदि हमने पहले ही इसे समझने का प्रयत्न किया होता तो शायद आज राष्ट्रभाषा के नाम कोई लड़ाई न होती ।

स्वामी प्राणनाथजीने हिन्दुस्तानी भाषा के उपरांत फारसी, हिन्दी, सिन्धी, जाटी, गुजराती, उर्दू और खड़ीबोली का प्रयोग किया था । कबीरजीने सधुक्कड़ी, खीचड़ी भाषा को अपनाया था । इसके अलावा उन्होंने खड़ीबोली को अपनाया था । कबीरजी की भाषा कोमल परंतु गहरी है । इनमें कहीं कटुता तो कहीं समझ का आभास मिलता है । दोनों की भाषा में एक तो साम्य है ही कि दोनों ने आलोच्य दोनों संत कवि प्राणनाथ और कबीरने तत्कालीन राज्यभाषा को ही अपनाया था ।

स्वामी प्राणनाथजी और कबीरजी दोनों संत कवियोंने अपनी भावभूमि को, विचारों को कभी मात्राओं (भाषाओं) के बन्धन में बाँधना ठीक नहीं समझा ।

स्वामी प्राणनाथने अपने साहित्य में सर्वप्रथम खड़ीबोली का आरंभ करते हुए इसे हिन्दुस्तानी भाषा का नाम दिया था । मध्यकाल में शायद इसी कारण से ये बोलचाल की भाषा बनी रही थी । अतएव निर्गुण संतोंने हिन्दु-मुसलमान दोनों को सम्बोधित करके एक ही उपदेश सारी जनता तक पहुँचाने के लिए खड़ीबोली एवं सधुक्कड़ी भाषा का सहारा लिया । स्वामी प्राणनाथने भी खड़ीबोली का ही प्रयोग आजमाया था । संत कबीरजीने सधुक्कड़ी एवं खीचड़ी भाषा का प्रयोग किया था । परंतु एक बात जरूर है कि दोनों सन्तों ने जनसमाज की भाषा को ही अपना कर अपने विचार प्रस्तुत किये थे ।

स्वामी प्राणनाथजीने अपने विचार को प्रस्तुत करते हुए अपने देश के प्रति अपना प्रेम, एवं भक्ति प्रस्तुत की है उन्होंने देश के लिए मर-मिटने का संदेश दिया है । साथ ही स्वामी प्राणनाथ जीने गुरु भक्ति करने के लिए भी आवश्यक माना है । कई लोग कहते हैं कि गुरु की क्या आवश्यकता है । प्रवचन सुनकर, संतो से मिलने के गुरुभक्ति हो जाती है । स्वामी प्राणनाथजी इसे नहीं मानते । वे कहते हैं कि गुरु का जीवन में होना आवश्यक है । तभी तो ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है वरना कोई हमारा हाथ नहीं थामेगा । सद्गुरु कबीर भी कहते हैं कि इन्सान के जीवन में सद्गुरु का होना अति आवश्यक है । उसीसे जीवन सफल होता है ।



स्वामी प्राणनाथजीने अपने साहित्य में जनभाषा का प्रयोग किया है ताकि लोग आसानी से समझ सकें जब कि कबीरजी की भाषा गहन एवं तत्काल समझ न आए ऐसी है बहुत ही गहरी। स्वामी प्राणनाथजीने खड़ीबोली के साथ हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है क्योंकि ये हमारी राष्ट्रभाषा है। स्वामी प्राणनाथजीने ईश्वर की एकात्म भावना को प्रस्तुत करके ईश्वर के प्रति प्रेमभक्ति प्रस्तुत की है। उनका कहना है कि मनुष्य के जीवन का आखरी लक्ष्य मोक्ष ही है और वह मोक्ष ईश्वर के अलावा और कोई नहीं दे सकता। इसलिए ईश्वर के प्रति भक्ति, राम नाम, नाम स्मरण आवश्यक है। कबीरजी कहते हैं कि ईश्वर के साथ तादात्म्यभाव रखने से मन शुद्ध, पवित्र बनता है। अच्छे लोगों की संगति करने से हम प्रभु के सेवक बन जाते हैं। और प्रभु सेवक की हरबार मुश्किल में मदद करते हैं। इसीलिए साधु संतो के संग से हमारा जीवन भी सफल हो जाता है।

स्वामी प्राणनाथजी कहते हैं कि भगवान की भक्ति करना अच्छा है परंतु अंधश्रद्धा रखना मिथ्या है। बाह्याङ्ग पर भरोसा करना हमारा वहेम है। कबीरजी कहते हैं कि हमें कभी क्रोध नहीं करना चाहिए। जो आदमी काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह में पड़ जाता है उसका नाश अवश्य होता है। वो खुद तो अच्छी तरह से नहीं जी पाता उसके साथ दूसरे लोग भी पीड़ा के सहभागी अनायास ही बन जाते हैं। इसीलिए उसका जीवन तहस-नहस हो जाता है। अपने स्वार्थ में इतना अंधा हो जाता है कि दूसरों का दुःख उसे नहीं दिखाई देता। परमार्थ के बारे में सोचने का वक्त ही उसे नहीं मिलता दूसरों के दुःख में सहभागी बनना अपने आप को भाग्यशाली समझना चाहिए किन्तु लोग मद, मोह में इतने अंधे हो जाते हैं कि दूसरों के लिए नहीं अपने स्वार्थ के लिए जीते हैं।

स्वामी प्राणनाथजी मानवमात्र के प्रति सहानुभूति रखने के लिए कहते हैं। उनका कहना है कि आज के युग में मनुष्य इतना दुःखी है कि हर जगह उसे दुःख ही मिलता है कहीं पर सुख की प्राप्ति उसे नहीं होती। उसके दुःख में सहभाग बनने से उसको सुख मिलता है जब कि कबीरजी कहते हैं कि अगर किसी से गलती हो जाय तो उसे क्षमा कर देना चाहिए। क्षमा से उसके जीवन में सुधार आ सकता है। उसे खुशी मिलती है। उसके प्रति दया रखने से उसका जीवन, उसका चरित्र बदल सकता है। वो संतोष का अनुभव करता है।

कबीरजी कहते हैं कि हमारी कथनी अच्छी है तो करनी भी वैसी ही अच्छी रहेगी। कथनी का मतलब कहना। इसका अर्थ यह हुआ है कि हम जैसा कहें वैसा करेंगे तो हमारा जीवन सफल हो जाएगा। इसलिए हम वोही कहे जो हम कर सकें। कहते हैं कि दूसरों को उपदेश देना आसान है परंतु उसे ग्रहण करना, उसका अनुकरण करना उतना ही कठिन है। इसीलिए पहले हमें वोही कहे जो हम कर सकें।

अतः कह सकते हैं कि दोनों संतो स्वामी प्राणनाथजी एवं कबीरजी के विचारों में बहुत सी साम्यता दिखाई देती हैं।

## चेप्टर -४

-:: संदर्भसूचि ::-

| क्रम | पुस्तक का नाम                               | लेखक का नाम                            | प्रकाशन वर्ष                          | पृ.नं. |
|------|---|--|---------------------------------------|--------|
| (१)  | रघुवीर सहाय की भूमिका<br>में वैचारिक भूमिका | डॉ. सुधाबहन सी.<br>पौराणा              | २००९-१०<br>ईल्हाबाद                   | पृ-१०  |
| (२)  | रघुवीर सहाय की भूमिका<br>में वैचारिक भूमिका | डॉ. सुधाबहन सी.<br>पौराणा              | २००९-१०<br>ईल्हाबाद                   | पृ-१०  |
| (३)  | रघुवीर सहाय की भूमिका<br>में वैचारिक भूमिका | डॉ. सुधाबहन सी.<br>पौराणा              | २००९-१०<br>ईल्हाबाद                   | पृ-१०  |
| (४)  | रघुवीर सहाय की भूमिका<br>में वैचारिक भूमिका | डॉ. सुधाबहन सी.<br>पौराणा              | २००९-१०<br>ईल्हाबाद                   | पृ -११ |
| (५)  | रघुवीर सहाय की भूमिका<br>में वैचारिक भूमिका | डॉ. सुधाबहन सी.<br>पौराणा              | २००९-१०<br>ईल्हाबाद                   | पृ-११  |
| (६)  | रघुवीर सहाय की भूमिका<br>में वैचारिक भूमिका | डॉ. सुधाबहन सी.<br>पौराणा              | २००९-१०<br>ईल्हाबाद                   | पृ-११  |
| (७)  | रघुवीर सहाय की भूमिका<br>में वैचारिक भूमिका | डॉ. सुधाबहन सी.<br>पौराणा              | २००९-१०<br>ईल्हाबाद                   | पृ-१२  |
| (८)  | महामति प्राणनाथ वाङ्मय<br>विमर्श            | डॉ. रणजीत साहा                         | सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय,<br>राजकोट | पृ-३२५ |
| (९)  | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ          | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी                               | पृ-०२  |
| (१०) | महामति प्राणनाथ मनीषा                       | श्री जगदीश महाराज<br>शास्त्री          | श्री ५-नवतमपुरी धाम,<br>जामनगर        | पृ-४९  |
| (११) | महामति प्राणनाथ मनीषा                       | श्री जगदीश महाराज<br>शास्त्री          | श्री ५-नवतमपुरी धाम,<br>जामनगर        | पृ-४९  |



|      |                                    |  |   |            |
|------|------------------------------------|--|---|------------|
| (२९) | महामति प्राणनाथ वाङ्मय<br>विमर्श   | श्री जगदीश महाराज<br>शास्त्री          | श्री ५-नवतमपुंरी धाम,<br>जामनगर                       | पृ<br>-३११ |
| (३०) | महामति प्राणनाथ वाङ्मय<br>विमर्श   | श्री जगदीश महाराज<br>शास्त्री          | श्री ५-नवतमपुंरी धाम,<br>जामनगर                       | पृ<br>-३१३ |
| (३१) | कबीर पदावली एक<br>अध्ययन           | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन सी.<br>पौराणा | शोधाछात्रा<br>देवी आर. वाला,<br>सौराष्ट्र युनिवर्सिटी | पृ -०१     |
| (३२) | कबीर पदावली एक<br>अध्ययन           | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन सी.<br>पौराणा | शोधाछात्रा<br>देवी आर. वाला,<br>सौराष्ट्र युनिवर्सिटी | पृ -०१     |
| (३३) | कबीर पदावली एक<br>अध्ययन           | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन सी.<br>पौराणा | शोधाछात्रा<br>देवी आर. वाला,<br>सौराष्ट्र युनिवर्सिटी | पृ -०२     |
| (३४) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी   | पृ -०७     |
| (३५) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी   | पृ -१२     |
| (३६) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी   | पृ -१२     |
| (३७) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी   | पृ -१४     |
| (३८) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी   | पृ -१५     |
| (३९) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी   | पृ -११     |
| (४०) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी   | पृ -२१     |
| (४१) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी   | पृ -७०     |







|      |                                    |  |         |         |
|------|------------------------------------|--|---------|---------|
| (८०) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम साहेब    | वाराणसी | पृ -१२० |
| (८१) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ -१२० |
| (८२) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-१२०  |
| (८३) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-१२१  |
| (८४) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-१२२  |
| (८५) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-१२३  |
| (८६) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-१२६  |
| (८७) | सद्गुरु कबीर विरचित<br>बीजक        | - व्याख्याकर<br>-अभिलाषदास             |         | पृ-१२१८ |
| (८८) | सद्गुरु कबीर विरचित<br>बीजक        | - व्याख्याकर<br>-अभिलाषदास             |         | पृ-१२३८ |
| (८९) | सद्गुरु कबीर विरचित<br>बीजक        | - व्याख्याकर -<br>अभिलाष दास           |         | पृ-१२३८ |
| (९०) | कबरी साहब का साखी<br>ग्रन्थ        |  |         | पृ-१३४  |
| (९१) | श्री सद्गुरु कबीर विरचित<br>बीजक   | - व्याख्याकर<br>-अभिलाष दास            |         | पृ-१२२४ |
| (९२) | श्री सद्गुरु कबीर विरचित<br>बीजक   | - व्याख्याकर<br>-अभिलाष दास            |         | पृ-१२२५ |
| (९३) | श्री सद्गुरु कबीर विरचित<br>बीजक   | - व्याख्याकर<br>-अभिलाष दास            |         | पृ-१४८० |
| (९४) | कबीर साहब का साखी ग्रंथ            |  |         | पृ-१९८  |
| (९५) | श्री सद्गुरु कबीर विरचित<br>बीजक   | - व्याख्याकर<br>-अभिलाष दास            |         | पृ-१६३६ |



|       |                                    |  |         |         |
|-------|------------------------------------|--|---------|---------|
| (९६)  | श्री सद्गुरु कबीर विरचित<br>बीजक   | -व्याख्याकर<br>-अभिलाष दास             |         | पृ-८८६  |
| (९७)  | श्री सद्गुरु कबीर विरचित<br>बीजक   | - व्याख्याकर<br>-अभिलाष दास            |         | पृ-९१०  |
| (९८)  | श्री सद्गुरु कबीर विरचित<br>बीजक   | - व्याख्याकर<br>-अभिलाष दास            |         | पृ-१४६१ |
| (९९)  | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-३५७  |
| (१००) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-३५८  |
| (१०१) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-३५९  |
| (१०२) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-३६३  |
| (१०३) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ -३६३ |
| (१०४) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-३६३  |
| (१०५) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-३६५  |
| (१०६) | कबीर साहित्य और सिद्धांत           |  |         | पृ-८०   |
| (१०७) | कबीर साहब का साखी<br>ग्रंथ         | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-२१८  |
| (१०८) | सद्गुरु कबीर विरचित<br>साखी ग्रंथ  | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-१४९४ |
| (१०९) | सद्गुरु कबीर साहब का<br>साखी ग्रंथ | पं.श्री हजूर<br>प्रकाशमणि नाम<br>साहेब | वाराणसी | पृ-१५०८ |

## अध्याय-५

### आलोच्य संत कवियों के काव्यों में धर्मदर्शन, जीवनदर्शन और युग संदेश

#### ५.१.१ धर्मदर्शन :

धर्म मनुष्य जीवन की अनमोल निधि है । मनुष्य जब अपनी इच्छानुसार फल नहीं पाता तब वह अदृष्ट के बारे में सोचकर उन्हीं के भरोसे जीवननैया छोड़ देता है। यह मनुष्य जीवन का स्वभाव है । अलबता युग की विचारधारा के अनुसार धर्म बदलता है – धर्म विविध रूप को ग्रहण करता रहता है परंतु धर्म की भावना का नाश नहीं होता । ईश्वर के अस्तित्व के लिए मानव जाति हमेशा अड़िग और दृढ़ निश्चयी रही है । मानवी का विश्वास इस अदृष्टा के अस्तित्व के लिए हमेशा सहमति दर्शाता रहा है । इसलिए धर्म या संप्रदाय कोई भी हो, अदृष्टा परमात्मा के लिए धर्म प्रणेता का विचार अपना मूल्य रखता है ।

#### प्रणामी धर्मदर्शन में ब्रह्म :

प्रणामी संकल्प के धर्मदर्शन का धरातल हिन्दु धर्म में प्रेरणास्त्रोत के समान हिन्दु ग्रन्थ ही रहा है । श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, उपनिषदों एवं पुराणों की विचारधारा का प्रभाव इस सम्प्रदाय की विचारधारा पर लक्षित होता है । स्वामी प्राणनाथजीने क्षर, अक्षर से पर अक्षरातीत पूर्ण ब्रह्म को ही परमात्मा के रूप में स्वीकारा है ...

"पूर्ण ब्रह्म ब्रह्म से न्यारे ।

आनन्द अखण्ड अपार ॥<sup>१</sup>

यह पूर्ण ब्रह्म क्षर, अक्षर से पर या अतीत होने से अक्षरातीत कहलाये हैं । इस जगत की जीवात्मा इस अक्षरातीत परमात्मा के घर से आती है...

"मेरे तो जीऊ पीऊ धामके ।

ए जो अक्षरातीत अखण्ड ॥<sup>२</sup>

प्रणामी संप्रदाय परमात्मा को विविध नामों से पुकारता है फिर भी सम्प्रदाय ज्यादातर सच्चिदानन्द नाम को ही महत्त्व प्रदान करता है ।<sup>२</sup>

"केवल ब्रह्म अक्षरातीत ।

सत् चिद् आनन्द ब्रह्म ॥<sup>३</sup>

सच्चिदानन्द नाम से सत्, चिद् और आनन्द तीनों की ध्वनि सुनायी देती है । सत् नाम अखण्ड का द्योतक है । चित् नाम चेतना का द्योतक है । चेतन अर्थात् ज्ञान, और ज्ञान अनुभव का दूसरा नाम है । परमात्मा अद्वैत होने से स्वयं अपने ही आनन्द का अनुभव करते हैं । अतः परमात्मा का आनन्द रूप ही इस सम्प्रदाय को स्वीकार्य है । सत्, चिद्, आनन्द रूप वही अक्षरातीत ब्रह्म है ।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी ब्रह्म के तीन रूपों की कल्पना आलेखित हुई है । ब्रह्म के क्षर, अक्षर और अक्षरातीत ऐसे तीन स्वरूप, जो गीता में स्वीकार किये गये हैं, इसकी अभिव्यक्ति इन शब्दों में हुई है...

"द्वाविभौपुरुषौ लोके क्षरअक्षर एवच ।

क्षरः सर्वाणि भूतानिकूटस्थाक्षरः उच्चते ।

उत्तमः पुरुष स्तवन्यः परमात्मेच्युदाहृतः

योलोक त्रयमाविश्य विभर्त्यव्ययईश्वरः ॥<sup>४</sup>

यस्मात्क्षरमतीतो इमक्षरादपि चोत्तमः ।

अतोऽस्मिलोके वेदे न प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

गीताकारने क्षर को नश्वर, अक्षर को अविनाशी क्षौर अक्षरातीत को परात्पर नित्य अखण्ड उत्तम पुरुष माने हैं । वही अक्षरातीत ब्रह्म परमात्मा है ।

"पार पुरुष पिया एक है ।

दूसरा नाहिन कोय ॥<sup>५</sup>

जड़ और चेतनात्मक जगत् क्षर है । अक्षर ब्रह्म कूटस्थ है अर्थात् नित्य है, परंतु इन दोनों से परमात्मा भिन्न है । इस परमात्मा की आराधना ही सर्वश्रेष्ठ और उत्तमोत्तम आराधना है । इस ब्रह्म परमात्मा को पूर्णतया पहचानने के बाद आराधना करने से मोक्ष प्राप्ति होती है ।

"अक्षरं ध्रुवमेवोत्क पूर्णब्रह्म सनातनम् ।

कूटस्थ चैव नित्यं च वदन्ति पुराविदः ॥<sup>६</sup>

विद्वत्जन अक्षर ब्रह्म को पूर्णब्रह्म, कूटस्थ, सनातन और नित्य आदि नामों से पुकारते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म या सच्चिदानन्द रूप माने गये हैं । अक्षर ब्रह्म से वे उत्तम होने के कारण वे पुरुषोत्तम भी हैं। कार्यकारण में भेद न होने से कार्यरूप जगत् कारणरूप ब्रह्म ही है । जगत् का आविर्भाव कार्य भी परमात्मा की एक लीला मात्र ही है ।<sup>७</sup>

परमात्मा के अनेक नाम हैं । सारे नाम सत्य भी हैं, परंतु परमात्मा के सारे नाम उनके विशेषण मात्र हैं । परमात्मा के नाम परमात्मा की विशेषता बतलाने के कारण उनका कोई एक नाम निश्चित करना असम्भव सा है । परमात्मा की आराधना करने के लिए परब्रह्म, सच्चिदानन्द, कृष्ण, राम, धामधनी, राज, सनातन और अक्षरातीत इत्यादि नामों का प्रयोग होता रहता है । इनमें श्रीराम नाम को प्रणामी सम्प्रदाय उपास्य मानता है । राज शब्द का अर्थ...

"राजतं स्वयं प्रकाशते यः स राजः" अर्थात् जो स्वयं प्रकाशमान है वहीं 'राज' कहते हैं । परमात्मा का प्राणनाथजी शुद्ध साकार रूप स्वीकार करते हैं, क्योंकि लीला साकार रूप में ही संभव है, निराकार होकर लीला करना संभव नहीं "<sup>८</sup>

निराकार तो शून्य का नाम है, जिसमें आकार ही नहीं, इसमें कर्तव्य शक्ति का होना भी संभव प्रतीत नहीं होता । निराकार- निर्गुण होता है । उसमें आनंद भी नहीं है और न ही वह ध्यान करने योग्य है । इसलिए परमात्मा निराकार नहीं है, परन्तु मन और वाणी से अगोचर है, दिखायी नहीं देते । अतः निर्गुणवादी सन्त इन्हें निराकार कहने का संतोष प्राप्त

कर सकते हैं । सच्चाई यह है कि निराकार ईश्वर को स्वीकार करनेवाले भी साकार रूप को मानते ही हैं । इस्लाम निराकार परमात्मा में विश्वास करता है, परंतु हजयात्रा में वे काबा और कर्बला के काले पत्थर को चूमते हैं । शंकराचार्य ने तो इन दोनों रूपों का खण्डन किया है । उन्होंने लिखा है कि।।।

"साकारस्य बिनाशोऽस्ति निराकारस्य शून्यत्वाच्छून्यस्य,

या वस्तुत्वादुभय पक्ष विभिन्न वस्तु ज्ञानं मोक्ष : ।।<sup>९</sup>

अतः साकार निराकार दोनों से भिन्न जो परमात्मा चिन्मय स्वरूप है वही मोक्ष है । साकार पूर्ण ब्रह्म अद्वैत है किन्तु लीला के समय द्वैतरूप धारण होने के कारण वह स्वलीलाद्वैत है । वह दिव्य गुणों का आधार दिव्य स्वरूप है । सदा सर्वदा एकरस है अखण्ड है । स्वयं प्राणनाथजी इसे रसपूर्ण मानते हुए लिखते हैं कि...

"रसप्रेम सरूप है चित ।

के विध रंग खेलत ।।<sup>१०</sup>

परंतु प्राणनाथजीने इसे निराकार रूप में भी स्वीकारा है । उन्होंने स्वयं कहा है कि निश्चय ही वह प्राकृतिक शरीर से रहित हैं।<sup>११</sup> और सर्वपदार्थ एक ब्रह्मरूप होने से अद्वैत है। प्राणनाथजी स्वयं लिखते हैं कि.....

"खसम जो अद्वैत की सो कहावे शब्दातीत ।<sup>१२</sup>

क्षर और अक्षर उसके अंशरूप स्थित है...

"क्षर भी तती अक्षर थया ।

अने अक्षरातीत कहवाये ।।<sup>१३</sup>

ऐसे अक्षरातीत परमात्मा ही प्रणामी सम्प्रदाय में उपास्य हैं । सुवर्ण के समान प्रकाशवाले अपनी इच्छानुसार लीला करनेवाले और प्रत्येक प्राणी के कारणभूत अक्षरातीत परमात्मा को जो विद्वान जान लेता है, वह लौकिक सुख दुःखो को त्यागकर परम शान्ति पाता हुआ सच्चिदानन्द ब्रह्म को पा लेता है ।<sup>१४</sup> प्रणामी संप्रदाय ईस सच्चिदानंद स्वरूप

परमात्मा को 'स्वलीलाद्वैत' मानता है । इसका हेतु यही है।। श्रुति स्मृति में ब्रह्म के दिव्य अलौकिक नित्यनिगृह तथा शक्तिसमूह एवं धाम, वन, सरोवर आदि सामग्री का वर्णन किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है । अतः ब्रह्म को अनन्त शक्ति धाम, लीलादि सामग्री से पूर्ण ही अद्वैत मानना चाहिए । परमात्मा दिव्य गुणों का आधार, दिव्य स्वरूपवाला है । निश्चय ही वह प्राकृतिक शरीर से रहित है ।<sup>१५</sup>

पूर्ण ब्रह्म परमात्मा पाँच गुणों से सम्पन्न माने गये हैं । सत्, चिद्, आनन्द अनन्त और अद्वैत,<sup>१६</sup> सत् से हर एक पदार्थ में सतात्मक स्वरूप सर्वत्र व्याप्त है । चिद् से चैतन्य धर्मावच्छिन्न, नित्य ज्ञानपूर्ण है । आनन्द से धर्मावच्छिन्न, पूर्णात्पूर्ण सदा सर्व सुखदाता, नित्यलीला, विशिष्ट और सर्वत्र सता मात्र से आनन्द प्रदान करनेवाला है, अनन्त से धाम, गिरि, नदि, वृक्षादि तथा जो जो पदार्थ हैं वे सब सच्चिदानन्द स्वरूप अद्वैत अनन्त लक्षणयुक्त विद्यमान है । अद्वैत से सदा सर्वदा एकरस, अखण्ड और सर्वपदार्थ एक ब्रह्म स्वरूप होने से अद्वैत स्वरूप है । उनसे पर कुछ भी नहीं, अतः पूर्ण परिचय से इस अक्षरातीत परब्रह्म, जिसकी उपासना प्रणामी सम्प्रदाय कृष्णनाम से करता है, कृष्ण की उपासना के लिए स्वयं प्राणनाथजीने लिखा है ।

"अष्टकले एक केम पामीए, एतो नहीं पंथी प्रपंच मारा ऐने पगले न पहुँचाये, जहाँ चोकस न किजे सम्बन्धी । जहाँ अटकल तहाँ भ्रान्तड़ी अने भ्रान्त तो यह आड़ी चित मारा सम्बन्धी । पार जबाये पूरण दृष्टें, हौं रजन समाये पंपाल पाल।।<sup>१७</sup>

यह परब्रह्म परमात्मा अक्षरातीत परमात्मा वहाँ निवास करते हैं । उस परमधाम को दिव्य ब्रह्मपुर कहा गया है और वह अद्वैत, अखण्ड, एकरस एवं आनन्दधन, सर्वप्रकारकी सच्चिदानन्द सामग्री से युक्त है । अक्षरातीत परमात्मा का लीला स्थान परमधाम है । पूरा अक्षरब्रह्म परब्रह्म का प्रतिबिम्ब है । परमतत्त्व को कोई नहीं जान सकता, क्योंकि हम सब उसके हिस्से में सागर की बूंदे हैं । इसके स्वरूप को देवता भी नहीं पहचान सकते । स्वयं विष्णु भगवान कहते हैं कि ।

"अहम् ब्रह्मा, अहम् विष्णु शिवइहमिति मोहिता ।

न जानयो वयं घातः परं वस्तु सनातनम् ॥<sup>१८</sup>

नारायणजी कहतै है कि...

"यत्प्रभाव न जानन्ति ब्रह्मविष्णु महेश्वराः ।

कथं जानानि तच्चेष्टामहं वत्स सुमन्द धीः ॥<sup>१९</sup>

अर्थात् हे नारद ! ब्रह्मा, विष्णु, महादेव उसके प्रभाव को नहीं जानते फिर मैं उसके कार्य को कैसे जान सकता हूँ ? इसीमें आगे चलकर बताया गया है कि...

"सरस्वती जड़ीभूता यं स्तोतु परमेश्वरम् ।

माहमानं न जानन्ति वेदा यस्य न शारदा ॥<sup>२०</sup>

अर्थात् जिस परमात्मा की प्रार्थना करने में सरस्वती भी असमर्थ है और जिसकी महिमा वेद भी नहीं जान सकते, उसका वर्णन मैं कैसे करूँ ? जिस पूर्णब्रह्म परमात्मा की महत्ता को ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, सरस्वती, नारायण और वेद न जान सकु, तो दूसरा लोग तो जानते भी कैसे ? इसीलिए प्राणनाथजी ने लिखा है कि ...

"सो वेता ही बोलिया, जो गया जहाँ लो चला ।"<sup>२१</sup>

हम इतना ही दुख पाते हैं, जहाँ हम हैं, जहाँ हमारी चेतना का विकास नहीं वहाँ परम चेतना को नहीं देख पाते । इसलिए हमने अपने ज्ञान के मुताबिक देवता को ही परमात्मा मानकर पूजा करना प्रारम्भ किया । परिणामतः परमात्मा की पूजा के वास्तविक स्वरूप को जानकर की गई उपासना ही अभिष्ट फल को प्रदान करती है ।

श्रीमद्भगवद्गीता यजन्ते श्रद्धयान्वितः ।

येऽपि मामेव कौन्तेय पूजन्त्य विधि पूर्वकम् ॥"<sup>२२</sup>

अर्थात् हे अर्जुन ! जो अन्य देवताओं के भक्त श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं, वह भी मेरी ही पूजा करते हैं। परमात्मा की विधिपूर्वक की हुई पूजा अखण्ड मुक्तिप्रदान करती है।

परमात्मा आनंद का सागर है, जिसका एकबार स्वाद लेकर अन्य स्वाद के प्रति दृष्टि ठहरती नहीं । निजानन्द स्वामीने उस महान आनन्द के सागर को परमधाम कहा है ।<sup>२३</sup> इस परमात्मा में परम अस्तित्व का विराट रूप छिपा है, जिसमें जड़ चेतन सृष्टि समाहित हो जाती है। निजानन्द स्वामी परमधाम कहकर असीम आनन्द की अनुभूति का वर्णन करते हैं । उसमें रूप संजोते हैं । श्रीमद्भगवद्गीतामें परमात्मा को सर्वव्यापक बताया है । प्रणामी संप्रदाय एवं प्राणनाथजीने भी ईश्वर की सर्वव्यापकता को स्वीकार करते हुए लिखा है कि इस सृष्टि में जो भी मूल तत्त्व हैं, वे सब छिपे हुए हैं । जो प्रकट होता है वह ऊपरी खाल की आत्मा है ।<sup>२४</sup>

सर्वव्यापकता परमात्मा, जब भी पृथ्वी पर अधर्म का भार बढ़ जाता है तब अवतार धारण करके सज्जनों का उद्धार करते हैं । श्रीमद्भागवदगीता में भी कहा है कि,

"यदा यदा ही धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।<sup>२५</sup>

कहकर इस बात की पुष्टि कर दी गयी है । प्रणामी संप्रदाय भी अवतारवाद की इस परम्परा को स्वीकार करता है । प्रणामी संप्रदायने विष्णु के अवतार लीला अवतार और पूर्णवतार में विभाजित किये हैं । स्वयं गुरु देवचन्द्रजी को भी आदेशावतार और प्राणनाथजी का प्रवेश अवतार माने गये हैं ।<sup>२६</sup> लेकिन ब्रजलीला करनेवाले कृष्ण विष्णु की सोलहकला, सर्व देवराशि, चार व्यूह, नवरस इत्यादि, युक्त समझे जाते हैं । उसे ही पूर्णवतार की संज्ञा दी गयी है । स्वामी प्राणनाथजी लिखते हैं कि ...

"बाल चरित्र लीला जीवन कै विद्यस्नेह किए सैपनी ।

के लिए प्रेम वालस जो सुख, सो मैं केता कहूँ या मुख ।।<sup>२७</sup>



संत कवि सूरदासने कहा है कि ...

"वेद ऋचा होई गोपिका हरि सो कियो विहार ।।<sup>२८</sup>

बृहदवामन पुराण की कथा के समान ही प्राणनाथजी की वाणी है कि ...

"कालमाया को यह दण्ड, उपज्यो और जाने साईं ब्रह्माण्ड । ये तीसरा दण्ड नया भया जाके जब अक्षर की सुरत का सब पाहि सुरत की सखिया भई, प्रतिबिम्ब वेद ऋचा जो कही ।

जिनको कह्यो उद्ग स्वप्न योगारम्भ सो क्यों माने प्रेमलीला प्रतिबिम्ब ।।<sup>२९</sup>

स्वामी प्राणनाथ और प्रणामी संप्रदायने साकार निराकार से परिपूर्ण ब्रह्म परमात्मा को अपना उपास्य माना है । सगुण की उपासना करनेवाले को मुक्ति नहीं मिलती परंतु अधिक सुख प्राप्त कर सत्यलोकादिक को प्राप्त हो जाता हैं । वह स्थायी नहीं किन्तु महान सुखदाता अवश्य है । निर्गुण निराकार जो बोले नहीं, सुने नहीं, ऐसे निरस, निश्चेष्ट निर्गुण ब्रह्म की उपासना से परिपूर्ण ब्रह्म परमात्मा का प्रतिपादन किया है । शंकराचार्यने भी कहा है कि,

"साकारस्य विनाशो-स्ति निराकारस्य शून्यत्वाच्छून्यस्य ।

चावस्तुत्वदुभय पक्ष विभिन्न वस्तुज्ञानं मोक्ष ।।<sup>३०</sup>

"कटुकर और कृष्णने अर्जुन को श्रीदम्भागवद्गीता में ।

त्रेगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।।<sup>३१</sup>

कहकर त्रिगुणात्मक सृष्टि से भिन्न परमात्मा को पहचानकर आत्म-कल्याण करने का सुझाव दिया है ।

सच है, विद्वान भक्त निराकार परमात्मा में आस्था रखते हुए भी 'ॐ' कार नाम स्मरण करके 'ॐ' कार धातु पर कंडारकर इसकी पूजा तो करते ही हैं । इसीलिए विद्वत्जन सत्, चित् और आनन्द स्वरूप सच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की शरण ग्रहण करते हैं । परमात्मा के अस्तित्व के लिए विविध शास्त्रों के ज्ञान की सहायता लेकर प्राणनाथजी के गुरु श्रीनिजानन्द स्वामीने तारतम्य निश्चित किया और बाद में इस निचोड़ को तारतम्यज्ञान

कहकर विभूषित किया । इस तारतम्यज्ञान को हृदयंगम कर लेने से शास्त्रोक्त ज्ञान की संगति जम जाती है, सभी आध्यात्मिक समन्वय का साररूप तारतमज्ञान पर प्रकाश श्री निजानन्द स्वामी को सर्वप्रथम साक्षात् परमात्माने दिया । इस ज्ञान को तारतममंत्र का नाम दिया गया । इसके आधार पर सर्वधर्म समन्वय का लक्ष्य लेकर निजानन्द सम्प्रदाय अथवा प्रणामी सम्प्रदाय की स्थापना कर दी गयी ।

### कबीरपंथ के धर्मदर्शन में ब्रह्म :

"प्रथम एक जो हैं । किया, भया सो बारहबान ।

कसत कसौटी ना टिका, पीतर भया निदान ।।<sup>३२</sup>

सर्वप्रथम केवल एक ब्रह्म था । उसने सोचा कि मैं एक हूँ, परंतु बहुत हो जाऊँ और वह एक से अनेक अर्थात् जगत बन गया । यह सिद्धांत खरा सोना के समान बड़ा सच्चा लगा । परंतु जब इसे परख की कसौटी पर कसा गया तब यह सत्यरूप में नहीं ठहरा अंतः पीतल सिद्ध हुआ ।

कबीर कहते हैं कि पुरातनकाल में ऐसे चिन्तक हुए हैं जिन्होंने यह कल्पना की कि सर्वप्रथम केवल एक ब्रह्म थे । उसके अलावा और कुछ नहीं था । उसे अकेले में आनंद नहीं आया "एकाकी न रमते ।" अतएव उसने सोचा कि मैं एक हूँ परंतु प्रजा के रूप में अनेक हो जाऊँ - "एको-हं बहु स्पां प्रजायेय ।" फिर सृष्टि हो गयी । इन सबका अर्थ यह है कि पहले जगत नहीं था, केवल एक अखण्ड शुद्ध चेतनस्वरूप ब्रह्म थे । उसीने जगत बनने की इच्छा की और वह स्वयं जगत बन गया । इस सिद्धांत को लोग बड़ा महत्त्वपूर्ण मानने लगे । आज भी जो लोग विवेक नहीं करते वे इस सिद्धांत को महत्त्वपूर्ण मानते हैं । परंतु जब इस पर परख की कसौटी लगायी गयी तब असत्य सिद्ध हुआ । ब्रह्मवादीजन ब्रह्म को स्वजाति, विजाति और स्वगत भेद से रहित निर्विकार, एक अखण्ड सर्वत्र व्याप्त और शुद्ध चेतन मानते हैं, फिर उसमें स्फूर्ति, संचालन, क्रिया, विकार हो ही नहीं सकते । जहाँ क्रिया और विकार ही संभव नहीं वहाँ सृष्टि का होना कैसे संभव होगा । इसके अलावा ब्रह्म को

सच्चिदानंद कहा जाता है । अर्थात् वह सत् है, चिद् है और आनंदस्वरूप है । परंतु जगत असत्, अचिद् और कलेशमय है, तो सत् के असत् चिद् से अचिद् और आनंद स्वरूप से कलेशरूप जगत कैसे बन सकता है । वैशेषिक/ वैश्विक सूत्रकार कणाद ऋषि कहते हैं कि कारण के गुण के अनुसार ही कार्य में गुण होता है ।<sup>३३</sup> अर्थात् जो गुण कारण में होगा वही कार्य में होगा । कारण से सर्वथा हटकर कार्य में गुण नहीं आ सकते और चेतन से जड़ तथा जड़ से चेतन तो हो ही नहीं सकते । फिर शुद्ध ब्रह्म से अशुद्ध जगत कैसे बन गया ।

ब्रह्म शुद्ध चेतन है और वह मैं ही हूँ- अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म तथा प्रश्वानं ब्रह्म अर्थात् ब्रह्म हूँ, वह तू है यह आत्मा ब्रह्म है और यह ज्ञान ही ब्रह्म है - ब्रह्म की यह सरल एवं शुद्ध परिभाषा ही ठीक है । परंतु उसे जहाँ सर्वत्र व्याप्त तथा जगत का अभिन्ननिमित्त उपादान कारण कहा जायेगा वहीं उसके विषय में भ्रम पैदा किया है । ब्रह्म का अर्थ है श्रेष्ठ, बृहत्त्वात् ब्रह्म ।

वस्तुतः मैं शुद्धचेतन, जड़जगत से सर्वथा पृथक्, दृश्यों का दृष्टा एवं ज्ञान मात्र हूँ, यही वास्तविकता है । इसको ब्रह्म एवंश्रेष्ठ कहना कोई बुरा नहीं है ।

कबीरजी आगे कहते हैं कि ...

"ढूँढ़त ढूँढ़त ढूँढ़िया, भया तो गूनागून ।

ढूँढ़त ढूँढ़त ना मिला, तब हारि कहा बेचून ।।<sup>३४</sup>

भावकों ने ब्रह्म को खूब ढूँढ़ा, खूढ़ ढूँढ़ा, खूव ढूँढ़ा, परंतु जब वह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते न मिला, तब वे थक्कर गुमसुम एवं किं कर्तव्यमूढ़ हो गये । बहुत पूछने पर ले जाकर उन्होंने कहा कि वह तो निश्चय, निराकार परोक्ष एवं निर्गुण है फिर कैसे प्रत्यक्ष होगा !

अपनी आत्मा से भिन्न ब्रह्म एवं परमात्मा खोजने की सनक संसार में बहुत है । परंतु ईश्वर खोजनेवाले इतना भी विचार नहीं करते कि जो कुछ खोजकर बाहर से मिलेगा वह माया है । किसी भी देहधारी को जो कुछ मिलेगा वह माया है । किसी भी देहधारी को जो कुछ मिलेगा वह पाँचों विषयों से अलग नहीं होगा और जो कुछ पाँचों विषयों के भीतर होगा वह महामाया है, तो मनुष्य को कौन-सा परमात्मा या ईश्वर (ब्रह्म) मिलेगा । अपनी आत्मा से अलग परमात्मा है और वह मिलता है यह केवल भ्रम है ।

सद्गुरु कहते हैं कि लोग ब्रह्म को ढूँढ़ते हैं । तीर्थों, नदियों, वनों, देवमंदिरों और संसार का नाना गलियों में उसका छान डालते हैं, क्योंकि नाना मत के पौराणिक ग्रंथों में एवं भावुक भक्तों तथा संतों के मुखों से वे सुनते हैं कि पुराकाल में अमुक का ब्रह्म मिला, अमुक को न मिला, तो लोगों को विश्वास होता है कि लगन से यदि खोज करेंगे तो हमें भी मिलेगा । परंतु पौराणिक कहानियाँ जो इस प्रकार की बातें बताती हैं केवल काल्पनिक होती हैं । कथाकार जो हम इस प्रकार लच्छेदार कथा में लोगों का भावविह्वल करते हैं वे मनुष्यों में कुछ सात्विकता एवं भावना को जगाते हैं, परंतु उन्हें भ्रमित कर देते हैं । इससे जनता के स्वरूपज्ञान का रास्ता ही रूक जाता है ।

ढूँढ़कर भी जब ब्रह्म नहीं मिलता, तब लोग उसके विषय में मौन रहते हैं । ब्रह्म न मिलने पर लोग हाहाकार, हारकर एवं लज्जित होकर कहते हैं कि वह तो बेचून (निराकार) है बेनमून है तथा निर्गुण है । बात तो यह है कि यदि वह सचमुच ऐसा ही है तो तुम्हारा उससे मतलब ही क्या हल हो सकता है ! जो वस्तु तुम्हारी पकड़ में न आये और जो नित्य के लिए तुम्हारी अपनी न हो उससे और तुम्हारा क्या हल हो सकता है और तुम्हारा उसके लिए बेनमून निर्गुण, निराकार आदि कहना भी तो तुम्हारी केवल अवधारणा है । जिसका तुम्हें बोध नहीं है, शब्द मात्र एक-दूसरे से कहते जा रहे हैं । वह केवल कल्पित है । श्रुतिवचन है...'वहाँ आँखें पहुँचती हैं, न वाक और न मन पहुँचता है न हम उसे जानते हैं । हम नहीं समझ पाते कि शिष्यों को उसका उपदेश कैसे करें । वह ज्ञात तथा अज्ञात वस्तु से पर है। बस यहीं कह सकते हैं कि हम उसे अपने पूर्वजों से ऐसा ही सुनते आए हैं ।<sup>३५</sup>

## प्रणामी धर्मदर्शन में जीव :

इस संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी प्राणनाथजी ने जीव और ब्रह्म में अभेद के भाव को स्वीकारा हैं । मुंडक और बृहदारण्यक उपनिषद में ब्रह्म का अग्नि का और जीवों को स्फुलिंगों का रूप दिया गया है । तैत्तिरीय उपनिषद में 'एको-हं बहुस्याम्' के अनुसार ब्रह्माने अपनी इच्छा से इस संसार की रचना करके जीव को उत्पन्न किया है ।<sup>३६</sup>

प्राणनाथजीने तीन प्रकार की जीव सृष्टि को स्वीकारा है।। (१) उत्तम (२) मध्यम (३) कनिष्ठ

"शास्त्रों तीन सृष्टि कही, जीव, ईश्वरी ब्रह्म ।

तिनके द्वोर जुदे जुदे, देखयो अनुक्रम ।।

जीव सृष्टि वैकुण्ठ तो सृष्टि ईश्वरी अक्षर ।

ब्रह्म सृष्टि अक्षरातीत लों शास्त्र कहें यो कर ।।<sup>३७</sup>

इस तरह तीन सृष्टि में स्थितजीव सृष्टि में तीन भेद प्रणामी दर्शनने स्वीकारे हैं । उत्तम मध्यम और कनिष्ठ । ब्रह्म सृष्टि हमेशा मुक्त होती है । मध्य सृष्टि अर्थात् ईश्वरी सृष्टि मुमुक्षु है और जीव सृष्टि बद्धमुक्त है । परमधाम से इस संसार के मायापूर्ण खेल देखने के लिए आनेवाली जीवसृष्टि खेलरूप या स्वप्नवत् है । ईश्वरीय जीवात्माएँ खेल देखने के लिए आनेवाली जागृत जीवात्मा है परंतु सारे संसार में माया व्याप्त होने के कारण संसार के लोग इन्हें नहीं पहचान सकते...

"यामें जीव दो भ्रांत के एक खेल दूजे देखनहार ।

पहिचान ना होवे काहुको आड़ी माया मोह अंधकार ।।<sup>३८</sup>

बद्धमुक्त प्रकार के जीव में जो उत्तम हैं वे भक्ति के नियमों का पालन करते हैं । उत्तम देवों की उपासना करके स्वर्ग की मनोकामना रखते हैं । महाप्रलय तक अपने आराध्य का साथ देकर अंत में अव्याकृत में लीन हो जाते हैं ।

मध्यम प्रकारकी जीवसृष्टि परमात्मा की सही पहचान पाने की अपेक्षा भिन्न भिन्न देवी देवता की आराधना करती है। परिणामतः कर्तव्यों का सही फल प्राप्त नहीं होता और कर्मानुसार संसार बंधन में बँधकर विभिन्न योनि में आवागमन के चक्र में फँसे रहती है। कनिष्ठ जीव हिंसा जैसे पापकर्म में डूबे रहने के कारण नरक यातना भुगतती है और योनि चक्र में फँसे रहती हैं। बधनमुक्त जीव वैकुण्ठगमन तक की सिद्धि प्राप्त कर सकता है परंतु परमधाम की प्राप्ति कर सकता ही नहीं।

ईश्वरीय जीव की जागृति ब्रह्मज्ञान से प्राप्त होती है। यह जीव अक्षर ब्रह्म ही सुरता रूप होने के कारण ज्ञान, भक्ति और कर्म से अक्षरब्रह्म में लीन हो जाता है। ऐसे जीवों को मोक्षधाम अक्षरधाम ही कहा जाता है।

ब्रह्मसृष्टि की वासना से युक्त जीव सर्वोत्तम है। माया का आवरण उनको भी स्पर्श करता है।

"ब्रह्म सृष्टि भी धर मोह के आकार।"

यह जीव शाश्वत है। इसका सर्जन नहीं हुआ परंतु ब्रह्म की शक्ति स्वरूप सनातन है। छान्दोग्य उपनिषद् में इस बात को इन शब्दों में दोहराया है "सम्मूला सोम्ये याः प्रजाः सदायतना सत्यप्रतिष्ठाः।

इन शब्दों के आधार पर सनातन धाम ही परमधाम है। ब्रह्मात्माएँ परस्पर के सद्बोध के कारण परमधाम को प्राप्त हो जाती हैं ऐसी मान्यता श्री भट्टाचार्यजी की भी है।<sup>३९</sup> वे लिखते हैं कि ब्रह्मात्माएँ भी लोकदृष्टि से स्वप्नमयी जीव के समान जन्मवाले तथा मरणधर्मा प्रतीत होती हैं। परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। प्रणामी संप्रदाय का सुंदरसाथ (अनुयायी) ब्रह्मात्मा की कक्षा की जीवात्माएँ हैं। ये ब्रह्मात्मा प्रेमलक्षणा भक्ति को ही परमधाम का आनन्द मनाती हैं।

"जब प्रेम इन्हीं आवसी, तब देखेंगे मुझको,

प्रेम बिना इन खेल में, मैं मिलूँ नहीं इनको।।<sup>४०</sup>

इसलिए जो ब्रह्मात्माएँ इस संसार में अवतरित होकर अपना असल स्वरूप भूल गयी हैं और माया में डूब गयी हैं, उनको अपनी नींद, अज्ञान और मोह रटाने की सलाह देते हुए स्वामी प्राणनाथ कहते हैं कि...

"निंद उड़ाये जब चिन्होगे आपको,  
तब जानोगे महोल यु रचानो ।  
तब आपई घर पाओगे आपको,  
देखोगे अलख लखानो ॥<sup>४१</sup>

### ५.१.२ कबीरपंथ के धर्मदर्शन में जीव :

"जो जानहू जीव आपना, करहु जीव को सार ।

जिपरा ऐसा पाहुना, मिले न दूजी बार ॥<sup>४२</sup>

कबीरपंथी धर्मदर्शन में जीव के बारे में कहते हैं कि संसार के अधिकतम संप्रदायवादी कहते हैं कि जीव तो तुच्छ है, अंश, प्रतिबिंब, आभास, प्रतिभास है, यह अल्पस्त्र है, इच्छा प्रयत्न, द्वेषादि से स्वरूपवतः संबंध है । वे कहते हैं कि श्रेष्ठ तो ईश्वर एवं ब्रह्म है ।

विचारकर देखा जाय कि यदि ईश्वर तथा ब्रह्म जीव से पृथक है, तो वह एक अनुमान है, जिसकी कल्पना जीव की है । जीव न होता तो ईश्वर एवं ब्रह्म की कल्पना कौन करता ! वस्तुतः जीव अनुमान है और ईश्वर ब्रह्म अनुमान, जीव कल्पक है और ईश्वर ब्रह्म कल्पना । ईश्वर, ब्रह्म, जीव...जीव द्वारा की गयी चर्चा मात्र है । जीव को तुच्छ कहनेवाला जीव है जो अपनी भूल से ऐसा कह रहा है । जिस दिन जिस जीवको अपने स्वरूप की पहचान होगी, उस दिन वह जीव को तुच्छ कहने का अपराध न करेगा । जीव तुच्छ है तो शिवत्व की घटना कहा घटेगी ? जीव को हटा देने के बाद ईश्वर ब्रह्म का नाम लेना भी कोई न रहेगा । सद्गुरु श्री पूरणसाहब ने कहा है "कबीर देव का यह प्रामाणिक निर्णय है कि जीव जो मूल है उसे न समझा गया, तो सब थोथा है ॥"<sup>४३</sup> जीव को तुच्छ कहना तो आत्मघात है ।

कबीरजी कहते हैं कि जो लोग जीव को तुच्छ कहते हैं उनकी बातें जाने दो । परंतु यदि तुम जीव को अपना स्वरूप समझते हों, तो उसकी महत्ता का बोध प्राप्त करो । जीव चेतना है, आत्मा स्वयं स्वरूप है, सर्वोच्च सत्ता है, व्यक्ति के अपने आप की यथार्थता है, ज्ञान स्वरूप है, आत्मस्वरूप है तथा रामस्वरूप है । इस सर्वोच्च सिद्धांत की गरिमा को समझो और इस तथ्य का स्वागत करो । अर्थात् जीव का स्वागत करो ।

जीव का स्वागत करना, अपने आपका स्वागत करना है । अपने आपका स्वागत करना है अपने आपको सारे बन्धनों से छुड़ा लेना । जीव जब सारे बन्धनों से छूट जाता है, तब यही शिव है ।

"जियरा ऐसा याहूना, मिले न दूजी बार" यह मानव-शरीर पहनाई की जगह है और जीव पहना है । मानव-शरीर कल्याण करने का साधन है । क्योंकि वह विवेक-प्रधान है । अतएव जीवन में विवेक जगाया जाय, मन के बन्धनों को तोड़ा जाय और जीव इस जीवन में परम विश्राम पा जाये । यही जीव का स्वागत करना है । यदि यह काम आज कर लिया गया तो ही जीवन की सफलता है, जीव का इस शरीर में आने की सार्थकता है, अन्यथा सब थोथा है ।

जीव जब शरीर छोड़ देगा, तो वह पुनः इसमें नहीं आयेगा और जीव इस शरीर से कब चला जाय, कोई नहीं जानता । इसलिए आत्म-कल्याण का काम शीघ्र करना चाहिए ।

इस प्रकार हमारा जीवन एक व्यापार है । मनुष्य जन्म लेता है, शिशु के रूप में रहता है । उसका चित एकदम शुद्ध होता है । बचपन भी चित या चिन्तारहित बीतता है । जवानी आने पर मलिनता शुरू होती है, साथ-साथ चिन्ता भी । फिर भी जवानी में काफी कुछ उदारता, सरलता तथा मानसिक प्रसन्नता रहती है । परिपक्व अवस्था में पहुँचकर आदमी काफी चिन्ताग्रस्त हो जाता है ।

जीवन जीने की कला है जीवन में कहीं न उलझना । राग में, द्वेष में, ममता में, वैर में, काम, क्रोध, लोभ, मौहादि में, झगड़ा-झंझट में कहीं भी अपने जीव को न फँसाना ही



जीवन जीने की अच्छी समझदारी का फल है ।

कबीरपंथी धर्मदर्शन में कहते हैं कि चाहे कोई सुने या न सुने, परंतु यह परम सत्य है कि जीव ही सर्वोच्च सत्ता है । कोई अपनी आत्मा का तिरस्कार करके बाहर से परमात्मा पाने की आशा करता है तो यह उसकी दुराशा है ।

### ५.१.३ प्रणामी धर्मदर्शन में जगत :

शंकराचार्यजीने 'ब्रह्म, सत्य, जगत् मिथ्या आदि कहकर जगत् की क्षणभंगुरता की और अंगुली निर्देश कर दिया परंतु इसके पश्चात् जगत के मिथ्यातत्त्व पर शास्त्रार्थ होता रहा । वल्लभाचार्य ने जगत् को अलग दृष्टि से देखा परंतु प्रणामी धर्मदर्शन पर तो श्रीमद् भगवद्गीता जैसे हिन्दु धर्म के श्रद्धेय ग्रन्थों का प्रभाव रहा है ।

अतः प्रणामी धर्मदर्शन ने गीता की क्षर प्रकृति को ही स्वीकारा है । अक्षर ब्रह्म की पराप्रकृति के कारण जगत की रचना हुई है । अक्षर ब्रह्म से सांसारिक जीव पैदा होते हैं । इसमें भी अग्नि और स्फूर्तिगों जैसा सम्बन्ध स्वीकारा गया है । अतः प्रणामी धर्मदर्शन के विचारों पर पूर्ववर्ती दार्शनिकों के विचारों का प्रभाव लक्षित होता है । परमेश्वर की अचिन्त्य शक्ति के कारण ही जगत् को ब्रह्म स्वरूप कहा जाता है । इस जगत की उत्पत्ति के लिए अक्षरातीत परमात्मा की इच्छा शक्ति को महाकारण माना गया है । प्राणनाथजी के मतानुसार जब कुछ भी नहीं था तब सिर्फ एक परब्रह्म परमात्मा ही थे । उनके मनः स्वभाव का स्वरूप अक्षर ब्रह्म थे । इनके सिवा कुछ भी न था । विष्णुपुराण में कहा गया है कि...

"निः प्रवेशे निरालो के सर्वतस्तमसावृते ।

ब्रह्माण्डम् भूदेकयक्षरस्य कारणम् परमः ।। ४४

इन्ही विचार पर अपना मत देते हुए प्राणनाथजीने लिखा है

"ना ईश्वर ना प्रकृति, ता दिन की कहूँ आपाविती ।

निज लीला ब्रह्मवाल चरित् जाकी इच्छा मूल प्रकृति ।। ४५

श्रीमद् भागवद् में लिखा है कि . . .

मूतैर्यदा पंचभिरात्म सृष्टैपुर विराजं विरच्चय तस्किन् ।।<sup>४६</sup>

सृष्टि के पूर्व एक आत्मा ही था और उसने सृष्टि उत्पन्न करने का निश्चय किया ।  
इस तरह सृष्टि की रचना ब्रह्म की अभिव्यक्ति है ।

सृष्टि उत्पन्न करने के बाद इनमें लोक उत्पन्न किये । उसने सूक्ष्म और स्थूल, रूपहीन और रूपवान पैदा किये । आकाश आत्मा से उत्पन्न हुआ । वायु आकाश से उत्पन्न हुआ, अग्नि वायु से उत्पन्न हुई, जल अग्नि से उत्पन्न हुआ । पृथ्वी जल से उत्पन्न हुई और पृथ्वी से पौधे उत्पन्न हुए ।।<sup>४७</sup>

जगत् ब्रह्म से उत्पन्न होता है, अतः ब्रह्म की अभिव्यक्ति जगत् है । जगत क्षणभंगुर और स्वप्नवत् है । परमात्मा का यह विवर्तरूप है । ब्रह्म की इच्छामात्र से ही समुत्पन्न यह भौतिक, पंचभौतिक जगत् अष्टावरण सहित प्रकृतिपर्यन्त सब अनित्य है।<sup>४८</sup> श्रीमद्भगवद्गीता में जगत् को सत्य और नित्य माना है, बकि प्रणामी संप्रदायने जगत को अनित्य स्वीकारा है।

सृष्टि तीन प्रकार की है...

(१) महद् सृष्टि (२) मानसी सृष्टि (३) मैथूनी सृष्टि प्रणामी संप्रदाय में १४ लोक की कल्पना इस प्रकार साकार हुई है।।। (१) सतलोक (२) तपकोल (३) जनलोक (४) महरलोक (५) स्वर्गलोक (६) पितृलोक (७) मृत्युलोक (८) तल (९) अतल (१०) वितल (११) सुतल (१२) तलातल (१३) रसातल (१४) पाताल ।

इस सृष्टि को चार महाप्रलय लागू पड़ते हैं... (१) नित्य प्रलय (२) नैनिमिक प्रलय (३) प्राकृत प्रलय (४) आत्यंतिक प्रलय ।

अन्तिम प्रलय में जगत अव्याकृत में लीन हो जाता है ।

### ५.१.२ कबीरपंथ के धर्मदर्शन में जगत्

"एक कहो तो है नहीं, दोय कहौ तो गारि ।

है जैसा रहे तोस, कहरि कबीर बिचारी ।।<sup>४९</sup>

यदि मैं कहूँ कि तत्त्व एक है तो वैसा है ही नहीं, परंतु यदि कहूँ कि जीव का आश्रय-स्थल कोई दूसरा है तो यह भी अनुचित बात है । इसलिए कबीर साहब विचारपूर्वक कहते हैं कि जैसी वास्तविकता है वैसी दशा में ही स्थित होना चाहिए ।

कुछ लोगों का स्थल है कि समस्त सत्ता केवल एक ही तत्त्व है । ऐसे लोग कहते हैं कि सत्ता एक ही है जो सर्वगत, सर्वव्याप्त और अखण्ड है । उसमें सजाति, विजाति और स्वगत का कोई भेद नहीं है । वह एक सत्ता का केवल चेतन है, परंतु यह सिद्धांत केवल धारणा है, तथ्य नहीं । जड़ और चेतन दोनों सर्वथा भिन्न हैं । न जड़ चेतन हो सकता है, और न चेतन जड़ हो सकता है । फिर जड़ में भी अनेक तत्त्व हैं जो एक दूसरे में नहीं बदल सकते । मिट्टी, पानी, आग, हवा ये चारों जड़ तत्त्व एक दूसरे से भिन्न हैं । वैज्ञानिकों ने शताधिक तत्त्वों का निर्धारण किया है । ऑक्सिजन, हाईड्रोजन में नहीं बदल सकता । ऐसे अनेक मौलिक तत्त्व दूसरों में नहीं बदल सकते । इधर एक जीव दूसरे जीव से अलग है, इसलिए एक जीव के सुखदुःख एवं बंधन-मोक्ष दूसरेके नहीं हो सकते । इस प्रकार यह चेतन की भिन्नता एवं जीव-जीव की भिन्नता इतनी ज्वलंत है कि इन सबको एक ही तत्त्व मान लेने की बात संभव ही नहीं है । इसलिए कबीरपंथ धर्मदर्शन में कहते हैं कि "एक कहौ तो है नहीं" यदि कहा जाय कि एक ही तत्त्व है तो ऐसी वास्तविकता ही नहीं है ।

जगत में एक भी ऐसा तत्त्व नहीं है जो एक अखण्ड एवं व्याप्त हो । यदि एक अखण्ड व्याप्त सत्ता हो तो दूसरे का अस्तित्व ही नहीं हो सकता । इसके अलावा एक अखण्ड, व्याप्त सत्ता होने से गति एवं सृष्टि असंभव है । अतः निरन्तर परिवर्तनशील जगत में एक अखण्ड व्याप्त सत्ता कहना । सब दर्दों का व्यामोह है । इसलिए केवल एक ही तत्त्व है यह नहीं कहा जा सकता । यह आनुभविक जगत का वर्णन हुआ । जगत का व्यवहार ही द्वैत में चल रहा है । सबको एक कैसे कहा जा सकता है ।

जो महापुरुष के जड़-चेतन को मिलाकर अद्वैत की कल्पना करते हैं, वे केवल कल्पना ही करते हैं । वैसी तो बात है ही नहीं । उन्हें जगत का डर लगता रहता है कि जगत यदि ब्रह्म से अलग सिद्ध हो जायेगा तो ब्रह्म का घाटा हो जायेगा, परंतु जगत तो है

ही । पृथ्वी, चाँद, सूरज तथा असंख्य तारों से भरे इस जड़-जगत को कोई अद्वैत की फूँक से कहा उड़ा सकता है । अद्वैत सिद्ध करने का मतलब है कि सिद्ध भोले लोगो ने अद्वैत सिद्धि में ही पुस्तके नहीं बनायी है किन्तु "अद्वैत सिद्धि" नाम की भी पुस्तक लिखी हैं । अद्वैत में विश्वास हो जाने पर वह किसके सामने अद्वैत सिद्ध करेगा ? अद्वैत में विश्वास हो जाने पर कम-से-कम वह मौन तो हो ही जायेगा । इसलिए सद्गुरु ने कहा है अद्वैत तो हो ही नहीं सकता ।

अतएव कबीरपंथ धर्मदर्शन में कहता है जो जैसा है, वह वैसा ही रहेगा । जगत को मिथ्या कहने से वह मिथ्या नहीं हो जायेगा । पुराकाल से अनेक अद्वैतवादी इस विविधतापूर्ण जगत सत्ता को अद्वैत कहते-कहते चले गये, परंतु यह सब समय जैसा है, वैसा ही विद्यमान है और आगे भी ऐसाही रहेगा । अतएव "है जैसा रहे तैसा, कहहि कबीर विचारि" परम सत्य हैं ।

#### ५.१.४ प्रणामी धर्मदर्शन में माया :

शंकराचार्यने माया को ब्रह्म की शक्ति के रूप में स्वीकारा है । परंतु ब्रह्म की यह शक्ति ब्रह्म का नित्य रूप नहीं है । शक्ति के रूप में माया ब्रह्म से कोई नित्य पदार्थ नहीं, उसका कोई भिन्न अस्तित्व नहीं । शंकराचार्य तो प्रकृति को भी माया कहते हैं । उनके मतानुसार 'रचनात्मक' शक्ति या माया ही उन लोगों के लिए विश्व की प्रकृति है, जो इसे देख रहे हैं ।<sup>५०</sup>

रामानुजाचार्य माया को ब्रह्म की नित्य शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं तो हर क्षण वास्तविक सृष्टि का निर्माण, उसका पालन तथा विनाश की क्रियाएँ करती रहती हैं । सांख्य के भाष्यकारों ने सृष्टि की मूल उपजातक प्रकृति का माया के रूप में वर्णन किया है । सांख्य प्रकृति त्रिगुणमयी (सत्त्व, रजस्, तमस्) कही गयी है । भाष्यकारोंने माया का स्वरूप त्रिगुणात्मक देखा है माया के तीनों गुण मनुष्य के बंधन का कारण बनता है ।<sup>५१</sup>

श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण बताते हैं कि नाना प्रकार की योनियों में जितने शरीर उत्पन्न होते हैं उनमें त्रिगुणमयी माया की गर्भधारण करनेवाली माता है । मैं बीज की स्थापना करनेवाला पिता हूँ । जीवात्मा अविनाशी है किन्तु प्रकृति से उत्पन्न तीन गुण (सत्य, रजस्, तमस्) इसे शरीर में बाँधते हैं ।<sup>५२</sup>

इन सारे दर्शनों की विचारधारा का प्रभाव प्रणामी दर्शन पर भी पड़ा । प्रणामी दर्शन इन सारी विचारधारा से प्रभावित हुआ । इस धर्मदर्शन में सत् को, असत् को सत् मान लेना ही माया है । इसके लिए अविधा को ही कारणरूप स्वीकारा गया है । माया आत्मा और शरीर के भिन्नता को अभिन्न मान लेने में ही समाविष्ट हुई है । सारा जगत मायामय ही है । जगत् को ब्रह्म और ब्रह्म को जगतमय जानकर सांसारिक सुखों के लिए अविरत प्रयत्नशील रहना ही माया है । माया के द्वारा ही सांसारिक पदार्थों में ममत्वं भावना जाग उठती है । इस माया के आवरण में भ्रम पैदा होता है । भ्रमात्मक ज्ञान-अज्ञान के बराबर होता है । इसमें वास्तविकता नहीं होती, इसलिए माया को स्वप्नवत् कहा है ।

स्वामी प्राणनाथ अपने विचारों को पेश करते हुए कहते हैं कि विद्वान् पूर्ण ब्रह्म की व्यापकता संसार में मानते हैं परंतु विश्व स्वप्नवत् है, और पूर्ण ब्रह्म तो स्वप्नवत् के दृष्टा है, जाग्रत है...

" लौक चौह दशोदिश सब नाटक स्वांग संसार ।<sup>५३</sup>

आवे नैन श्रवण मन, बचन, ए सब माया मोह अंधकार ।।

क्या दानव क्या दानव कथा तिर्थकर अवतार ।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्यों, सो भी पैदा ।।<sup>५४</sup>

यह चेतन मायावी है । वास्तविक चैतन्य तो माया से परमधाम में है । इस नश्वर जगत के ईश्वर महानारायण अवतरित होता हुआ नहीं स्वीकारा । संसार का परिवर्तन तो संसार की अपूर्णता का प्रतीक है । सिर्फ ब्रह्म ही पूर्ण है और वह माया उसकी स्वतंत्र ईच्छा पर आधारित शक्ति है । सृष्टि के आदि और अन्त की कल्पना इसकी इच्छाधारित होने पर ही की जा सकती है । माया परम सत्य ब्रह्म की शक्ति है । इसलिए निश्चित एवं आकर्षक

अस्तित्व है इसकी माया मिथ्या नहीं है । नानकजी के मतानुसार वह उपेक्षणीय अवश्य है । यदि उपेक्षा न की जाय तो जीव भ्रमवश उसके ही आकर्षणों को अपना लक्ष्य समझकर भटकता रहेगा और परम लक्ष्य अकाल पुरुष के महत्त्व को भूल बैठेगा ।

गुरूनानक ने भी माया को त्रिगुणमयी स्वीकार किया है । नानकजीने जीव का गर्भागमन और शरीर बधन भी क्रमशः माया और इनके तीन गुणों के कारण ही होता है, ऐसा स्वीकारा है । नानकजी अज्ञान और अविद्या को मिथ्या तथ्य के रूप में देखते हैं । इसे ही प्रसंगवश माया भी कह देते हो जो जीव के हरि मिलन में बाधा बनती है । अर्थात् माया से जगत के चित में द्वैतभाव रहता है । काम, क्रोध, अहंकार से हमेशा विनाश होता है ।

संक्षेप में प्राणनाथजी माया को परम सत्य ब्रह्म की शक्ति मानते हैं । उसके निश्चित और आकर्षक अस्तित्व को वे स्वीकार करते हैं । वे माया को कदापि मिथ्या नहीं मानते । वे माया को त्रिगुणमयी स्वीकार करते हैं...

#### ५.१.२ कबीरपंथ के धर्मदर्शन में माया :

"माया के झक जग जरे, कनक कामिनी लाग ।

कहहिं कबीर कस चाँचिहों, रूई लपेटी आग ।।<sup>५५</sup>

संसार के लोग अर्थ और काम-भोग में आसक्त होकर माया रूपी आग की लपेट में जलते रहते हैं । कबीर पंथ के धर्मदर्शन में कहते हैं कि है मनुष्य ! तुम उसी प्रकार माया में आसक्त होकर जलने से बच नहीं सकते, जैसे आग में लिपटी हुई रूई नहीं बच सकती ।

उपरोक्त साखी में वे मोटी माया की आसक्ति पर चोट करते हैं । मोटी माया को व्यंजित करने के लिए हिन्दी-जगत में कनक-कामिनी शब्द मानों एक मुहावरा बन गया है । वैसे बृहत् हिन्दी कोश में कनक के अर्थ में गेंहू को आटा, सोना, धतूरा, पलाश, कालीयवृक्ष, नाग केशर और चम्पा किये गये हैं । परंतु इस संदर्भ में कनक का स्थूल अर्थ सोना है । इसी प्रकार कामिनी के अर्थ में कामवेग का अनुभव करनेवाली स्त्री, कामनायुक्त स्त्री, सुन्दर स्त्री, भीरू स्त्री, मदिरा, दासहल्दी तथा बाँदा किये गये हैं । ज्यादातर लोग कागज के रूपये,

मकान, जमीन, कपड़े, बरतन, गहने आदि में आसक्त हैं । इसलिए यहाँ सोने का शाब्दिक अर्थ नहीं लाक्षणिक अर्थ ग्रहण करना चाहिए । वह है जड़ पदार्थ, जिसे धन के रूप में माना गया है । कामिनी का यहाँ शाब्दिक अर्थ है स्त्री परंतु आखिर स्त्री भी तो जीव ही है । उसके लिए भी तो माया ही बंधन है । यदि पुरुष के लिए स्त्री की आसक्ति बंधन है, तो स्त्री के लिए पुरुष की आसक्ति बंधन है । अतएव यदि पुरुष के लिए स्त्री माया है तो स्त्री के लिए पुरुष माया है । पुरुष वैराग्य-पथ का पथिक अधिक हुआ । पुरुष के मन में स्त्री-देह की आसक्ति है । इसलिए जब उसके मन में स्त्री-देह के लिए आकर्षण आया, तब उसने अपने मन को उससे विरक्त करने के लिए स्त्री-देह में दोषदर्शन किया, उसे माया तथा आग कहा । विरक्त पुरुष ही ज्यादातर लेखक हुए । इसलिए उन्होंने कनक के साथ कामिनी शब्द का प्रयोग करने धन और स्त्री से विरक्त होने के लिए कविताएँ लिखी । यहाँ स्त्री को गलत मानने का अभिप्राय नहीं है, किन्तु कामाशक्ति से मुक्त होने का अभिप्राय है । इसलिए कबीर साहब ने कनक-कामिनी के नाम जहाँ लिये, वहाँ उन्होंने उसे माया कहा । परंतु जब उन्होंने नर-नारी की समानता की बात कही तब उन्होंने कहा "को पुरुषों को नारी"<sup>५६</sup> तथा "जेत औरत मर्द उपाने, सो तब रूप तुम्हारा ।।"<sup>५७</sup>

जगत के स्त्री और पुरुष अर्थ और कामभोग में डूबकर माया की आग में जल रहे हैं । प्राणी-पदार्थ माया हैं, यह कथन सापेक्ष है । वस्तुतः जब हमें प्राणी और पदार्थों में मोह हो जाता है तब वे हमारे लिए माया बन जाते हैं । इसलिए हमारे मन का मोह की माया है । यदि हमें कहीं मोह न हो, तो हमारे लिए कहीं माया नहीं है । आदमी इन्द्रियों के भोग में आसक्त होता है । आसक्तिवश उसे अधिक धन की आवश्यकता प्रतीत होती है । इस प्रकार विषयासक्त आदमी कामभोग और धन में आसक्त होकर रात-दिन उसकी आग में जलता है । इच्छा, तृष्णा, अपूर्ति, खिन्नता, अभाव, असंतोष, क्षणिता, वियोग आदि ही तो माया की आग हैं । जो धन और भोगों में आसक्त होगा, वह इन सब की आग में जलेगा ही । कबीरपंथ के धर्मदर्शन में इसके लिए उत्पन्न खटीक एवं सुंदर उदाहरण दिया है । "रूई लपेटी आग" । रूई आग में लिपट जाये, तो उसका जलना निश्चित है । इसी प्रकार जो

धन और काम-भोग में लिपटा है उसका माया की आग में जलना निश्चित है । 'झक' का अर्थ खनक भी है । इससे अर्थ होगा की माया के पागलपन में पड़कर आदमी जलता है ।

विवेकवान कामभोग का एकदम त्याग कर देता है और धन से अनासक्तिपूर्वक केवल शरीर-निर्वाह लेता है । वह सभी नर-नारियों की सजाति जीव जानकर सबसे विवेकपूर्वक बरताव करता है और काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को त्यागकर जीते जी मुक्त होकर कालक्षेप करता है ।

#### ५.१.५ आलोच्य संतो के काव्य में धर्मदर्शन का तुलनात्मक अध्ययन :

मध्ययुगीन सन्त भक्तोंने हिन्दी साहित्य और तत्कालीन समाज की अविस्मरणीय सेवा की है । तत्पुगीन परिवेश के फलस्वरूप सामान्य जनता जीवन से उठ गयी थी । एक और ब्राह्मणोंने अपना वर्चस्व कायम बनाये रखने के हेतु धर्म को क्लिष्ट एवं कठोर ब्राह्मणचरों की प्रक्रिया में जकड़ रखा था तो दूसरी ओर जीवन से दूर भागकर संसार से दूर रहकर सिद्धोंने निर्गुण उपासना करने का व्यवहार बताया । परंतु सामान्य मानवी न तो ब्राह्मणों द्वारा प्रदान कठोर कर्मकाण्ड से मुक्त धर्म को अपनाये सकता था, न तो संसार का त्याग करके हिमालय की चोटी पर जाकर ज्ञान का दुरूह मार्ग स्वीकार कर सकता था । परिणामतः जनता को कोई पथ नजर नहीं आ रहा था । जिसमें वह शान्ति पा सके । राजनिती और आर्थिक पराभव से त्रस्त जनता इन दो मार्गों में से किसी को भी ग्रहण करने में असमर्थ थी । सामान्य जनता के सामने एक और ज्ञान, कर्म और भक्ति को महत्त्व प्रदान करनेवाला निर्गुण उपासना का मार्ग और वर्ण मुक्त समाज का आदर्श था, तो दूसरी ओर बहुदेवता पूजा और वर्णों में बाँटे हुए समाज का चित्र था । ऐसी स्थिति में मध्ययुग के सन्तों ने ज्ञान, कर्म और प्रेम का मार्ग दिखलाया । सन्तोंने जनता को एकेश्वर का मार्ग प्रदर्शित किया । गृहस्थ जीवन में रहकर भी घट-घट में व्याप्त ईश्वर की आराधना का मार्ग बतलाया और इस तरह प्रवृत्ति-निवृत्ति का समन्वय करके एक नये मार्ग का प्रशस्त किया प्रदर्शित किया । ऐसे सन्तों की नामावलियों में आलोच्य दोनों सन्तों के नाम अनन्य



भक्तिभाव से याद किये जाते हैं ।

स्वामी प्राणजनाथ ऐसे सन्तों की श्रृंखला की महत्त्वपूर्ण कड़ी थे । जिन्होंने ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त कर्मकाण्ड एवं बाह्याचारों का विरोध करने इसे नगण्य करके, तत्कालीन प्रजा को प्रमुख धर्मों (हिन्दु एवं इस्लाम धर्म) का समन्वय करके ज्ञान और प्रेमभावना पूर्ण भक्तिपथ का प्रचार किया । उन्होंने संसार में कर्मरत रहते हुए, प्रेम भावना-पूर्ण भक्ति पंथ को द्वारा जीवन की चरमोपलब्धि को पाना जीवन का लक्ष्य माना ।

कबीर भी मध्ययुग के दक्षिणभारत की भक्ति परंपरा श्रृंखला की महत्त्वपूर्ण कड़ी थे । वे दक्षिण भारत की आशा, आकांक्षा, और नवीन चेतना की न्योतिरूप माने जाते हैं । उन्होंने मृतप्राय जनता में आशा, उल्लास, और आत्मविश्वास की चेतना जगायी थी । वे सिर्फ भक्त नहीं, संदेशवाहक नहीं, करिश्ते नहीं परंतु जन-जन के हृदय की चेतना के प्रतीक थे । उन्होंने बुहदेववाद में फँसी हुई जनता को भक्ति का अमृतपान करवाया । प्रवृत्तिमार्ग एवं निवृत्तिमार्ग प्रदान किया था । उन्होंने सर्वव्यापी निर्गुण निराकार की ज्योति के साक्षात्कार के लिए नामस्मरण भक्ति का अवलम्ब स्वीकारा ।

स्वामी प्राणनाथजी साकार-सगुण कृष्ण उपासना के सन्त थे । प्राणनाथजी के परमात्मा एक है और वह परमधामाश्रित है अथवा उनका निवास स्थान परमधाम है । वे निराकार रहते होने पर भी सामान्य जनता को धर्म प्रवाह की ओर आकर्षित करने के हेतु और सच्चिदानन्द का अनुभव करवाने के लिए उन्होंने परमात्मा के आनन्दरूप को स्वीकारा है । क्षर, अक्षर से पर जो अक्षरातीत है, वे ही परब्रह्म परमात्मा उसके उपास्य है । प्रणामी संप्रदाय के संस्थापक स्वामी श्री देवचन्द्र महाराज का सुन्दरबाई की वासना के रूप में ब्रह्म के आंशिक अवतार मानते हैं ।

कबीरजी अवतारवाद के विचारों को प्रोत्साहन नहीं देते । उनकी भक्ति निराकार उपासना है । उनके परमात्मा भी एक ही है परंतु वे सर्वव्यापी है । परमात्मा स्वयंभू है, वे कभी जन्म नहीं लेते । कबीरजी ब्रह्म को विविध नामों से पुकारा है, इसमें कहीं राम और कृष्ण का उल्लेख भी है परंतु कबीर के 'राम' आत्माराम है, जिसका हर एक आत्मा में

निवास है । वे अवतारवाद के खिलाफ थे ।

संक्षेप में प्राणनाथजी के परमात्मा निराकाराश्रित साकार रूप है और कबीरजी के परमात्मा निराकार आनंदरूप है । स्वामी प्राणनाथजी का ब्रह्म साकार रूप धारण करता है । उनके ब्रह्म का आधार श्रीमद्भागवदगीता है । गीत की तरह प्राणनाथजीने भी ब्रह्म को नित्य और सनातन कहा है परंतु अक्षर ब्रह्म से उत्तम होने के कारण कृष्ण को पुरुषोत्तम कहा है । सम्प्रदायने इसी पुरुषोत्तम को श्रीराज नाम से विभूषित करके उन्हें श्रीराज नाम से पुकारा जाता है । प्राणनाथजीने इसे साकार भी बताया है और निराकार भी । क्योंकि निर्गुण, निराकार ब्रह्म कर्तव्य शक्ति के अभाव से मुक्त हो जाता है, इसलिए आनन्दरूप नहीं रहते । फलतः वे उपास्य नहीं रहते । इसलिए स्वामी प्राणनाथजी ने परमात्मा का साकार रूप स्वीकारा है । वे साकार होने पर भी कहे जाते हैं । इस तरह साकार-निराकार से परे परमात्मा के चिन्मय स्वरूप को ही मोक्ष प्रदाता परमात्मा के रूप में सम्प्रदायने स्वीकारा है । फिर भी ब्रह्म की एक ही सत्ता का स्वीकार किया है ।

कबीरजी का ब्रह्म निर्गुण निराकार होते हुए भी उन्होंने कभी सगुण, साकार रूप की उपेक्षा नहीं की । कबीरजी का ब्रह्म निराकार है इसलिए कि वह साकार बनकर किसी एक आकार में बंध नहीं सकता । कबीरजी का ब्रह्म निराकार भी है और साकार भी । निर्गुण इसलिए कि उसमें सगुणता का अभाव नहीं है । उसकी प्रशंसा एक रूप में भी प्रिय है और अनेकता में भी वह प्राप्य है । परमात्माने स्वयं ही गुरुमुखों के आकार बनाये हैं फिर भी सबको एक सूत्र में पिरो रखे हैं । सबके पीछे एक ही शक्ति कार्यान्वित है । इहलोक रजोगुणी, पाताल, तमोगुणी और देव-देवियाँ सतगुण से विभूषित बनाये गये हैं, जिससे वह निर्गुण होते हुए भी सगुणित देखने लगता है ।<sup>१५८</sup>

कबीरजीने भी निर्गुण, निराकार परमात्मा का रूप गुरुकृपा से व्यक्त बताया है । संक्षेप में कबीरजीने परमात्मा को निर्गुण स्वीकार कर भी, उसके साकार रूप की अवहेलना नहीं की । उन्होंने गुरुरूप में परमात्मा को साकार बताये हैं । कबीरजीने परमात्मा को कर्ता बताये हैं । ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी एक में ही समाविष्ट हैं । उन्होंने परमात्मा की इच्छा से

ही सतगुरु की प्राप्ति की संभावना बताते हुए गुरु की पहचान देते हुए कहा है कि गुरु की आत्मा में स्थिति परम तेजस्वी पंच महाभूतों द्वारा निर्मित स्थूल शरीर नहीं परंतु गुरु की आत्मा में स्थित परम ज्योति ही परमात्मा का वास है । वही भक्तों की सुरक्षा करते हैं ।<sup>५९</sup>

स्वामी प्राणनाथजी की स्वलीलाद्वैत विचारधारा मौलिक और सम्प्रदाय की अपनी जाति है । कबीरजीने रागानुराग भक्ति में विचारधारा उनकी अपनी भक्ति की विशेषता है । कबीरजीने भावपूर्ण भक्ति को सर्वोपरी माना है । यही राग में विराग का निषेध और अध्यात्म साधना में मंगलमयी विरक्ति का वही कबीरजी की भक्ति को अद्वितीय स्थान प्रदान करते हैं ।

जीव की उत्पत्ति के बारे में दोनों सन्त हिन्दु धर्म के पवित्र ग्रन्थों से प्रभावित हैं । दोनों सन्तों में जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध अग्नि और स्फुलिंग की तरह माना है । अग्नि से ही उत्पन्न स्फुलिंग फिर अग्नि में ही समा जाते हैं । भारतीय दार्शनिकोंने मनुष्य की आत्मा में परमात्मा के दर्शन किये हैं, क्योंकि आत्मा में स्थित परम ज्योति ही परमात्मा का रूप है । जीव ईश्वर की इच्छा से, ईश्वर के द्वारा, ईश्वर के आनन्द के लिए उत्पन्न किये गये हैं, इसलिए जीव परमात्मा की परम ज्योति का अंश हुआ । कबीरजीने इसे 'आत्मा-देहधारी' कहकर पुकारा और प्राणनाथजीने इसे परमात्मा का अंश कहा ।

कबीरजीने जीव को परम ज्योति का अंश कहकर मौन धारण नहीं किया है परन्तु प्राणनाथजीने जीवसृष्टि के तीन प्रकार बताये हैं । जीव कर्मों के आधार पर कर्मफल के अनुसार उत्तम, मध्यम या कनिष्ठ योनि प्राप्त करते हैं । इस प्रकार प्राणनाथजीने जीव का आवागमन चक्र बताया है, जब नानकजीने कर्तव्यों के आधार पर ईश्वर में लीन हो जाने की बात स्वीकारी हैं ।

हिन्दु शास्त्रों में व्यक्त जगत उत्पत्ति के विचारों को स्वीकार कर अपनी मौलिक विचारधारा में इसे अभिव्यक्ति किया है । स्वामी प्राणनाथजीने सृष्टि की उत्पत्ति का आधार ईश्वर इच्छा बताया है । स्वामी प्राणनाथने कहा है...

"अक्षर सरूप के पल में, ऐसे कहे, हन्ड उपजें ।

पल में पैदा करके, फेर वा ही पल में सपें ।।<sup>६०</sup>

अर्थात् परमात्मा की इच्छा हुई तब सृष्टि का सृजन किया । बिना किसी आधार आकाश बनाया । ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उत्पन्न किया और मोह-माया का विस्तार किया । शायद ही कोई वितूल था, जिसे गुरु उपदेश सुनाया । उसकी इच्छा से ही जगत की उत्पत्ति और पालन होता है ।

स्वामी प्राणनाथ और कबीर दोनों ने चौदह लोक की कल्पना का स्वीकार किया है । परंतु दोनों सन्तोंने इहलोक का जो नामकरण किया है इनमें थोड़ा-सा शाब्दिक परिवर्तन द्रष्टिगत होता है । स्वामी प्राणनाथजीने ये नाम, इस प्रकार गिनवाये हैं । (१) सतलोक, (२) तपलोक (३) जनलोक (४) महरोलोक (५) स्वर्गलोक (६) पितृलोक (७) मृत्युलोक । दोनों सन्तोंने स्वीकारा है कि महाप्रलय के वक्त इन सारे लोक का विनाश होता है ।

स्वामी प्राणनाथजीने संसार को स्वप्नवत् मानते हुए सारे जगत् को मायामय कह दिया है । सांसारिक सुखप्राप्ति की झंखना भी माया के कारण ही होना स्वीकार करते हुए कहते हैं कि ब्रह्म सृष्टि भी माया से दूर नहीं रहती ।

कबीरजीने माया को ब्रह्म की शक्ति के रूप में स्वीकारा है । माया सिर्फ ब्रह्म की स्वतंत्र इच्छा पर चलनेवाली शक्ति है । माया का मिथ्यात्व उन्होंने नहीं स्वीकारा परंतु इसे उपेक्षणीय बताया है । माया के आड़म्बरों को दूर करके ईश्वरीय सत्य की सही पहचान कर लेने पर यही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग खुलता होने की बात पर उन्होंने बल दिया है ।

दोनों सन्तोंने इस माया के बंधनों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए 'अहम्' का त्याग करने का उपदेश दिया है । प्राणनाथजीने और कबीरने अहम् के मिथ्याभिमान को दूर करके ज्ञान, कर्म और भक्तिमय कर्तव्य भावना का उपदेश दिया है ।

भारत के विभिन्न राज्यों में जन्मे, पले और सन्त के रूप में भक्तिमय जीवन व्यतीत करनेवाले दोनों सन्तों की विचारधारा में जो साम्य दृष्टिगत हो रहा है वह हमारे श्रद्धेय

धर्मग्रन्थों की देन है । वही हमारा विश्वास और श्रद्धा है । वही हिन्दु धर्म की असल थाती है ।

#### ५.२.१ आलोच्य संतो के जीवनादर्श :

स्वामी प्राणनाथ एवं कबीर आलोच्य दोनों सन्त दार्शनिक नहीं थे । वे दोनों साधक थे, परमात्मा के भक्त थे । विचारधारा में आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता एक ही मूल की दो शाखाएँ हैं । इसलिए इन साधकों का आध्यात्मिक लक्ष्य ही यदि दार्शनिक लक्ष्य मान लिया जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अपने जीवन में कई आदर्श या सिद्धांत निश्चित किये थे, जिन के द्वारा वे अपने जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति कर सके । सन्तों के मतानुसार अपने हृदय की चिर-ज्योति का साक्षात्कार करना और उसके साथ एकमेक भाव उत्पन्न कर उसी में लीन हो जाना ही मनुष्य जीवन का महानीय प्रयोजन है । ईश्वर सत्यरूप है, सच्चिदानन्द है, इनके सही रूप को पहचान लेने में ही जीवन का सच्चा सुख समाया हुआ है । आलोच्य सन्तों का जीवन लक्ष्य ईश्वरैक्य था और इसलिए लक्ष्य सर्वोच्च था ।

इस सर्वोच्च लक्ष्य के राही, भक्त या साधक अलग मार्ग अपनाकर भी अंत में एक ही राही या साधन कोई भी मार्ग चुने परन्तु लक्ष्य तो एक ही होगा । इस लक्ष्य प्राप्ति के साधन या जीवन के आदर्श चाहे दोनों के भिन्न-भिन्न भी रहे हों या नहीं, परंतु उन दोनों की विचारधारा, कठिनाईयाँ, अपेक्षाएँ हमेशा भिन्न रही हैं । दोनों साधकों के जीवन का लक्ष्य अपने जीवनादर्श द्वारा परमात्मा के रहस्य, के उद्घाटन करना ही है । जिज्ञासु साधक परमात्मा मिलन और इसके रहस्योद्घाटन के लिए बेचैन रहते हैं । इस साधक की प्राप्ति के मार्ग में बाधकता अनेक विश्वास, भिक्त, समर्पण और निश्चयात्मकता के द्वारा अपने जीवन मार्ग पर अटल और दृढ़ विश्वास रखता है । अतः लक्ष्य प्राप्ति असंभव नहीं हो सकती । जीवन की कठोर साधना के आधे मार्ग में फिसल जानेवाले साधक भौतिक बंधनों के कारण ही मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते ।

## कर्म, ज्ञान और भक्ति :

आलोच्य संतोने इन तीनों आदर्श को अपनी भक्ति की राह के आदर्श बनाये थे । ये तीनों आदर्श भिन्न महसूस होते होंगे । परंतु हम पूर्णरूपेण भिन्नत्व महसूस नहीं कर पाते । तीनों का बाह्य ढाँचा भिन्न प्रतीत होता है परंतु सच्चाई में तीनों परस्पर पूरक हैं । तीनों मार्ग में विश्वास रखनेवाला भक्त ज्ञान प्राप्ति के बाद अग्रसर होता है । तब ही निष्काम कर्म की प्राप्ति कर सकता है । अनासक्त कर्मयोग के बिना, भक्ति के बिना कर्मफल के मोह का त्याग नहीं कर सकता । इसलिए साधक या भक्त कोई भी मार्ग चुने, परंतु समयान्तर पर शेष दोनों मार्ग को अपनाये बिना ध्येय प्राप्ति नहीं कर सकता । इसलिए साधक या भक्त कोई भी मार्ग चुने, परंतु समयान्तर पर शेष दोनों मार्ग को अपनाये बिना ध्येय प्राप्ति नहीं कर सकता । अतः श्रीमद्भगवद्गीता की विचारधारा के अनुसार साधक को अनासक्त भक्त, निष्काम कर्मयोगी और एक ही परमात्मा के प्रति अपने कर्म के समर्पण करना चाहिए तब ही परमात्मा प्राप्ति का ध्येय सिद्ध हो सकता है । इस तरह ये तीनों आदर्श एक दूसरे के बाधक नहीं परंतु पूरक साबित होते हैं । महात्मा तुलसीदास ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर महसूस नहीं करते ।

"ज्ञानहिं भक्तिहिं नहीं कछु भेदा ।

उभय हरहिं भव संभव खेदा ।।<sup>६१</sup>

परंतु साधक को इस जगत की माया से विरक्ति रखनी चाहिए । ज्ञान और भक्ति ये दोनों भक्तिमार्ग के महत्त्वपूर्ण साधन हैं । फिर भी ज्ञानयोग की सफलता भक्ति पर आधारित है । कामना, वासना पर विजय और तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के प्रयत्न ही ज्ञानयोग की विशेषता है । इस प्रक्रिया में भी भक्ति की सहायता लेनी चाहिए । भक्ति की सहायता के बिना कदम-कदम पर पथभ्रष्ट होने की संभावना रहती है । इसलिए भक्ति ज्ञानयोग और कर्मयोग से भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है । ज्ञान भक्ति का पूरक और प्रकाशक है ।

ज्ञानमय उपासना और भक्ति में कोई अन्तर नहीं है । उपासना की सफलता के लिए अनन्य प्रेम होना आवश्यक है ।

अतः हिन्दु धर्मग्रन्थों से प्रभावित स्वामी प्राणनाथजीने भक्तिपूर्ण कर्मयोग उत्तम माना है । कबीरने नामस्मरण युक्त प्रवृत्ति मार्ग उत्तम माना है ।

कबीरजी के विचारानुसार नाम-स्मरण भक्ति द्वारा हुकम की स्वीकृति और हुकम के सामने नत-मस्तक होकर जीवन के अनुराग से मुक्त हो परोपकार और आत्म-समर्पण द्वारा निरंकारी ज्योति में विलीनता ही जीवन का परम लक्ष्य है । जीवन में यही चरम आनन्द की अनुभूति है । यही जीवन का साफल्य है । निरंकारी ज्योति में एकाकार होना तीव्र भक्तिभाव और समर्पण के बिना संभव नहीं । कबीरजी ज्ञान और कर्म के विरोधी नहीं थे । उन्होंने ज्ञान मार्ग की दुरूहता, वैराग्य, और योग साधना को, जो ज्ञानियों का सुक्ष्म विषय है, गुरु की महत्ता में ही पूर्ण कर लिया था । उनके मतानुसार भक्तिभावपूर्ण, गुरुमुख बनकर गुरु द्वारा ईंगित मार्ग पर चलने से ही भक्त निर्मल बुद्धि का अधिकारी बन जाता है । गुरु सरीखी मानव विभूति की अपार कृपा पानेवाला ज्ञानी बन जाता है । गुरु के आशीर्वाद द्वारा अहम् का नाश होता है । परिणामतः नाम-स्मरण में शिष्य चित पिरो सकता है । नाम-स्मरण के द्वारा तीव्र भक्तिभाव का उदय होता है । नाम जपनेवाला भक्त स्वयं उसके समवर्ती 'नामी' में ही लीन हो जाता है । कबीरजी इस अवस्था को ही मुक्ति कहते हैं । इसकी प्राप्ति गुरुमुख भक्त में कर्मयोग के आदर्श का बीजारोपण करती है । भक्त अहम् को त्यागकर सारे कार्य हुकम की इच्छानुसार ही करता है । अतः वह प्राणीमात्र का सेवक बन जाता है । साधक कभी कर्तव्य से विमुख नहीं होल सकता । कबीरजीने तो सांसारिक कर्तव्यों एवं फर्ज के प्रति जागरूकता बतायी है । अतः कबीरजीने कर्म, ज्ञान और भक्ति को पथेष्ट मात्रा में समन्वित करके उसीको प्राधान्य दिया है । कबीरके पथ को निष्काम प्रवृत्तिमय ज्ञानपूर्ण भक्तिमार्ग कहा जाय तो अनुचित न होगा ।

**"प्रेमलक्षणा भक्ति द्वारा साकार की उपासना और नाम स्मरण द्वारा निराकार की उपासना :**

आलोच्य दोनों सन्तोंने भक्ति के स्वरूप में प्रेमतत्त्व का स्वीकार किया है । प्रेमभावपूर्ण कियेजानेवाले भगवतध्यान को ही भक्ति का नाम दिया है । श्रीमद्भागवत में भक्ति के नव प्रकार बताए हैं...

"श्रवणं कीर्तन विष्णौः स्मरण पादसेवनम् ।

अर्चन वन्दन दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् ॥

इति प्रसार्पिता विष्णौभक्ति श्येन्नव लक्षणा ॥<sup>६२</sup>

गौस्वामी तुलसीदासने भक्ति के चार प्रकार बताये हैं<sup>६३</sup>

(१) वैद्यी भक्ति

(२) रागानुगा भक्ति

(३) भावभक्ति

(४) प्रेमभक्ति

इस तरह भक्तिमार्ग को भी सगुण एवं निर्गुण धारा में विभाजित किया जा सकता है । वैद्यी भक्ति में शास्त्रिक विधि-विधानों से भगवदपूजा, अर्चना, पादसेवन और जोगादि, साधुसेवा, नैवेद्य, एकादशी परिक्रमा, भजन इत्यादि का चलन है, वैसा ही सगुण भक्ति में भी है । परंतु निर्गुण भक्ति परभक्ति होने से उनमें श्रवण, कीर्तन, ध्यान, समाधि, प्रपत्ति, वक्ष, नमस्कार आदि पराभक्ति के साधन हैं ।<sup>६४</sup> शंकराचार्यने स्थुला, सूक्ष्मा जैसे दो भेद भी स्वीकारे हैं । वैष्णवोंने वैद्यी, रागात्मिका, रागानुरागा, उत्तमाभक्ति प्रेमाभक्ति आदि भक्ति के प्रकार बताये हैं । किन्तु भागवत के अनुसार साधन- साध्य भेद से भक्ति के दो प्रकार बताये हैं और प्रेम लेखणा भक्ति को साध्य भक्ति कहा है ।

स्वामी प्राणनाथने प्रेमलेखणा भक्ति का आदेश देते हुए भक्त और भगवान् सम्बन्ध को पति-पत्नी (दाम्पत्य) प्रेम संबंध जैसे माने हैं । भक्त को चाहिए कि एक परमात्मा में विश्वास रखकर उसीकी भक्ति सच्चे हृदय से, शुद्ध मन से करें ता कि ध्येय प्राप्ति में विलंब



न हो पाये । यदि भक्त विविध परमात्मा को पुकारे तो साध्य प्राप्ति संभव नहीं हो सकती इसलिए प्राणनाथजी कहते हैं कि ...

" पतिव्रता नारि ते पतिने पूजे सेवे उनके पेरे ।

पीठ पर वचन सुणे जो वांङ्कु, तो देहत्याग व्यहां करे। " ६५

"पतिव्रता सेविए न भइए वैश्या जेम ।

एक मेली अनेक कीजे, तेनी थाय घणवद केम ? " ६६

इस तरह उन्होंने परमात्मा को ही साधन और साध्य दोनों भाने हैं । देवी भागवत में प्रेमलक्षणा के लक्षण बताते हुए गुण, श्रवण, नाम-स्मरण, नाम-किर्तन इत्यादि बताये गये हैं।<sup>६७</sup> इसके द्वारा भक्त भगवान के साथ अभिन्नत्व की स्थिति पर पहुँच जाता है ।<sup>६८</sup> प्रणामी संप्रदाय की द्रष्टि से यही एक सर्वोत्तम मार्ग है क्योंकि अपनी आत्मा को पहचानने की हर एक को विश्वासा होती है और उनके साथ ही प्रेम-भक्ति का कव्वारा उड़ता है । इसलिए ही प्राणनाथजीने आत्मा की पहचान को भी अपने जीवन का आदर्श माना है...

"पहले आप पहचानो साधो ।

पहले आप पहचानो ।।

बिना आप चिन्हें पारब्रह्म को

कौन कहे मै जान्ये ।। " ६९

आत्मा की पहचान के बाद भक्त के हृदय में उत्कट प्रेम की बौछारें उड़ती हैं । वह भगवान के विचारों में डूब जाता है और पल मात्र में परमात्मा के निकट पहुँच जाता है ।

"पंथ कोटी कलय

प्रेम पंहुचावै मिचेयलक " ७०

भगवान की प्राप्ति के मार्ग में यदि दुःख दर्दभी आ जाय तो भक्त को मंजूर रहता है

"पुखते विरदा उपजै, विरह प्रेम इसक ।

इसक प्रेम जब आइया, तब नेहये मिलिए हक्क ।।''७१

इस तरह दुःख या तड़प के द्वारा संवेदना जाग्रत करके प्रियतम के प्रति अपार स्नेह की निष्पत्ति त्रदा है । स्वामी प्राणनाथजी को विश्वास है कि यदी विरह और प्रेम उसे परब्रह्म तक जसर पहुंचायेगा ।

कबीर किसी सम्प्रदाय के स्थापक या प्रचारक नहीं थे । उन्होंने तो सच्चे मानवता के गुणों का समन्वय करके एक ऐ।सापथ बताया जिस पर विश्वापूर्ण रश्म से चलकर कोई भी मानवी या भक्त परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है । उन्होंने विश्वास, प्रेम, गुरु-आदेश का पालन नम्रता और भक्ति का संदेश दिया जो किसी भी साधक के लिए रूचिकर मार्ग बन सकता है । संत भक्त ने प्रेम के मार्ग को स्वीकारा है । प्रेम को ही परमात्मा के प्रति प्रेरणा का स्रोत और जिज्ञासु की पिपासा का आधार माना है । प्रेम के आश्रय ही परमात्मा और साधक एकात्मभाव का अनुभव कर सकता है । अतः स्पष्ट है कि प्रेमपूर्ण नाम-स्मरण या नाम में स्मरण या नाम में प्रेमभक्ति जीवमुक्ति का साधन है ।

कबीरजी की विचारधारा किसी सम्प्रदाय विशेष या धर्ममार्ग विशेष का अनुकरण नहीं करती । बल्कि भक्ति, ज्ञान, कर्मयोग, प्रेम सब मार्गों के सदगुणों का समन्वय करके, दुर्गुणों का त्याग करती हुई एकनवीन और सहज गृहणीय पथ का अवलोकन कर रही है।

कबीरने प्रेमलक्षणा भक्ति की अपेक्षा प्रेमभाव का महत्त्व दिया है । इनके लिए साधक को स्वभाव से अन्तर्मुखी बनना जरुरी है । अन्तर्मुखी होने के दो मार्ग हैं...

(१) सुतिमार्ग -

(२) ज्योतिमार्ग -

श्रुतिमार्ग दूसरा मार्ग है और साधक इस मार्ग में कभी भी फिसल सकता है, इसलिए सन्तोंने ज्योतिमार्ग को श्रेष्ठ कहा है । इसमें गुप्त के वचनानुसार नाम, जप करते हुए अंतर में चिर ज्योति दीप्ति पर ध्यान लगाना, उसके चिरन्तन सत्य के समजने का सहप्रयास करना और अन्ततः उसका साक्षात्कार करना आदि ज्योतिमार्ग द्वारा अन्तर्मुखी होना और

आत्मबोध की साधना कहलाता हैं । सन्तो ने इस प्रथ को श्रेष्ठ माना है । इस पथ का राही शीघ्र ही अंतर के यथार्थ रूप को समझकर उसपरम ज्योति में विलीन हो जाने के उच्चतम लक्ष्य को जाता है । कबीरजी ने अन्तर्मुखी हो ने का सीधा उपदेश नहीं दिया । कबीरजी की संपूर्णवाणी नाम-स्मरण द्वारा आन्तरिक ज्योति प्रकट करने और परम में विलीन हो जाने का चिरन्तन संदेश दे रही है । अतः कबीरजी को भी यदी ज्योति मार्ग के आश्रय आन्तरिक सता को पहचानने के इच्छुक परम सन्त मान लिया जाय तो योग्य ही होगा । कबीरजी ने अपनी भक्ति में प्रेमभावना को महत्त्व देकर संसार में जलकमलवत जीवन-यापन करने का संदेश देते हुए प्रवृत्ति में निवृत्ति का आर्द अपनाया है । सारांश यह है कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य है ब्रह्मैक्य । उसकी प्राप्ति के सारे साधन बराबर है फिर भी यदी श्रेष्ठ होगा जो लक्ष्य तक पहुँचा सके । साधक जिस साधन से लक्ष्यप्राप्ति करता है वही उनके लिए श्रेष्ठ हो जाता है । कबीरने नाम-स्मरण द्वारा परमात्मा में विलीन होने की जो साधना और लक्ष्य बताये हैं वे अपनी जगह उच्च एवं ग्राह्य हैं । अतः प्राणनाथजी की प्रेमलक्षणा भक्ति और कबीर की भक्ति में पैमजाप दोनों आदर्श सचमुच अनुपम है ।

### गुरुभक्ति :

गुरु शब्द भारतीय संस्कृति की अमूल्य जाती है । इसका अर्थ है "गु" से अंधकार और "स" से दूर करनेवाला ।<sup>७२</sup> अतः जीवन से अज्ञान के अंधकार को दूर करनेवाली इस महान विभूति के प्रति श्रद्धा, विश्वास, सेवा, पूजा – अर्चना का होना स्वाभाविक है । गुढ़ आध्यात्मिकता, ज्ञान की प्राप्ति गुरु के बिना संभव नहीं हो सकत । मध्यकालीन युग के सन्त के बिना ज्ञानप्राप्ति की संभावना ही नहीं स्वीकारा स्वामी प्राणनाथजीने तो गुरुप्रसाद से ही परब्रह्म की ज्योति प्राप्त की थी<sup>७३</sup> इसलिए उन्होंने गुरु की आवश्यकता, गुरु की महिमा और गुरुभक्ति को आदर्श अपनाया है । देखिए...

" सतगुरु साई मिले जब सोचा,

तब सिंघ बिंद परचावे

प्रगट प्रकास करे परब्रह्म सो,

तब बिन्द अनेक उड़ावे ॥ १७४

आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों का ज्ञान गुरु द्वारा ही मिलता है । उन्हीं के द्वारा जीवन में संशय दूर होता है...

" सतगुरु सोह जो वतन बतावें

मोहमाया और आप

पार पुरुष जो परखावे

महामत तासों कीजे मिलीय ।।"७५

स्वामी प्राणनाथ को परमात्म का ज्ञान गुरु द्वारा गुरु कृपा से ही मिलता है । गुरु परसादे नाटक पेसया । ७६

परब्रह्म परमात्मा की मनसा, वाचा, कर्मणा-सेवा करनेवाला, परमात्मा के रहस्यों को बतानेवाला, ईश्वर के एकत्व में विश्वास स्थापित करनेवाला, सांस्कृतिक धर्म-ग्रन्थों का रसास्वादन करनेवाला, सर्वधर्म के प्रति समान भाव रखनेवाला व्यक्ति ही सद्गुरु कहला सकता है । स्वामी प्राणनाथजी कहते हैं कि ...

"सतगुरु साधु वाको कहिए जो अगम की देवे गम ।

इद-वेहद सब समजावे भांगे मनका भरम ।

महामत कहे गुरु सोई कीजे जो अलस की देवे लख ।

इन उलही से उलहाए के, पिया प्रेम करे सम्मुच ।"७७

देताश्वेतर उपनिषद में कहा है, "यस्य देवे पराभक्ति थया देव तथा गुरो "

अर्थात् जिसकी देवता में पराभक्ति है, वैसी भक्ति देव में है, वैसी ही भक्ति यदि गुरु में है तो आत्मा में यथार्थ तत्त्व का प्रकाश होता है वरना नहीं होता, ऐसी भक्ति, परमात्मा के प्रति प्रेम गुरु आशिष के बिना संभवनहीं है । इसलिए गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा प्राणनाथजी के सम्प्रदाय की नींव है । स्वामी प्राणनाथने गुरुवाण का 'तारतम संदेश' का ग्रन्थ ज्ञान की रोशनी देनेवाला उच्च सच्चा थय प्रदर्शक गुरु है ऐसा मानते हुए उसको ही गुरुगादी पर स्थापित किया था, परंतु कालान्तर में बाह्य पूजा विधि का महत्त्व बढ़ गया ।

संक्षेप में सदगुरु परमात्मा का प्रतिनिधि है, उनकी पूजा या सेवा करना अहोभाग्य है, क्योंकि उनकी पूजाया सेवा करना अहोभाग्य है, क्योंकि उनकी चरणरज को आँख पर लगाने से हृदय में विशालता और उदारता जैसे गुण खिलते हैं । मस्तक पर लगाने से बुद्धि प्रवाह तेज होता है । इसलिए गुरु की सेवा का मौका पाना पूर्वजन्म के पुण्यों का फल ही हो सकता है ।

कबीरजी समाज की बातों को ध्यान में रखकर गुरु का महत्त्व स्वीकार करते हैं । उन्होंने अहम् को त्यागकर और श्रद्धा भावसे गुरु की निष्कपट खोज पर बल दिया है । न्यू टेस्टामेन्ट में हंसाने भी बताया है कि...

"पूरब होवै लिखिया, तो सतगुरु पावै ।" ७८

अर्थात् जिसके भाग्य उच्च हों, वही मोक्ष प्रदाता गुरु या सकते हैं । परंतु गुरु को पहचाने कैसे जाय ? मोक्ष प्रदाता गुरु के लिए भी अपने विचार व्यक्त करते हुए गुरु अर्जुनने कहा है कि...

"सतिपुरुष जिनि जानिया, सतिगुरु तिसका नाउ ।।" ७९

ऐसे सतगुरु ही मोक्ष प्रदाता होते हैं । जीवन में अज्ञान के अंधकार को दूर करनेवाले और सतपंथ को प्रदर्शित करनेवाले सतगुरु होते हैं । वे अन्तर में विवेक-ज्योति प्रज्वलित करके परमात्मा का साक्षात्कार करवाते हैं । वे परमात्मा की शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं । वे शारीरिक चेतना से ऊपर उठकर ज्योति-पुत्र बनकर परमात्मा में लीन हो जाते हैं । गुरु स्वयं ज्ञान के तेजपुंज हैं, वे परमात्मा मिलनके मार्ग को जानते हैं । वे सन्तोषी होते हैं । सारी मानव-जाति का हित उनके हृदय में स्थित होता है । स्वयं कबीरजीके शिष्यों ने भी कहा है कि गुरु जलते हुए विश्व की प्रचंड ज्वालाओं में पीड़ित मानवता को हिमवत शीतलता प्रदान करनेवाले तथा त्रिलोक की मायावी तिमिरान्धता को ज्योति किरण में ज्ञान-दिप से विदीर्ण करनेवाला वह महाकृपालु साधन है । ऐसे गुरु के उपदेश को हृदय में घरने से विषाद और चिन्ता के बादल टूट जाते हैं । हर्षोल्लास और सुख की लालिमा सर्वत्र प्रकाश फैलाती है ।

"गुरु दाता गुरु हिवै धर, गुरु दीपकतिह लोई ।

अमर पदारथ नानको, मनि मानिल ए सुख होई ।।"८०

ऐसे गुरु की कृपा उतरने पर ही भगवान के साक्षात् दर्शन होते हैं । गुरुकृपा द्वारा ही हरिलाभ होता है । गुरु ही अज्ञान मिटाकर ज्ञान का उजियारा फैलाकर मोक्ष प्रदाता बनते हैं । गुरु ही शक्ति के आगार होते हैं । सच्चे पथ-प्रदर्शक होते हैं । ज नाम-स्मरण की कमाई के द्वारा निर्वाण-प्राप्ति का पथ बताते हैं । इसलिए ...

"गुरु समानि तीरथु नहीं कोई, गुरु संतोखु तासु गुरु होई ।

गुरु दरियालु सदा जतु निरमलु, मिलिया दूरमति मैल हरै ।

सतिगुरु पाईए पूरा नावणु, यस् पटेतस देव करै ।

रता सचि नाथि तलहीसतु, सो गुरु परमलु कहिए ।

जाके वासु बनारसपति शंकड़ैं तासु चरण लिख रहिए ।।"८१

अर्थात् वे स्वयं तीरथ है जिनके समीप बैठने मात्र से सारे पाप धुल जाते हैं । वे संतोष के भण्डार है । वे चिर-निर्मल जलस्रोत हैं जिनसे दुर्मति की मैल हरण हो जाती है । वास्तव में यदि सतिगुरु पूर्ण हो तो पशु सरीखे पतित और कुटिल मनुष्य को भी देवत्व पद तक पहुँचाने में समर्थ होते हैं । उसके हृदय से स्त्रवित होनेवाली सुगन्धित विश्व प्रकृति को सुगन्धित करेगी । ऐसे महामानव के चरणों में मस्तक झुकाने से अभिलाषित कल्याण की प्राप्ति स्वभाविक है । समर्थ गुरु के सक्षम उपदेश द्वारा परमात्मा प्राप्ति स्वभाविक ही है । समर्थ गुरु सक्षम उपदेश द्वारा परमात्मा प्राप्ति संभव हो सकती है ।

गुरु की वाणी में विश्वास करना, उनके प्रति श्रद्धाभाव रखना और उनके आदेशों का अक्षरशः पालन करना ही सर्वश्रेष्ठ गुरुसेवा है । सच्चे भक्तिभाव और श्रद्धा से गुरु सेवा करनेवाला शिष्य ही सन्मान का पात्र बन सकता है । इसीलिए कबीर कहते हैं कि

"गुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार,

लोचन अनंत उघाड़या, अनंत दिखावणहार ।।



## तारतममंत्र द्वारा मोक्ष प्राप्ति और कबीरवाणी द्वारा मुक्त-पथ आदर्श

प्रणामी संप्रदाय में तारतमवाणी का एक विशिष्ट महत्त्व है । जो इस सम्प्रदाय में प्रविष्ट होता है, उसे यह तारतममंत्र वाणी का ज्ञान दिया जाता है । सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि स्वयं कृष्ण भगवानने गुरु देवचन्द्रजी महाराज को दर्शन देकर तारतममंत्र का ज्ञान प्रदान किया था, इसलिए इससे अखण्ड परमधाम की प्राप्ति हो सकती है ।

श्रीमद्भागवतगीता में उक्ति है कि ये निशा सर्वभूतानां तस्यां जागति संयमी ।"८२ जब सारी दुनिया सोती है तब संयमी (ज्ञानी) जागते हैं । देवचन्द्र महाराज गुरु हरिदासजी महाराजने उन्हें 'भज तन श्री वृंदावन कुंजविहारी नित्य विलास ।"८३ का मंत्र देकर सख्य भाव से कृष्णभक्ति करने का आदेश दिया । जामनगर (नौतनपुरी) स्थित राजमंदिर के एक कमरे में भक्तिभाव में मग्न देवचन्द्रजी को स्वयं कृष्ण भगवान के दर्शन देकर तारतम का ज्ञान दिया था । इसके द्वारा चौदह ब्रह्माण्ड, अष्टावरण, मोहतत्त्व, खँड़ और अखंड शक्ति, बिन्दु का भेद, जगत रचना के कारण, मूल प्रकृति, सुमंगला शक्ति अव्याकृत और उसके अन्तःकरण का भेद, सबलोक ब्रह्म, त्रिपाद विभूति, केवल ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म और अखण्ड दिव्य परमधाम के सच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म के भेद माने जाते हैं ।

तारतमज्ञान के सारे संशय दूर हो जाते हैं । नवरंग स्वामी कहते हैं कि.....

"निज तारतम तेज प्रकाश,

संशे सबे गये जो नाश ।"८४

अर्थात् इनके द्वारा वास्तविक बोध होता है । इस सम्प्रदाय के मतानुसार तारतमवाणी द्वारा ही परमात्मा के ज्ञान की प्राप्ति की संभावना रहती है । स्वामी प्राणनाथजी कहते हैं कि...

"तारतम तणो अजवास, पूरण मनोरथ कीधा साथ ।"८५

और आगे कहते हैं कि...

"तारतम तेज छे निरमल, जोति अति अजवास ।"

जन्म-मरण में बन्धनों से छुड़ानेवाला तारतम ज्ञान संसार पर करवाकर नित्य मुक्ति का प्रदाता माना जाता है । अतः इसे तारतम मंत्र कहते हैं, जो 'तम' अर्थात् अंधकार का सागर पार करवा देता है । स्वामी प्राणनाथ लिखते हैं कि...

"तारतम का बल जाने कोई, एक जाने मूल स्वरूपै ।

मूल स्वरूप के चित की बातें, तारतम में कई रूप ॥<sup>८६</sup>

तारतम के ज्ञान से हृदय में उजाला होता है । तारतम के अनेक भेद सम्प्रदाय के साहित्य में आलेखित किये गये हैं । परंतु ग्राह्य सार इतना ही है कि परमधाम को प्राप्त करने का यह महामंत्र है । यही एक कुंजी है जो परमधाम के सजाने को खोल सकती है । इस प्रकार सच्चिदानंद के तात्त्विक रहस्य का विवेचन तारतमवाणी ही है । मूल तारतम द्वारा आस्तिकता का आविर्भाव होता है । जहाँ श्रद्धा और विश्वास है वहीं तारतम है । जहाँ तारतम है वहीं युगल स्वरूप कृष्ण की भक्ति है । जहाँ कृष्ण की युगल भक्ति है वहीं तारतम प्रकाश है । अतः तारतम ज्ञान ही मुक्ति दिलानेवाला तत्व है ऐसा इस सम्प्रदाय में माना गया है स्वीकारा गया है या ऐसा प्रणामी सम्प्रदाय का विश्वास है । संक्षेप में इस सम्प्रदाय में तारतम ज्ञान एक आदर्श है ।

### **कबीरवाणी द्वारा मुक्ति पथ :**

कबीरने हिन्दु धर्म के शास्त्रों का सार निचोड़कर धर्म का सच्चा ज्ञान अपनी उपदेशात्मक वाणी और दोहों द्वारा सामान्य जनता तक पहुँचाया । इतना ही नहीं उन्होंने कुरान, बाइबिल और वेद-पुराण उपनिषदों के ज्ञान का समन्वय करके जनता के सामने पेश कर दिया । कबीर के दोहो-पदों की विशेषता ही समन्वय भावना है, इसलिए उनके शिष्य हिन्दु भी थे और मुसलमान भी । कबीरजी इन सारे धर्मों के बाह्य आड़म्बर और मिथ्यावाद के खोखलेपन को दूर करके एक मानवतापूर्ण धर्म द्वारा सत्कर्मों को ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं ।

उन्होंने सेवक, नौकर, राजा, छात्र, व्यापारी, नारी आदि सबको धर्म का रूप, परमात्मा का स्वरूप और सतपथ की राह बताकर सिर्फ व्यक्ति मात्र में मानवता का आरोपण करना चाहा है ।

### **एक परमात्मा में विश्वास :**

स्वामी प्राणनाथ और कबीर दोनों ऐसे सन्त थे जिन्होंने एक ही परमात्मा में विश्वास व्यक्त किया है । स्वामी प्राणनाथ और कबीर दोनों का विश्वास है कि परमात्मा तो सिर्फ एक ही है । हम उसे अलग-अलग नाम से पुकारते हैं, जैसे ईश्वर, परमेश्वर, खुदा आदि । सारे भक्तजनों के जीवन का ध्येय तो एक ही है अपने परमात्मा की प्राप्ति अर्थात् सबका लक्ष्य एक है परंतु विविध धर्मों के माध्यम से परमात्मा को पाने की राह सबकी अलग हैं । फिर भी हम चाहे कोई भी राह अपनाये परंतु राह का अन्तिम छोर तो एक ही है और वह है परमात्मा ।

विविध धर्म एवं सम्प्रदाय का माध्यम अलग है, भाषा अलग है इसलिए हमको भी एक दूसरे को समझने का प्रयत्न ही नहीं करते । भारत के विविध धर्मों में हमारी इतनी दृढ़ आस्था रही है कि बस धर्म के नाम पर सिर्फ इतने शब्द - 'हमारा धर्म कहता है कि' रक्त की नदियाँ बहाने के लिए काफ़ि हो जाते हैं । धर्म के नाम पर हम बिल्कुल असहिष्णु हैं, अतः परस्पर एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करने की अपेक्षा हम एक दूसरे को शक्ति बताने के लिए उतारू हो जाते हैं । धर्म तो मनुष्य जीवन को अनुशासित करनेवाली शक्ति हैं । मनुष्य को मानव बनाने की धर्म में क्षमता है । कोई धर्म मानव-मानव के बीच दीवारें खड़ी नहीं करते, बल्कि दीवारों पर धराशायी करके धर्म सबको संकीर्ण विचारधारा में बाँध देने की अपेक्षा सारे धर्मों के केन्द्रबिंदु को समझने का प्रयत्न करें तो हमें इनमें साम्यता महसूस होंगी । स्वामी प्राणनाथजी अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि...

"नाम सारे जुदे धरें, लह सबो खुदी रसमा ।

सबमें उमत और दुनिया, साईं खुदा सोई ब्रह्म ॥<sup>८७</sup>

अर्थात् नाम अलग होने से और रश्म अलग होने के कारण हम अज्ञानवश समझ नहीं पाते परंतु परमात्मा तो एक ही है । चाहे हम इसे खुदा कहें या ब्रह्म कहें । हम धर्मग्रन्थ को बिना समझे पढ़ते हैं इसलिए इसके हार्द को समझ नहीं पाते ।

"सबों दावा किया अरस का, हिन्दु या मुसलमान ।

वेद कतेब दोऊ पढ़े, पड़ी ना काहूँ पहचान ॥"८८

"लाड़ फिरकें जुदे हुए हिन्दु मुसलमान ।

और खलक कोती काहूँ, सबमें लड़े गुमान ॥"

माणे उपरका सबों लिया और लिया अहंकार ।

फिरतें फिरे सब हक से, बोंधे जाये कतार ॥"८९

स्वामी प्राणनाथने इन पदों में हिन्दु एवं मुसलमान दोनों को अपनी-अपनी धर्मोन्याता के लिए व्यंग्य किये हैं या दोनों पर कठोर आधात किये हैं और अंत में स्पष्ट किया है कि...

"कहे सब एक वजूद है, और सबमें एकदम ।

सब कहे साहेब एक है, पर सबकी लड़े रसम ॥"९०

उन्होंने कुरान और वेद-पुराण का समन्वय करते हुए विविध दृष्टांत के द्वारा परमेश्वर के ऐक्य को समझाने का प्रयत्न किया है । संक्षेप में स्वामी प्राणनाथने धर्म समन्वय के द्वारा तत्कालीन समाज में हिन्दु-इस्लाम धर्म में एकता और उनके माध्यम से हिन्दु और मुसलमान जनता में एकता की भावना कर देना चाहते थे ।

कबीर समाज सुधारक सन्त कवि थे वे अपने समय की सबसे बड़ी समस्या को हल करके समाज को सुखी बनाना वे अपना धर्म समझते थे । कबीरने राम-रहीम, केशव-करीम, अल्लाह-राम और बिस्मिल-विश्वंभर की एकता सिद्ध करने का प्रयास किया ।

"हमारे राम रहीम, करीम कैसो अलह राम सोई ।

विकसित वे ही विसंभर एके, और न दूजा कोई ॥"९१

इस तरह राम, रहिम, शिव, हरि, ब्रह्म, खुदा, गोड़, सतनाम, गुरूनाम आदि कोई भी नाम हो, इनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है। इनमें जिसको जिस नाम में श्रद्धा हो, जप सकता है। कबीर का उपासनीय राम दशरथ-पुत्र राम नहीं है, किन्तु हृदय-निवासी चेतन है। क्योंकि यही सार्वभौमिक सिद्धांत हो सकता है। कबीर साहेब के सारे सिद्धांत सार्वभौमिक हैं। अतएव उनका निर्देश है "हृदया बसे तेहि राम न जाना"।<sup>१२</sup>

किसी पवित्र अवतारित नाम के जप से मन में सात्त्विकता एवं कुछ एकाग्रता आती है, परंतु यही सर्वोच्च साधन नहीं है। यही तो रोते हुए बच्चे के मुँह में काजु का चेहुवा देना है। उससे वह थोड़ा चुप हो जायेगा। परंतु उसे माँ के सच्चे दूध की आवश्यकता है। हसी प्रकार साधक को स्वस्वरूप का बोध चाहिए। अपना चेतनस्वरूप ही अपना परम निधान है। उसके लिए ही राम, हरि, ब्रह्म, आदि शब्द प्रयुक्त किये जा सकते हैं। अपने स्वरूप के अलावा यदि चेतन है तो सजाति है। यदि जड़ है तो विजाति है। अपने चेतन स्वरूप के अलावा अपना लक्ष्य की नहीं है। मेरी अपनी आत्मा ही राम हैं। वही पारख स्वरूप शुद्ध चेतन है। राम-राम कहने की आवश्यकता नहीं किन्तु विषय-वासनाओं एवं विकारों को त्याग कर अपने चेतनरूप राम में रमने की आवश्यकता है। मन से विषय-विकार हट जाने पर उसमें चेतन को ही बोध रह जाता है। इस बोध में स्थित होना ही राम का सेवन है राम में रमना है। कबीरने किसी सम्प्रदाय या धर्म के मानवी को महान नहीं परंतु अपने मनुष्यत्व को महत्त्व प्रदान किया, क्योंकि धर्म तो सारे एक ही है। कबीरने धर्म की महानता की बात छोड़कर मनुष्यत्व, मानवता और सत्कर्म पर बल देते हुए परमात्मा की एकता को साबित करने का प्रयत्न किया है। विश्व में ईश्वर भी एक है और इसे पाने का मार्ग भी एक है। सत्कर्मों का मार्ग, सद्गुणों का मार्ग है।

अर्थात् दोनों धर्म के मानवी में से कोई बड़ा नहीं क्योंकि शुभ कर्म से विहीन दोनों व्यर्थ है। अतः परमेश्वर के प्रति प्रेम के द्वारा उन्होंने मानवता को संदेश दिया है।

प्रेम में स्वामी प्राणनाथ ने एक परमात्मा का संदेश दिया और कबीरने परमात्मा में एकता बतलाकर परमात्मा के प्रति प्रेम के द्वारा मानवता का पैगाम दिया है। इस प्रकार प्राणनाथजी ने परमात्माकी एकता द्वारा धर्म समन्वय किया है और कबीरने एक परमात्मा का उपदेश देते हुए मानवता को पैगाम दिया है।

### सतगुरु की पहचान :

स्वामी प्राणनाथ और कबीर दोनों ने सतगुरु की महिमा गाई है। परंतु सतगुरु किसे प्राणनाथजी कहते हैं कि जिसे सतगुरु की प्राप्ति हो जाय तो जीवन लक्ष्य सहज में मिल जाय, परंतु यदि गुरुकी खोज ही कच्ची रहे तो जीवन कभी लक्ष्य तक नहीं पहुँच पायेगा, इसलिए सतगुरु की खोज धैर्य से करनी चाहिए। स्वामी प्राणनाथजी सच्चे ज्ञान की अपेक्षा मिथ्या अहंकार और आडंबर के सहारे बन बैठनेवाले सतगुरु पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि.....

" ईश्वर के गुण गाय के

नायर मांगत दान

धिक धिक पड़ा ते मानवी

जो बेचत है भगवान ।

उदर कारण बेचे हरि को

मुढ़ो एहि पायो रोजगार।

मारते मुख उपर

वाको से जासी यमद्वार"<sup>९३</sup>

सच्चे सतगुरु तो मानवता देते हैं। जीवन का मार्ग-दर्शन करते हैं। कबीर कहते हैं कि.....

"जाना नहीं बूझा नहीं, समुझि किया नहिं गौन

अन्धे को अन्धा मिला, राह बतावै कौन ।।"<sup>९४</sup>

कुछ सत्गुरु परमार्थ-पथ के पथिक की तरह विनम्र एवं सच्चे दिल के होते हैं, परंतु वे धर्म के नाम पर केवल अंधश्रद्धा के पुजारी होते हैं। वे पोथी परंपरा, गुरुजन, समाज आदि की लकीरों से हटकर स्वतंत्र छानबीन नहीं करना चाहते। वे अपने स्वतंत्र विवेक का भी तो आदर करना चाहिए। क्यों, कैसे, कौन, कहां क्या आदि तर्क के बिना कभी सत्य का बोध नहीं हो सकता। तर्क उन्मादपूर्वक नहीं किन्तु विवेकपूर्वक होना चाहिए। श्रद्धा और बुद्धि दोनों का समन्वय चाहिए। उन गुरुओं तथा संतो से सत्य का बोध नहीं हो सकता जो सदाचारी तथा विद्वान भलें हो, परंतु जिन्होंने श्रद्धा के नाम पर अपनी आँखों में पट्टी बाँध रखी है। जो गुरु शास्त्रों की दुहाई एवं केवल शब्द प्रमाण पर अपनी मान्यताओं को शिष्यों एवं श्रोताओं पर लादना चाहते हैं। उससे सत्य का मोती नहीं मिल सकता। जिन्होंने श्रद्धा के नाम पर स्वयं अपनी आँखें बंद कर रखी हैं वे दूसरों की आँखों का प्रकाश नहीं बन सकते। अतएव जिज्ञासु को श्रद्धा एवं विवेकपूर्वक सत्य का खोजी होना चाहिए। इसीलिए कबीर कहते हैं कि....

" जाका गुरु है आंधरा, चेला काह कराय

अन्धे-अन्धा चेलिया, दोऊ कूप पराय ।।<sup>१५</sup>

कबीर सत्गुरु को सर्वोपरि मानते हैं, उसे महत्त्व देते हैं, परंतु अंधविश्वासपूर्वक नहीं। कबीर विवेकहीन गुरु को छोड़ देने की राय देते हैं। "झूठ गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बारो द्वारा न पावै शब्द का, भटके बारम्बार।" जो गुरु नामधारी, विवेकहीन है, स्वार्थ में अंधा और राग-द्वेष में डूबा है उससे शिष्यों का क्या उद्धार होगा। मान लो वह सदाचारी तथा ईमानदार है परंतु उसमें जड़ तथा चेतन क्या है, दोनों के गुण, धर्म, स्वाभावादि क्या हैं, मैं कौन हूँ, जगत क्या है, मेरा स्वरूप क्या है, मेरी स्थिति क्या है— इन सब बातों की कोई जानकारी नहीं है। वह अंध परंपरा से हटकर स्वतंत्र सोचना भी नहीं चाहता है, तो ऐसे गुरु से शिष्य का कल्याण कैसे होगा ? शिष्य प्रथम अबोध में रहता ही है, तभी तो वह बोध पाने के लिए गुरु की शरण में जाता है। अब यदि गुरु भी अबोधी है, तो वह शिष्य का कल्याण कैसे करेगा। जैसे दो अन्धे एक दूसरे को ठेलते हुए दोनों कुएँ में गिर पड़े, वैसे

विवेकहीन गुरु और चेले दोनो एक-दूसरे से अविवेक की बातें करते-करते अज्ञान तथा कल्पना के कुर्ण में ही पड़े रहते हैं।

शिष्य को सही रास्ता वही गुरु बता सकता है जो सत्य स्वरूप का बोधवान, पवित्र रहनी से संपन्न तथा निष्पक्ष विचारक है परंतु जो स्वयं विवेकहीन है वह दूसरे को क्या रास्ता बतायेगा !

संक्षेप में दोनो सन्तो ने गुरुकी पहचान करके गुरु की गुरुआई को स्वीकार करने की बात बतायी है और सत्गुरु सेही हम परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर सकते है।

### **बाह्याचार, तीर्थाटन, अंध-श्रद्धा का विरोध :**

स्वामी प्राणनाथने तत्कालीन समाज में व्याप्त धर्म के नाम पर अधर्म और अत्याचार के नाम पर बाह्याचार या मिथ्याचार का भी विरोध किया है। उन्होनें बाह्य वेषधारी साधु की साधुता में विश्वास नहीं बताया। गले में माला डालकर परमात्माके नाम पर गोरखधंधा करनेवालों के प्रति चेतावनी देते हुए बाह्याचार को मिथ्या बताया है। तीर्थ, जप, तप और शास्त्र सब कुछ पढ़ो परंतु हृदय में प्रकाश न हो, अंतर प्रेम न हो तो सबकुछ निरर्थक-सा है। स्वामी प्राणनाथजी ऐसे मिथ्याचार के लिए अपने विचार दर्शाते हुए कहते हैं कि.....

"धनी न जाए किनको धूत्यो, जो कीजे अनेक धूतारा तुम चैइन ऊपन के कै करो, पर छूटे न क्योए विकार।" सो माला गले में द्वादस करो दश बेर। जौलो प्रेम न उपजे पीड़ सो तोलो मन न छोड्ये केर। सीखो सबे संस्कृत और पढ्यो सो वेद पुरान। अर्थ करो द्वादस के, पर आय न होए पहचान । उत्तम वेष धरो वैश्नव के और वैश्नव आप कहालाओ । जो वैश्नव वस करै नव अंग सो वैष्णव क्यो न जगाओ ।

स्वामी प्राणनाथजीने ऐसी अर्चना का विरोध किया है जिससे विकार न छूटे। ऐसी माला के विरोधी है जिससे हृदय में प्रेम न उपजे । ऐसी विद्वता का खंडन है जो अपने आपकी पहचान न करा सके । ऐसी वेशभूषा निरर्थक है जिससे सच्चे संस्कार प्राप्त न हो ।



कबीरदास ईस बाह्याङ्गम्बरता के मूल में पतनकारी अज्ञान को मानते हैं । समग्र जीवनभर उन्होंने इस प्रवृत्ति का खुलकर विरोध और डटकर मुकाबला किया था । ऐसा माना जाता है कि कबीर की वाणी समाज को झूठे आङ्गुलीयों से बहार निकालने के लिए प्रकट हुई थी, इस कारण उन्होंने इस पर निर्मम प्रहार किया है, कबीरदासने अन्य धर्म एवं मतों को माननेवालों में बाह्याङ्गम्बरता का प्रभाव देखा था। मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव और सामाजिक विषमता के मूल में बाह्याङ्गम्बरता की प्रवृत्ति को देखते हैं । बाह्याङ्गम्बरता की अपेक्षा वे हृदय से सच्ची आराधना करने पर अधिक बल देते हैं। आत्मज्ञान के अभाव में कोई भी कृत्य बाह्याङ्गम्बरता का परिचायक मानते हैं। तिलक लगाना, माला फँसना आदि बाह्याङ्गम्बरता को प्रतिक मानकर उन्होंने मन की शुद्धि के अभाव में बाह्याङ्ग को धोना निरर्थक माना है।<sup>१०</sup> कबीरने बाह्याङ्गम्बरता से ग्रस्त व्यक्ति से दूर रहने की सलाह दी है।

हिन्दु-मुस्लिम दोनों धर्म जब धार्मिक अंधविश्वास के पतन की कगार पर खड़े थे तब कबीरदास का आविर्भाव हुआ। इस कारण उन्होंने अपना सारा जीवन ही अपने समय के अंधविश्वासों के विरोध में लगा दिया था। कबीरदास किसी भी सत्य को अपनी विवेक की कसौटी पर परखने के पक्ष में थे । धार्मिक अंधविश्वास से मुक्ति के लिए उन्होंने ज्ञान को आवश्यक माना है। कबीरदास के जितने भी धार्मिक विश्वास हैं, वे सत्य पर आधारित हैं। हिन्दु और इस्लाम दोनों धर्म की अंध परंपराओं की वे कुछ आलोचना करते हैं और कहते हैं कि ईश्वर की व्याप्ति केवल मंदिर, मस्जिद में नहीं सर्वत्र है।

कबीरदास ने तीर्थाटन की निरर्थकता को अपने पविचारों द्वारा जन-साधारणों के समक्ष उजागर कर यह स्पष्ट किया कि मनुष्य को अपने शरीर को ही तीर्थ स्थल मानना चाहिए। यदि भाव एवं आचार शुद्ध नहीं है तो केवल तीर्थों में स्थान करने से कुछ फायदा नहीं है। तीर्थाटन को कबीरदास बाह्यकर्म मात्र मानते हैं, जिसका न कोई मूल है और न कोई सार । उनके विचारों का मुख्य उद्देश्य ही तीर्थद्वारा को बाह्याचार के रूपमें चित्रित करना है। भक्ति के अभाव में कबीरदास तीर्थाटन को निरर्थक एवं व्यर्थ मानते हैं।

संक्षेप में स्वामी प्राणनाथ और कबीर आलोच्य दोनों सन्तोंने बाह्याचार, आंतरिक, परिवर्तन के बिना किए गये तीर्थाटन और बाहरी वेशभूषा और झूठा रीतिरिवाजों का खंडन किया है। ऐसे मिथ्याचारों से दूर रहना ही इन सन्तों का जीवन आदर्श था।

### लोकसेवा का आदर्श :

स्वामी प्राणनाथ के युग की माँग हिन्दुधर्म को सिर्फ सक्षम बनाना ही नहीं परंतु इस्लाम के चुस्त काजियों की कठोर नीति का मुकाबला करके हिन्दु धर्म की सुरक्षा करना भी था। इसलिए कबीरजी की वाणी में जो स्थान सद्वृत्तियों को, लोकसेवकों को मिला है वही स्थान प्राणनाथजी की वाणी में देश प्रेम की जागृति को मिला है। उन्होंने देश के प्रति अपनी निष्ठा को जागृत करके स्वदेश और स्वधर्म की सुरक्षा के लिए शस्त्र उठाने का आह्वान किया था।

कबीरदास के युग की माँग 'मानवता' है। इसमें संदेह नहीं कि वह लोकसेवा विचार दृष्टिकोण जिसका प्रचार कबीरदास समय-समय पर करते हैं, एक बड़े सारी कल्याणकारी वातावरण कुछ प्रचार में अत्याधिक सहायक हुआ है।

भारतीय धर्म, साहित्य एवं संस्कृति अत्याधिक संकटपूर्ण परिस्थितियों में सौँस ले रही थी, निराश का तिमिर जनता को विनाश की गर्त की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर कर रहा था, उस समय कबीरदासने अपनी लोकसेवा की विचारधारा का प्रचार एवं प्रसार करने का प्रयत्न किया था। इतना ही नहीं उन्होंने भारतीय विचारधारों में एक नवीन परिच्छेद प्रारंभ किया जिसके द्वारा समता की भावना को प्रचारित एवं प्रसारित किया गया।

डॉ. विमल महेता का मानना है कि, "कबीरदास ने युगकी परिस्थितियों को गहनता से एवं स्वतंत्रता से परखा तथा ऊँच-नीच की अवस्था को स्वीकार करनेवाली सभी परंपराओं का विरोध किया। इन परंपराओं में वेद, मन्दिर, कुरान, मस्जिद जो भी आया सभी के प्रति क्षोभ प्रकट किया। इस प्रकार उस उत्पीड़ित, शोषित, अधिकतर वंचित वातावरण में मानवमात्र के ऐक्य का उद्घोष किया।"

वस्तुतः कबीर न तो समाज सुधारक की भाँति किसी सामाजिक जीवनदर्शन का उपदेश देने आए थे और न किसी धर्म या जाति में एकता स्थापित करना उनका ध्येय था, किन्तु जब उन्होंने अपने धर्म के नाम पर मानव-मानव के बीच भेदों की साईं देखी, छल-कपट का व्यवहार देखा तो वह अपने सुख को छोड़ मानव की पीड़ा को दूर करने में मनोयोगपूर्वक जुट गए ।

संक्षेप में स्वामी प्राणनाथजी की वाणी में ऐसे पद नहीं मिल रहे, परंतु सर्वधर्म समन्वयकी क्रान्तिकारी वाणी के वे प्रणेता रहे हैं और कबीर के बारे में जितना भी वर्णन किया जाय वह कम है। क्योंकि वह तो अवर्णनीय है।

#### 4.2.2 आलोच्य संतो का युग-संदेश या उपदेश :

आर्यों की निवास-भूमि आर्यावर्त भरतवंशी की भूमि भारतवर्ष, महात्माओं और ऋषियों की जन्मभूमि, तप एवं त्याग की भूमि हमारा यह भारत देश उसके उत्तर में खड़ा उत्तुंग मौन हिमालय तो दक्षिण में पथरीला पथ्थर, कहीं राजस्थान का बियावान रेगिस्तान, कहीं बंगाल की श्यामल धरती तो कहीं झारखण्ड की हरी-भरी वादियाँ, यहाँ के वन, उपवन और झर-झर झरते हुए झरने पे सारे भारतवर्ष की तप एवं त्याग, दर्शन एवं चिन्तन की भूमि को अपनी बाँहो मे भरे हुए हैं यह भूमि ही महान तत्त्वचिंतकों की है । हमारे आलोच्य दोनों सन्त-भक्त इसी धरती की सन्तान है, तत्त्वचिंतक और साधक हैं । उनके विचार ही उनका धर्म है, उनका चिंतन ही दर्शन है और वाणी ही युग-संदेश है । ऐसी महान साधकों के सहज प्रवाहित वाणी में अपने युग की जनता के लिए, उनके उद्धार के लिए शाश्वत संदेश छुपा हुआ रहा है जो सिर्फ तत्पुगीन जनता के लिए ही पथ-दर्शन नहीं बल्कि आज भी हम इसी से गुमराह पथ का मार्गदर्शन पा सकते हैं।

आज, जब धर्म और सम्प्रदाय के नाम बाह्याचार, बाह्याडम्बर और धर्म-स्थान के नाम पर प्रजा के दो वर्ग परस्पर रक्त की नदियाँ बहाने के लिए उतारू हो जाते हैं, तब इन दोनों सन्त की वाणी के केन्द्रविचार हमें सोचने के लिए मजबूर कर देते हैं। कबीरवाणी में

परमात्मा का स्थान या परमात्मा के लिए किसीभी कर्मकाण्ड की अपेक्षा सद्विचार, सत्कार्य और मानवता श्रेष्ठ होने का संदेश, प्राप्त होता है और स्वामी प्राणनाथजी की वाणी से देश-प्रेम मानवतासभर धर्म-प्रेम और देश की एकसूत्र में बाँधे रखने की प्रेरणा मिलती है। इन महान संदेश को जन जन सामान्य तक पहुँचाने के लिए उन्होंने जो संदेश दिया, उसी में उपदेश के ताने-बाने भी मिले हुए हमें प्राप्त होते हैं ।

### स्वामी प्राणनाथ का युग-संदेश एवं उपदेश :

स्वामी प्राणनाथजी की वाणी में तत्पुगीन हिन्दुधर्म के पहरी की शक्ति हैं। उनकी वाणी में हिन्दुधर्म की सुरक्षा के लिए आहवान है। भारतवर्षकी शस्य श्यामल धरती की संतान के लिए एक चिन्तन करने की प्रेरणा देनेवाला स्वर है। इस्लाम धर्म के बढ़ते हुए अत्याचार के सामने लाल ध्वज है। और वो कहता है- रूक जाओ, हिन्दु जनता सोई हुई है, डरी हुई नहीं है । स्वामी प्राणनाथकी वाणी हिन्दु शासकों को जगाया, प्रेरणा दी और धर्म-सुरक्षा के लिए आशीर्वाद भी स्वामी प्राणनाथने हिन्दू-इस्लामी मुसलमान दोनों को परमात्माकी एकता समझकर दोनों धर्म में समन्वय करने का महान प्रयत्न किया था और जब इसमें असफल ही रहे, तब उन्होंने क्षात्रधर्म के नाते हिन्दु धर्म की रक्षा के लिए शस्त्र उठाने की प्रेरणा और आहवान दोनों दिये। आगे प्राणनाथ के इन प्रयास में छुपे हुए संदेश को प्रकाशित करूँगी ।

#### (1) मातृभूमि के प्रति अहोभाव एवं प्रेम:

स्वामी प्राणनाथजी सिर्फ आध्यात्मिक सन्त ही नहीं थे, वे तो एक क्रान्तिकारी विचारधारा के प्रणेता भी थे। मध्ययुग की चुस्त परिस्थितियों में एक राष्ट्र के रूप में हिन्दुस्तान की स्तुति करनेवाले वे एक ही सन्त, एक ही नेता प्राणनाथजी ही थे।<sup>९९</sup>

स्वामी प्राणनाथजी धुमकड़ स्वभाव के थे। अतः उन्होंने अपने युगमें हिन्दुस्तान के आस-पास के देशों का पर्यटन किया था। उन्होंने अरबस्तान और उसके निकट के प्रदेश को नज़दिक से देखा था। उन्होंने तत्कालीन आंतरराष्ट्रीय बन्दरगाहों का परिचय प्राप्त किया था।

इसके बाद उन्होंने भारतवर्ष भूमि को श्रेष्ठ बताया। भारत की भूमि सन्तों महात्माओं की भूमि है, तप, त्याग एवं संयम की भूमि है, वेद-ऋचाओं की भूमि है। भारत की इस धरती पर ब्रह्म का ज्ञान सुनानेवाले अनेक महान गुरु अवतरित हुए हैं। आलोच्य दोनों सन्त भी इस धरती के ही सपूत हैं।

स्वामी प्राणनाथने भारत भूमि की प्रशंसा करते हुए कहा है कि....

" भोम भली भरतखण्ड की, जहाँ आइ निध निहचल। और सारी, जिमी खारी, खारे जल मोहजल ।।"<sup>१००</sup>

उन्होंने अपने देश की धरती को गौरव प्रदान किया, इतना ही नहीं इस धरती के पवित्र हिन्दु धर्म के प्रति भी अपनी आस्था और विश्वास प्रकट किया। देखिए.....

"त्रैलोकी में हे उत्तम खण्ड भरत को तामे उत्तम हिन्दु धर्मताकी छत्रपतियों के सिर आये रही हत सरम।।"<sup>१०१</sup>

संक्षेप में प्राणनाथजीने भरतभूमि और इस भूमि के सर्वश्रेष्ठ धर्म हिन्दु धर्म को बहुत ही चाहा है फिर भी वे हिन्दु धर्म को संकीर्ण दीवारों में कैद करना नहीं चाहते इसलिए हिन्दु धर्म के सिद्धांतों से इस्लाम की तुलना कर उन्होंने धर्म समन्वय का नया पथ हमें ईंगित किया। अगर, इस समन्वयवादी नीति को हमने उस समय अपनाया होता, तो आज शायद धर्म के नाम पर रक्त नहीं बहता।

## (2) मानवतासभर धर्म-प्रेम :

स्वामी प्राणनाथ हिन्दु धर्म को चाहते थे परंतु उन्होंने दूसरे धर्मों की कभी अवगणना नहीं की। सारे धर्मों के बीच वे समन्वय करके एक ही धर्म और एक ही परमात्मा का संदेश देना चाहते थे। उन्होंने अपने इन विचारों को वाचा देते हुए अपनी समन्वयवादी विचारधारा को व्यक्त किया है।.....

"जात एक खसमकी और न कोई जात।

एक खसम एक दुनिया और उड़ गयी दूजी बात।"<sup>१०२</sup>

इस तरह एक परमात्मा और एक दुनिया के विचार को चरितार्थ करने के लिए सबको मिलकर प्रेम से रहने की सलाह देते हुए कहते हैं कि.....

"छोड़ गुमान सब मिलसी ए जो एकाल जहान ।

जाति पाँत न भाँत कोई बए खानपान एक गान ।" १०३

इस तरह आपस में यदि मिललकर जीवन व्यतीत किया जाय तो तीर्थ स्थानों में जाने की जरूरत ही नहीं । क्योंकि.....

" तीरथ ते जे एक चित कीजिए, करमजनवाँदिये कोई, अहेनिस प्रिते प्रेमसूं रमिये तीरथ एनी घेरे होय ।"

स्वामी प्राणनाथजी ने धर्म के माध्यम से परमात्मा को प्रेम किया और परमात्मा को अर्पण की हुई प्रेम-पूजा को ही सच्चा तीर्थ माना ।

### (3) भारत की एकता एवं अखंडता:

स्वामी प्राणनाथ छोटे-छोटे फिरकों में बँधी हुई मानव जाति को ईन्हीं धर्म के संकीर्ण विचारों से मुक्ति देना चाहते थे । इनके साथ-साथ छोटे-छोटे साम्राज्यों में बँटे हुए भारत को एकसूत्र में बाँधना भी चाहते थे । उन्होंने बहुत सारी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया था और बादमें विविध भाषा का उपयोग करके अनेक धर्म-विचार प्रवाहित किये जो बाद में देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध होकर ग्रन्थ का रूप पा गये । उन्हीं ने भाषा की विभिन्नता को अपनाय परंतु इसे लिपिबद्ध करने के लिए एकमात्र देवनागरी लिपि का उपयोग किया। आज की हिन्दी खड़ीबोली और प्राणनाथजी की भाषा में ज्यादा अन्तर महसूस नहीं होता। उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग करके सारे भारतवर्षकी वैचारिक एकता के लिए एक भाषा की जरूरत को प्राधान्य दिया। शायद इतने बड़े देश की जनता को एकता के सूत्र में पिरोये रखने के लिए एक भाषा की जरूरत महसूस करनेवाले ये प्रथम सन्त थे। उन्होंने अपने इस विचार को प्रकट करते हुए कहा है कि....

" बिना हिसाबे बोलिया मिने सकल जहान ।

सबको सुगम जानके कहुंगी हिन्दुस्तान ।।

बड़ी भाषा एही भली जो सबमें जोहर ।

करने पाक सबन को अन्तर माई बाहेर ।।<sup>१०५</sup>

इन पंक्तियों के द्वारा इस युगदृष्टा स्वामी प्राणनाथने हमें राष्ट्रभाषा की समस्या का सरल उपाय भी बता दिया है। आज से कई वर्ष पूर्व हमने इस महानुभाव की वाणी को समझ लिया होता तो आज शायद राष्ट्रभाषा की कोई समस्या ही न होती । उन्होंने सारे देशकी जनता को वैचारिक एकसूत्रता में बाँधने के लिए भाषा को ही अधिक महत्त्व प्रदान किया है।

स्वामी प्राणनाथजीने अपने इन उद्देश्यों को परिपूर्ण करने के लिए अपने युग की जनता को जो उपदेश दिया इसका सार या केन्द्रविचार इस प्रकार है।

### **स्वामी प्राणनाथ का उपदेश:**

संसार सागर मोहजाल के समान है । उसमें मत्स्यगलागल न्याय प्रवर्तमान है। संसार के जीव कार्य के बँधनों में बँधते रहते हैं। जो त्रिगुणी माया का स्वीकार कर जीवन-चायन करत है वे तो इस संसार में भटकते ही रहेंगे । इसलिए जो मायावी जीव नहीं है उसे तारतम ज्ञान के प्रकाश में संसार के बंधन तोड़ देने चाहिए ।

संसार के सागर को पार करने के लिए अहम् का त्याग करना चाहिए और अपने आपकी पहचान कर लेनी चाहिए । जो अपने आपको संपूर्णतः नहीं जानते वे परमात्मा की पहचान कैसे करेंगे ? आत्मा की पहचान से ही परमात्मा की पहचान होती है ।

परमात्मा की पहचान सत्गुरु की प्राप्ति के बाद होती हैख । धर्म के नाम पर बाह्याचार में विश्वास रखनेवाले सत्गुरु नहीं हो सकते । भगवान या परमात्मा का नाम लेकर बन बैठनेवाले साधु के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति तो नहीं होती परंतु परमात्मा के नाम पर रोटी कमानेवाले सारे मानवी सीधे ही यमद्वार जाते हैं। जिसका दिल निर्मल नहीं है वे चाहे कुछ भी करे परंतु परमात्मा के दर्शन उन्हें नहीं होते ।

सत्गुरु की पहचान कर लेने में यदि हम नाकाम होंगे और बाह्याचारी और आड़म्बरी किसी साधु को यदि गुरु के रूप में मान लिया गया तो संसार का सागर तैर नहीं पायेंगा। 'नीम हकीम खतराये जान' वाली कहावत के अनुसार नीम मुल्ला खतराये इमान जैसी बात होगी, अतः गुरु की सच्ची पहचान करनी चाहिए।

आत्मा की पहचान के बिना परमात्मा की पहचान नहीं हो पायेगी। परमात्मा दीन, दुःखी एवं दलितों के आँसुओं में हर एक व्यक्ति की आत्मा में रहा हुआ है। उसकी पहचान के लिए जीव की जागृति जरूरी बन जाती है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, लालच, अहंकार, रंगराग इत्यादि मानवी के दुर्गुण हैं जो उसे इस संसार की माया में जकड़कर रखते हैं। स्वामी प्राणनाथ कहते हैं, कि इन त्याग्य कहनेवाले दुर्गुणों का प्रयोग भी यदि परमात्मा की राह पर किया जाय तो अच्छा ही है। क्योंकि लालच दुन्यवी वस्तुओं के लिए योग्य नहीं परंतु परमात्मा दर्शन की लालच शुभ है। परमात्मा की प्रार्थना का मोह-लोभ श्रेयस्कर है।

सुख और दुःख दोनों परमात्मा की प्रदत्त देन हैं। इन दोनों का स्वीकार करना हमारा फर्ज है। दुःख से विरह उपजता है। विरह के कारण प्रेम जन्म लेता है। प्रेम की तीव्रता से 'इश्क' या परमात्मा का प्राकट्य होता है। अतः दुःख को परमात्मा को आशीर्वाद मानकर इसको स्वीकार करना चाहिए।

परमात्मा की प्राप्ति प्रेमपरक भक्ति से ही होती है। प्रेमसभर भक्ति के सामने स्वयं परमात्मा भी झुक जाते हैं। परमात्मा स्वयं भक्त के आंगन में जाते हैं। जैसे राम शबरी की झोंपड़ी में गये थे। प्रेम नित्य और अखंड है। प्रेम परमात्मा को पहचान लेनेवाली शक्ति है। वही आत्मा परम सुख की प्राप्ति कर सकता है जो प्रेम की सत्यता का अनुभव कर लेता है। मोमिन का आचरण परमात्मा परस्त होता है, इसलिए मृत्यु के समय वे दिव्य आनंद की अनुपूर्ति करते हैं।



संक्षेप में स्वामी प्राणनाथने इस नाशवंत संसार के मानवीयों को उपर्युक्त उपदेश द्वारा उनके ज्ञान की जागृति करवा के परमात्मा तक पहुँच पाने की राह खोज दी । उन्होंने जाने-अनजाने प्रेम भक्ति, सत्कर्म और दुर्गुणों के नाश पर बल दिया है।

### **कबीर का युग-संदेश एवं उपदेश:**

मध्यकाल में संतो का यह क्रांतिकारी कार्य माना जाता है कि उन्होंने सामान्य जनता को सिद्धों एवं नाथों की कठिन साधना-पद्धतियों बचाया उसमें कबीरदास की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने ने प्रेमभक्ति के आधार पर मनुष्य मात्र की एकताकी घोषणा की और सामान्य से सामान्य मनुष्य में आत्मगौरव के भाव जगाए मानव के आध्यात्मिक और लौकिक जीवन को सुखी बनाने हेतु कबीरदास ने बार-बार सन्मार्ग और कल्याणकारी पक्ष की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया । उन्होंने परमार्थिक सत्ता की एकता निरूपित करके यह प्रतिपादित किया कि मानव मानव में भेद नहीं है। मानवतावाद से प्रेरित होकर वे संसार को भाँति-भाँति के कल्याणकारी मार्ग प्रदर्शित करने का संदेश देते रहे।

### **उपदेश:**

"कबीरदासने मानवता विषयक अपने विचारों को प्रतिपादित करने के लिए सप्त महावृत्तो का उपदेश दिया । वे सप्त महाव्रत ।

(१) सत्य                      (२) अहिंसा                      (३) ब्रह्मचर्य                      (४) अस्वाद

(५) अस्तय                      (६) अपरिग्रह और (७) अभय आदि।"<sup>१०६</sup>

### **सत्य :**

मानता के सुख का लक्ष्य या उद्देश्य शारीरिक सुख या भौतिक सुख संपत्ति को प्राप्ति ही नहीं होता वरन् इसके अतिरिक्त कुछ और भी है, जो मानव को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता रखता है और वह है 'सत्य' और उनकी प्राप्ति। भौतिक सुख या संपत्ति के आनंद से मानव का चित कभी न कभी उचट जाता है, परंतु सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के सानिध्य में और नैकट्य में रहकर मानव का मन कभी विकृत नहीं होता। मनुष्य के आत्मा की उन्नति

तभी हो सकरती है, जब समस्त जीवों पर स्नेह है, और जब सांसारिक वस्तुओं में आसक्ति न हो। इसी कारण भारतीय दार्शनिकों ने बार-बार 'आत्मवत् सर्वभुतेषुयः पश्यतिसः पंडितः' का उपदेश दिया है। मानों कि आत्मा से भिन्न कुछ नहीं है और आत्मा की उन्नति तभी संभव है जब सांसारिक जीवों में किसी भी प्रकार की आसक्ति न रहे। जो सभी प्रकार की आसक्तियों से पर होकर जीता है उसी की आत्मा की उन्नति संभव है।

भारतीय धर्म एवं संस्कृति में पहले से यह उपदेश दिया गया है कि दूसरों को आत्मवत् समजना चाहिए। आत्मा ही ज्ञान की ओर ले जाता है और ज्ञान ही सत्य है। कबीर ने कहा है कि वास्तविक सत्य ही ज्ञान है, सत्य ही ब्रह्म है और संस्कार की वास्तविक गति भी सत्य है। कबीरदासने इस सत्य के प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट की है। सत्य व्यवहार, सत्य कर्म, सत्य वचन, सत्य अनुभूति जीवन को उदात्त बनाने में सहायक सिद्ध होती है। इसी से मानव सुखी और संपन्न बनता है। इसीलिए कबीरदासने कहा है कि सत्य की बराबरी न तप कर सकता है, जिसके हृदय में इसका निरंतर निवास रहता है उसी के पास भगवान राम रहते हैं। इसकी तुलना किसी के भी साथ नहीं की जा सकती है....

"साँच बराबर तप नहीं, झुठ बराबर पाप। जाके हिरदें साँच है, ताकें हिरदे आप।"<sup>१०७</sup>

विभन्नत्व में अभिन्नत्व को प्रतिपादन करते हुए कबीर कहते हैं कि...."हमारे लिए राम-रहीम, केशव-करीम, राम और अल्लाह एक ही सत्य है। बिस्मिल्ला को मिटाकर विश्वंभर कहना एक ही बात है।"<sup>१०८</sup>

### अहिंसा:

दूसरा महाव्रत है अहिंसा जो मानवतावाद की प्राणशक्ति है। जब तक हम हिंसा में लगे रहेंगे तब तक एक-दूसरे के प्रति ममता की भावना की स्थापना नहीं कर सकते। कबीरदासने भय की भावना को उत्पन्न ना करके अहिंसा व्रत का पालन करनेका उपदेश दिया है। मुसलमान मौला को समझाते हुए वे कहते हैं कि.....

"बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल ।

नर बकरी खात है, तिनकै कौन हवाल।। १०९

और एक साखी में मुसलमानों को समजाते हुए वे कहते हैं कि.....

"दिनभर रोजा रइत है, रात को हलतकर गाय।

यह खून वह बन्दगी कैसे खुशी खुदाय ।। ११०

मुसलमानों पर व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैं, "बलपूर्वक जीव का प्राण ले लेते हैं और उसे बड़े गौरव के साथ हलाल करते हैं, किन्तु जब ईश्वर इनके कर्मों का हिसाब देखकर कुकर्मों को दण्ड देगा तब इनको पता चलेगा।"

- कबीरदासने सत्य और अहिंसा की तरह ब्रह्मचर्य को धारण करना भी जीवन के लिए आवश्यक माना है क्योंकि मनुष्य इन्द्रियों का चेला होता है। वह सदैव इन्द्र की प्रचंड ज्वाला में जलता है। जिस प्रकार दीपक की लौ पर पतंगा नष्ट होता है, उसी प्रकार इन्द्रियों की प्रचंड ज्वाला में मनुष्य नष्ट होता है। इस कारण कबीरदासने स्थान-स्थान पर मन, वचन, कर्म से ब्रह्मचर्य का पालन करने का उपदेश दिया है।
- इसके अतिरिक्त आस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह और अभय को कबीरदासने इसलिए महत्त्वपूर्ण माना है कि ये गुण व्रत-सौंदर्य, विनयशीलता और व्यापक भावनाओं का सर्जन करते हैं। इनके द्वारा मनुष्य एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न करता है और व्यापक भावनाओं को धारण करता है।

कबीरदास के उपदेश का आधारभूत या मूल सिद्धांत समस्त प्राणियों को आत्मा से भिन्न समझना समस्त जीवों में दयाभाव को समानरूप से प्रसार करना था। इस कारण वे मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव करना वास्तविकता को पूरे जोर के साथ छिपाना मानते हैं। वेद और कुरान, धर्म और संसार, पुरुष और नारी के आधार पर कल्पित भेद सर्वथा व्यर्थ मानते हैं। सब में एक ही शुक्र, एक ही मल-मूत्र, एक ही कर्म और एक ही मांस मानते हैं। सब एक ज्योति से उत्पन्न हुए हैं । इस कारण ब्राह्मण और शूद्र ऐसा भेद करना सर्वथा गलत है।" १११

कबीरदासने अपनी मानवतावादी विचारधाराओं के आधार पर ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जिस पर उनके बाद उत्पन्न अनेक संतो ने आरूढ़ होकर समता का उपदेश दिया। इनकी प्रेरणा ज्ञानाश्रयी भक्त कवियों की एक शाखा चल पड़ी। जिसमें सभी जातियों के संत सम्मिलित थे। इनकी मूल भावना थी.....

"जाति-पाँति पूछै नहिं कोई,  
हरि को भजे सो हरि का होई।" ११२

मानवता के इतिहास में कितनेभी हिमायती उत्पन्न हुए उनमें कबीर का स्थान बड़ा उच्च और स्पृहनीय है। इसका कारण यह माना जाता है कि कबीर ने जिन अनुभवों को हृदयंगम किया वे सब यथार्थ और वास्तविक हैं। इसलिए कबीर ने दया, विश्वबंधुत्व और प्रेम की भावना पर विशेष बल दिया है। कबीरने मानवतावादी भावना से अनुप्राणित होकर कहा है....

"दया दिल में रखिये तो कया निरदयी होये ।  
साई के सब जीव है। कीड़ी कुंजर सांप ।" ११३

जाति-पाँति के भेदभाव से कबीरदास को मोह नहीं था। उन्होंने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में ललकार कर कहा है " सभी एक ही ब्रह्म की कृतिर्या है। सभी एक ही कुम्हार की रचना है। फिर ब्राह्मण और शूद्र इस प्रकार का भेद-भाव मन का मैल है।" वस्तुतः कबीरदास अपने ईश्वर परमात्मा को तीनों लोक आकाश, पृथ्वी, पाताल में समान मानते हैं। कबीर की यह धारणा है कि " उनका स्वामी तीनों लोकों का स्वामी है, जो सबकी आवश्यकताओं को पूरा करता है सबका पेट भरता है। अतः किसी को चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं। "मैंने तो परमात्मा को केवल एक के रूप में जाना है। जो परमात्मा के बारे में भेदभाव रखते हैं। उन्होंने परमात्मा के रूप को नहीं जाना है। पवन, पानी, प्रकाश आदि रूपों में वस्तुतः एक उसी की सत्ता है। जिस प्रकार बढ़ई तरह-तरफ की वस्तुएँ बनाने के लिए लकड़ी को काटता है परंतु उसमें व्याप्त अग्नि को वह नहीं काट पाता है। अग्नि लकड़ी के प्रत्येक टुकड़े में अक्षुण्ण बनी रहती है, उसी प्रकार परब्रह्म प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त हैं।

कबीरदास अपने राम की महिमा प्रतिपादित करते हुए कहते हैं, "भगवान रामने ऊँच-नीच सबको समान रूपसे व्यवस्थित किया है अथवा भगवान रामने ऐसी व्यवस्था की है ऊँच-नीच सबको अपने उद्धार का समान अवसर प्रदान किया जाय । यही कारण है कि नीच कुल में उत्पन्न होने पर भी कबीर का उद्धार हो गया है।" कबीरदास को विश्वास था कि सबका रचयिता एक ही है। एक ही अंश के सत्य अंशी है। फिर मानव-मानव के बीच यह विरोध कैसा ? वस्तुतः न कोई बड़ा है, न कोई छोटा, न कोई ऊँच है और न कोई नीचा एक ही ईश्वर ने सबको जन्म दिया है अतः सब समान है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि कबीरदास का लक्ष्य बड़ा व्यापक था । समस्त जीवों के विस्तार के लिए उन्होंने उच्चादर्शका उपदेश दिया। मनुष्य को मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए प्रोत्साहित करना उनका प्रमुख ध्येय था। उनके हृदय में व्यथित के करुणा और सहानुभूति की भावना थी वे संसार को सुखी और संपन्न देखना चाहते थे। इस कारण उन्होंने मानव की आर्थिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक सभीदशाओं को सुधारने की चेष्टा की । मनुष्य को वे सदैव ही श्रृंखलाओं से मुक्त देखना चाहते थे और भविष्य में एक स्वस्थ, आशापूर्ण दृष्टिकोण के आकांक्षी थे । यह मानवतावादी दृष्टिकोण कबीर काव्य में सर्वत्र ओत-प्रोत है।

**निष्कर्षत :** कहा जाता है कि संतोष और दीनता कबीरदास मानवतावाद के अभिन्न अंग है। इन उपदेशों ने युग-युग से पीड़ित एवं निराश जनता के हृदय में आशा का संचार किया था। उनके द्वारा दिए गए उपदेश के सहारे अनेक पथ-भ्रष्ट लोगों को मार्ग दिखाई पड़ा था। अनेक लोग उनके उपदेश को सुनने के पश्चात बाह्याङ्गम्वर से मुक्त होकर दूसरों के दुःखो और कष्ट की ओर ध्यान देने लगे थे। धीरे-धीरे जनता में सत्य, अहिंसा, प्रेम, त्याग, शांति, क्षमा, दया, सहनशीलता आदि मानवतावादी गुण विकसित हो रहे थे। वहीं कबीर के मानवतावादी चिन्तन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है ।

### 5.2.3 आलोच्य संतो के जीवनादर्श या युगसंदेश का तुलनात्मक अध्ययन:

स्वामी प्राणनाथ और कबीर, आलोच्य दोनों सन्त भारत की इस पुण्यशाली धरती के महान पुत्र थे जिन्होंने अपने युग की परिस्थिति को पहचानकर, सामान्य मानवी के जीवन से वैराग्य की भावना को दूर करके एक सुनहरी आशा की किरण प्रकाशित की थी। उन्होंने अपने युग की जनता को जो संदेश दिया उन्होंने युगीन परिस्थितियों का प्रभाव जरूर लक्षित हुआ है। फिर भी उनके महान विचारों की झलक भी हमें दृष्टिगत होती है।

स्वामी प्राणनाथ का युग इस्लामी अत्याचारों का युग था। इस्लाम के बढ़ते हुए प्रभाव को जानकर हिन्दु जनता में शक्ति और सामर्थ्य का संचार करना। उनमें हिम्मत एवं आत्मविश्वास जागृत करना तत्पुगीन समय की माँग थी। अतः प्राणनाथजी की वाणी में परमात्मा के लिए परमात्मा प्राप्ति के लिए जो संदेश मिलता है इनमें भी देश-प्रेमकी झलक मिलती है। स्वामी प्राणनाथ क्षत्रिय थे, इसलिए उनकी वाणी में जोश, उत्साह और आह्वान की सुलगती हुई ज्वाला भी दृष्टिगत होती है। उन्होंने हिन्दु एवं इस्लाम धर्म में स्थित एकता या एकरूपता बतलाते हुए सिद्ध कर दिखाया कि दोनों धर्मों का उद्देश्य परमात्मा प्राप्ति है और दोनों धर्म परमात्मा तक जाने की राह मात्र है, अतः दोनों धर्मावलम्बियों में विसंवादिता का होना निरर्थक है परंतु उनकी ऐसी समन्यवाही विचारधाराभी इस्लामी चुस्त शासकों ने अनसुनी कर दी तब वे चुप नहीं रहे। परमात्मा की भक्ति में लीन रहनेवाले सन्त ने जरूरत पड़ने पर हाथमें तलवार भी ली और हिन्दु शासकों को तलवार उठाने का आह्वान भी किया। इसलिए स्वामी प्राणनाथजी की वाणी में सुलगती हुई आग है। उसके युग संदेश में देशप्रेम, देश को एकता के सूत्र में पिरोनेवाली भाषा के प्रति आदर और धर्म के प्रति श्रद्धा और विश्वास छलकते हैं।

कबीर के युग में इस्लामी शासकों का अत्याचार बढ़ गया था। फिर उन्होंने इस इस्लामी शासकों द्वारा प्रचारित धर्म के सामने हिन्दु धर्म को सुरक्षित रखने के लिए हिन्दु धर्म की निर्बलता को दूर करते हुए उनको सक्षम बनाने का प्रयत्न किया था। हिन्दु धर्म में स्थित बाह्याचारों से दूर एक अनुशासनबद्ध जीवन प्राणाली को प्रस्तुत किया। इस जीवन प्रणाली के

स्तंभ पे भक्ति, सत्य, संतोष, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आस्वाद, आस्तेय, अपरिग्रह, अभय और ज्ञान। कबीर स्पष्ट वक्ता थे अतः उन्होंने अपनी पदयात्राओं के दरम्यान अपने इस संदेश को चरितार्थ करने के लिए जातिभेद का विरोध ऊँच-निच के विचारों का विरोध, प्रदर्शित करके परिश्रमी जीवन को सात्त्विक बनाया। उन्होंने समाज को सक्षम बनाना चाहा था, इसलिए उनकी विचारधारा में सामाजिक परिवर्तन का स्वर मिलता है। मानव जीवन को उन्नत बनाने के लिए उच्च आध्यात्मिक विचार उनकी वाणी में व्यक्त हुए हैं। कबीरने हिन्दु-मुसलमान दोनों में भातृभाव की भावना जागृत करने का प्रयास किया था। उनके शिष्य हिन्दु और मुसलमान दोनों थे।

स्वामी प्राणनाथ और कबीर के उपदेशों में कई विचारों में साम्यता दृष्टिगत होती है। इन दोनों सन्तों ने परमात्मा की भक्ति को महत्त्व दिया। अहम् को त्यागकर परमात्मा की शरणागति प्राप्त करने से परम आनंद की अनुभूति होने की बात दोनों ने दोहराई थी। सिर्फ दोनों के भक्ति मार्ग में थोड़ा-सा अंतर है बाकी दोनों का लक्ष्य एक है।

आलोच्य दोनों सन्त ने गृहस्थ धर्मका स्वीकार करने की सलाह दी है। गृह त्यागकर समाज से दूर जाकर कोई समाज का उद्धार नहीं कर सकता। अतः गृहस्थ जीवन अपनाकर सहज, भक्तिमार्ग का सरल मार्ग उन्होंने स्वीकारा है। दोनों सन्तों ने अहम् को भक्ति का अवरोध बताया है। अहम् को त्याग करने की सलाह दोनों ने दी है। भारत के मध्ययुगीन ज्यादातर संतो की वाणी में अहम् त्याग की बात दोहराई गयी है।

आलोच्य दोनों सन्तों ने गुरु की महत्ता को स्वीकारा है। गुरु की कृपा के बिना परमात्मा के दर्शन नहीं होते। कबीर ने इस विश्वास को दोहराते हुए कहा है कि.....

"गुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।

लोचन अनंत दिखाड़या, अनंत दिखावणहार ।।"<sup>११३</sup>

स्वामी प्राणनाथजीने लिखा है कि.....

"गुरुप्रसाद अन्तर पेखयां

ओ शोभा बरनी न जाई।"

आलोच्य दोनों सन्तोंने सत्गुरु को पहचान लेने की बात करते हुए आड़म्बरी कच्चे गुरु से दूर रहने की बात बतायी है। वे सारे आड़म्बर कर सकते हैं परंतु परमात्मा की प्राप्ति की राह के दर्शन नहीं करवा सकते ।

स्वामी प्राणनाथ ने इसके अलावा मानवीय दुर्गुणों से बचने का विधान किया है और कबीर ने धर्म स्थित आड़म्बरों से बचकर रहने की सलाह दी है। फिर भी प्राणनाथ की वाणी में प्रेम लक्षणा भक्ति का सूर है और कबीर की वाणी में समाज सुधार का और निराकार भक्ति का स्वर है ।



## संदर्भ संकेत

[illegible]



|    |  |   |               |      |
|----|--|---|---------------|------|
| २४ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २४२  |
| २५ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २४२  |
| २६ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २४२  |
| २७ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २४२  |
| २८ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २४२  |
| २९ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २४३  |
| ३० | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २४३  |
| ३१ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २४३  |
| ३२ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | व्याख्याकार<br>अभिलाषदास                  | ईलाहाबाद-१९९० | १४९५ |
| ३३ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | व्याख्याकार<br>अभिलाषदास                  | ईलाहाबाद-१९९० | १४९५ |
| ३४ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | व्याख्याकार<br>अभिलाषदास                  | ईलाहाबाद-१९९० | १६४८ |
| ३५ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | व्याख्याकार<br>अभिलाषदास                  | ईलाहाबाद-१९९० | १६४९ |
| ३५ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | व्याख्याकार<br>अभिलाषदास                  | ईलाहाबाद-१९९० | १४५९ |

|    |  |   |               |      |
|----|--|---|---------------|------|
| ३६ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५१  |
| ३७ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५१  |
| ३८ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५२  |
| ३९ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५२  |
| ४० | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५३  |
| ४१ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५३  |
| ४२ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | सद्गुरू कबीर<br>विरचित बीजक               | ईलाहाबाद-१९९० | ११४९ |
| ४३ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | सद्गुरू कबीर<br>विरचित बीजक               | ईलाहाबाद-१९९० | ११५८ |
| ४४ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५५  |
| ४५ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५५  |
| ४६ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५५  |

|    |  |   |               |      |
|----|--|---|---------------|------|
| ४७ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५५  |
| ४८ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५५  |
| ४९ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | सद्गुरू कबीर<br>विरचित बीजक               | ईलाहाबाद-१९९० | १३११ |
| ५० | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५९  |
| ५२ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २५९  |
| ५३ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २६०  |
| ५४ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २६०  |
| ५५ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | सद्गुरू कबीर<br>विरचित बीजक               | ईलाहाबाद-१९९० | १३४५ |
| ५६ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | सद्गुरू कबीर<br>विरचित बीजक               | ईलाहाबाद-१९९० | १३४६ |
| ५७ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | सद्गुरू कबीर<br>विरचित बीजक               | ईलाहाबाद-१९९० | १३४६ |
| ५८ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २६४  |
| ५९ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २६४  |
| ६० | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २६५  |





|    |  |  |               |      |
|----|--|--|---------------|------|
| ८५ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २७६  |
| ८६ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २७६  |
| ८७ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २७९  |
| ८८ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २७९  |
| ८९ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २८०  |
| ९० | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २८०  |
| ९१ | कबीर पदावली एक<br>अध्ययन                                 | वी. आर.वाला<br>सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय  | ईलाहाबाद-१८९० | ०८   |
| ९२ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | सद्गुरू कबीर<br>विरचित बीजक                | ईलाहाबाद-१८९० | ९१४  |
| ९३ | स्वामी प्राणनाथ एवं<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट | ईलाहाबाद-२००८ | २८२  |
| ९४ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | सद्गुरू कबीर<br>विरचित बीजक                | ईलाहाबाद-१९९० | १३६२ |
| ९५ | सद्गुरू कबीर विरचित<br>बीजक                              | सद्गुरू कबीर<br>विरचित बीजक                | ईलाहाबाद-१९९० | १३६३ |
| ९६ | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन  | डॉ. सुधा सी.<br>पौराणा                     | ईलाहाबाद-२००८ | २८४  |
| ९७ | कबीर और तुकाराम के<br>काव्यक में प्रगतिशील<br>चेतना      | डॉ. सुनील<br>कुलकर्णी                      | कानपुर-२००७   | २६४  |



|     |   |                     |               |     |
|-----|---|---------------------|---------------|-----|
| ९८  | कबीर और तुकाराम के काव्यक में प्रगतिशील चेतना     | डॉ. सुनील कुलकर्णी  | कानपुर-२००७   | १०७ |
| ९९  | स्वामी प्राणनाथ और गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा सी. पौराणा | ईलाहाबाद-२००८ | २८९ |
| १०० | स्वामी प्राणनाथ और गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा सी. पौराणा | ईलाहाबाद-२००८ | २८९ |
| १०१ | स्वामी प्राणनाथ और गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा सी. पौराणा | ईलाहाबाद-२००८ | २८९ |
| १०२ | स्वामी प्राणनाथ और गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा सी. पौराणा | ईलाहाबाद-२००८ | २९० |
| १०३ | स्वामी प्राणनाथ और गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा सी. पौराणा | ईलाहाबाद-२००८ | २९० |
| १०४ | स्वामी प्राणनाथ और गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा सी. पौराणा | ईलाहाबाद-२००८ | २९० |
| १०५ | स्वामी प्राणनाथ और गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधा सी. पौराणा | ईलाहाबाद-२००८ | २९१ |
| १०६ | कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना      | डॉ. सुनील कुलकर्णी  | कानपुर-२००७   | १०९ |
| १०७ | कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना      | डॉ. सुनील कुलकर्णी  | कानपुर-२००७   | ११० |
| १०८ | कबीर और तुकाराम के काव्यक में प्रगतिशील चेतना     | डॉ. सुनील कुलकर्णी  | कानपुर-२००७   | ११० |
| १०९ | कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना      | डॉ. सुनील कुलकर्णी  | कानपुर-२००७   | ११० |
| ११० | कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना      | डॉ. सुनील कुलकर्णी  | कानपुर-२००७   | ११० |
| १११ | कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना      | डॉ. सुनील कुलकर्णी  | कानपुर-२००७   | १११ |

|     |   |                       |               |     |
|-----|---|-----------------------|---------------|-----|
| ११२ | कबीर और तुकाराम के<br>काव्य में प्रगतिशील चेतना         | डॉ.सुनील<br>कुलकर्णी  | कानपुर-२००७   | १११ |
| ११३ | कबीर और तुकाराम के<br>काव्य में प्रगतिशील चेतना         | डॉ.सुनील<br>कुलकर्णी  | कानपुर-२००७   | १११ |
| ११४ | स्वामी प्राणनाथ और<br>गुरूनानक : एक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा सी.<br>पौराणा | ईलाहाबाद-२००८ | २९८ |

## प्रकरण-६

### ६.१ आलोच्य संतो कवियों को जीवन की उपलब्धियाँ और सीमाएँ :

महापुरुषों के प्रादुर्भाव के समय सभी अनुकूल और उत्तम संयोग अपने आप स्वतः उपस्थित हो जाते हैं। प्रकृति सहचरी तो ऐसे समयकी प्रतीक्षा में ही तत्पर रहती है। महापुरुषों की कठिनाईयों के दूर करना उनके आदर्श विचारों के विकास के लिए अनुकूल क्षेत्र प्रदान करना और स्वयं भी उनकी आज्ञा के लिए प्रतीक्षा करते रहना, यह तो प्रकृति का नियम ठहरा। उत्तम वस्तु के लिए, विकास के लिए जितनी आवश्यकता उत्तम पात्र की है, उससे कहीं अधिक उत्तम क्षेत्र और पवित्र देशकाल का होना भी अनिवार्य है। पद्धति परमात्मा की आन्तरिक प्रेरणा से श्यामाजीने धाम दिल में इस श्री ५-नवतनपूरीधाम की भूमिका को पूरा काल से ही ले रखा था। परंतु उसे प्रत्यक्ष रूपसे भी पावन करना आवश्यक था। अतः निजानन्द स्वरूप श्री देनचन्द्रजीने इसको अपने सर्ववन्द्य चरणकलों से परम पावन किया और अपने अखंड तपोबल से इनके भौतिक विकारों को नष्टकर इसे और निर्मल बना दिया।" जिस श्री पू नवतनपूरी धामकी भूमिका को सदा नर भूमि , सुर और नादर, शारद, बन्दन करते हैं, जहाँ कि रजके लिए ब्रह्मा, विष्णु महेश, शेष, भगवान आदि बड़े बड़े देव वाञ्छा किया करते हैं, उसे परम पावन श्री पू. नवतनपुरी की भूमिका मे सं.१६७५ के आश्विन मासकी कृष्ण चतुर्दशी को रविवार के दिन एक यहन दिन चढ़ते श्री इन्द्रावतीजी की वासना साक्षात् तारतमस्वरूप श्रीप्राणनाथ प्रभुजी का प्रादुर्भाव हुआ।"<sup>१</sup>

महामति प्राणनाथ का युग राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विघटन का काल था। सत्रहवीं शताब्दी की धर्मपरायणता धर्माधता में परिणत हो गई थी। धर्म में बढ़ता हुआ। बाह्याचार पाखंड का रूप लेता जा रहा था। ऊँच-नीच तथा अशुश्रूयता की भावना जोरों पर थी। लोग स्वार्थी और इन्द्रिय-लोलुप हो गए थे। समाज नैतिक पतन की ओर जा रहा था। ऐसे समय में महामति ने अध्यात्म की गहराई में उत्तरकर उसे मानव सुलभ

बनाने की चेष्टा की। उन्होंने अपने व्यवहार और वाणी द्वारा धार्मिक वैमनस्य, अलगाववादी विचारधारा तथा सांप्रदायिक धर्मांधता का सकारात्मक विरोध किया।

महामति प्राणनाथ का जन्म गुजरात में सन् १६१८ में हुआ था। उन्होंने जामनगर जैसी समृद्ध रियासत का दीवान पर त्यागकर लोगों के सामने त्याग का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने अरब देशों की यात्रा की और वहाँ ईस्लाम धर्म और संस्कृति को नज़दीक से समझा। उसके अलावा उन्होंने बाइबिल, जबूर और तौरत का गहरा अध्ययन किया। वे इस्लाम के एकेश्वरवाद तथा ईसाई धर्म के मानव-सेवा की भावना बहुत प्रभावित हुए जैन धर्म के एकांतवाद और स्पादवाद भी उनके चिंतन के आधार बने। सभी धर्मों के अध्ययन पश्चात् उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि वस्तुतः सभी धर्मों की मूल भावना एक ही है। केवल भाषा तथा वातावरण की भिन्नता के कारण ईश्वर के वर्णन में भिन्नता आ गई है। अपनी बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने सभी प्रमुख धर्मों के मिथकों की व्याख्याएँ की और स्पष्ट किया कि इन अलग-अलग आख्यानो की मूल बात एक ही है। इस प्रकार उन्होंने दो महान् परंपराओं समेटिक और ईमेटिक को मिलाने का अभूतपूर्व कार्य किया। सन् १६७८में उन्होंने हरिद्वार में आयोजित शास्त्रार्थ में एक सनातन धर्म, ' एक विश्व धर्म' तथा एक ईश्वर की बात प्रतियादित की। इसके लिए उन्हें विजयाभिनंद निष्कलंक अवतार' से अभिषिक्त किया गया। मेरी समझ से विश्व के महान धर्मों का इस प्रकार विनियोग करना महामति प्राणनाथग की बहुत बड़ी देन है।

महामति प्राणनाथ संकीर्ण सीमाओं से परे थे। वे जाती-पाँति और अशृष्टता की अमानवीय प्रथा को मिटाना चाहते थे। उन्होंने वेदों की एकैव मानुषि ज्ञाति' को अपने ढंग से प्रस्तुत किया। महामति से कुछ समय पहल के संत-नामदेव तुकाराम, रमदास, रविदास, कबीर, गुरुनानक आदि ने भी संपूर्ण मानवजाति को एक ही कहा था। गुरुनानक ने इसे एक ही एक नूर ते सब जग उपज्या' कहा। संत रविदासने भी ब्रह्म को एक माना है। एकही ब्रह्म सबके अंदर व्याप्त है और सभी एकही ब्रह्म के अंदर समाहित है। उन्होंने कहा है.....

" एक" ब्रह्म ईह समलमाँहि। अरू अकल ब्रह्म माँहि।

रविदास ब्रह्म सम भेषमाँहि। ब्रह्म बिना कुछ नाँहि।।”<sup>२</sup>

महामति प्राणनाथ के समय में भी लोगों के बीच अपने अपने धर्म और जाति के श्रेष्ठ बताने की होड़ थी उससे धर्मांधता बढ़ रही थी तथा सांप्रदायिक तनावको बल मिल रहा था। महामतिने इसी तनाव को समाप्त करने के लिए 'एक ईश्वर' की घोषणा की। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती संतो की बात को ही आगे बढ़ते हुए कहा.....

"जात एक समय की और न कोई जात।

एक खसम एक दुनिया, और उड़ गई दूजी बात।।”<sup>३</sup>

महामति प्राणनाथने इस सत्य को अच्छी तरह से समझ लिया था कि धर्म और समाज की एकता में ही मानवजाति का कल्याण निहित है। यदि अलगाव आतंक और विखंडन की नितियों से जनमानस को नहीं बचाया गया तो मानवता का विनाश निश्चित है। इसलिए उन्होंने देशी-विदेशी सभी धर्मों को मिलाकर एक मानव धर्म की प्रतिष्ठा की।

महामति प्राणनाथ के एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि जनसमुदाय को जागृत करके उन्हें संगठित किया, ताकि वे न्याय-अन्याय को समझ सकें और अपने दायित्वों का निर्वाह कर सकें। उन्होंने अपने अनुयायियों में यह भावना प्रबल की कि संसार के सभी धर्म एक ईश्वर की बात करते हैं। उन सबका उद्देश्य मानव का कल्याण करना है। संसार के सभी धर्म और ईश्वर नाम और वाणी से अलग-अलग मालूम पड़ते हैं, जब कि वस्तुतः वे एक हैं। वेदों में भी कहा गया है कि 'एकं सद् विप्रा बहुधा। वदन्ति,' अर्थात् सत्य एक ही है, लेकिन विधान उसे। अलग-अलग ढंग से कहते हैं। महामति प्राणनाथने कहा है.....

"जुदे जुदे नामे गामही जुदे जुदे भेष अनेक।”<sup>४</sup>

जिन कोई झगड़ो आप मे, धनी सबों का एक।।

महामति प्राणनाथ धार्मिक और आध्यात्मिक आचरण को व्यावहारिकता की कसौटी पर देखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने आत्मा की निर्मलता पर विशेष जोर दिया। उन्होंने कहा कि सच्चा वैष्णव वही है जिसकी आत्मा निर्मल है। व्यक्ति को चाहिए कि वह आडंबर और अहंकार को छोड़कर शुद्ध मन से ईश्वर के प्रति समर्पित होकर मानव की सेवा

करे। त्याग, करुणा और सेवा से बढ़कर दुसरा कोई पुण्य-कार्य नहीं है। समानता की भावना से युक्त होकर जन-कल्याण के कार्यों में लग जाना ही सच्चा धर्म है। यह भावना तभी आ सकती है, जब जब व्यक्ति के भीतर परमात्मा और मानव के प्रति सच्च प्रेम हो। जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ पवित्र आत्मा और पवित्र मन का निवास नहीं हो सकता। इसलिए प्राणनाथजीने प्रम ब्रह्मम दोउ एक है' कहकर प्रेम को ही ईश्वर का रूप माना। सूफी संतों के लिए भी प्रेम ईश्वर तक पहुँचने का माध्यम था। कबीरदासने जिस 'ढाई आखर प्रेम का' कहा उसे ही महामतिने यह कहकर आगे बढ़ाया।

"इस्क बड़ा रे सबन में, ना कोई ईस्क समान।

एक तेरें इस्क बिना, उड़ गई सब जहान।।"<sup>५</sup>

यही जैन और बौद्ध धर्म की अहिंसा है। महामतिने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि ईश्वरीय आदेश तो कभी हिंसा-प्रेरक हो ही नहीं सकता, बल्कि वह तो शाश्वत, दिव्य और जीवंत प्रेम की प्रेरणा, देता है। तत्कालीन हिन्दु मुसलमानों की पारस्परिक कटुता का उन्हें आभास था। इसलिए उन्होंने कहा.....

" छोड़ के बैर मिले सब प्यार सों

हुआ जगत् मे जय-जयकार ।।"<sup>६</sup>

महामति प्राणनाथ ने प्रेमको सामाजिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण माना है। आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति का सहारा लेकर उद्यैत में पहुँचने की बात कही है। उन्होंने अपने उद्देश्य के बारे में स्पष्ट रूप से कहा है कि 'सुख शीतल करू संसार' इस सुख और शांति की स्थापना भेद से नहीं प्रेम से ही हो सकती है।

महामति केवल आध्यात्मिक संत ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने स्वयं को तत्कालीन परिस्थितियों से लगातार जोड़े रखा। उनकी दिव्यता से प्रभावित होकर बुदेलखंड के शासक छत्रसाल ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया था। उन्होंने छत्रसाल की धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में सहायता की। वे छत्रसाल के गुरु होने के साथ-साथ उनके प्रधान सहायक, प्रेरणा और शक्ति के स्रोत भी थे। उनमें शास्त्रवेत्ता और शस्त्रवेत्ता दोनों का समन्वय था। उन्होंने

अपने जीवन के अंतिम ग्यारह वर्ष छत्रसाल के राज्य में बिताया और वही पन्ना में सन् १६९४ में उन्होंने अपनी देह त्यागी पन्ना में बना उनका गुम्मत मंदिर हिन्दु और मुस्लिम धर्म तथा संस्कृति के समन्वय का सुंदर उदाहरण है। जैसे कि-

हिन्दु मुस्लिम ऐकता के प्रयास।

### **हिन्दु-मुस्लिम ऐकता: समय की मार्ग:-**

हिन्दू-मुस्लिम एकता मध्यकालीन भारत की सबसे बड़ी समस्या थी और वह आज भी है। इसके लिए भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ ही प्रयास प्रारंभ हो गये थे। विकृत और भ्रष्ट भारतीय सामाजिक परंपराओं और सांस्कृतिक गतिविधियों पर कबीर, दादू नानक आदि ने जो मर्मन्तर तक प्रहार किये उसकी अगली कड़ी महामति प्राणनाथ हैं।

उस समय औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति के चलते भारतीय समाज हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक वैमनस्य और कटुता के कारण विदीर्ण था। इसास्यौ का उस समय भारतवर्ष में प्रवेश मात्र हुआ था सो उनका भारत की राजनीति में उतना महत्वपूर्ण हिस्सा नहीं था। महामति इस बातको बहुत अच्छी तरफ समझते थे कि हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य भारतीय समाज के लिए कलंक है जो आज भी है। इसीलिए उन्होंने इन दोनों धर्मों के अनुयायियों में एकता और सहिष्णुता की भावना जागृत करने के प्रयास किये। यह समय की मार्ग थी कि दोनों के झगड़ खत्म करके दोनों में एकता स्थापित की जाये जिससे भारत में शांति का स्थायी वातावरण स्थापित हो । महामति ने अपना सारा जीवन इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये समर्पित कर दिया था। उनका ग्रंथ कुलजम स्वरूप इसका प्रमाण है।

### **महामति प्राणनाथ के अनुसार एक सच्चा हिन्दु और मुसलमान:**

महामतिने इस पर भी प्रकाश डाला है कि एक सच्चा हिन्दु और मुसलमान कौन है? इससे दोनों धर्मों के मानेवाले यदि अपने-अपने धर्मों का एक धार्मिक व्यक्ति की तरह पालन करते हैं तो भारतवर्ष का धार्मिक वैमनस्य दूर हो जायेगा और हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े समाप्त हो जायेंगे।

वे मुसलमानों के लिये कहते हैं.....

जो दूसरों को दुःख दे, वह कदापि मुसलमान नहीं है। नबी, रसूल महम्मद साहबने मुसलमान का दूसरा नाम महेरबान बताया है। दयालु व्यक्ति को ही सच्चा मुसलमान कहा गया है। धर्म क्या है? उस पर कैसे चला जा सकता है? कुरान किस आचरण की ओर संकेत करता है? आंतरिक विचारों और बाह्य आचरण में भेद न हो, ये जाने बिना वे अपने को मुसलमान कहते हैं....

" जो दुःख देवे किनको, सो नहीं मुसलमान

सून करते ना डरें, कहें हम मुसलमान ।।"<sup>७</sup>

मुसलमानों का दूसरो के गुणों की और ध्यान नहीं जाता है और वे उनके अवगुणों को ओढ़ लेते हैं। इन्द्रियों के वश में होतु हुए भी अपने को मुसलमान कहते हैं। ये ज़ालिम निराह लोगों पर अत्याचार करते हैं। सचमुच उनकी आँखे अहंकार में बंद हैं। किसी का भी खून करते इन्हें कोई खोफ़ नहीं होता लेकिन वे यह दावा करते हैं कि वे सच्चे मुसलमान हैं। अपने मन में भरे अविश्वास को तो दूर नहीं करते और दूसरों को बुरा कहते फिरते हैं। अपने अवगुणों को तो देखते नहीं, लेकिन मुसलमान होने का दम भरते रहते हैं।

'अपना अवगुण ना देख हों, कहे हम मुसलमान "<sup>८</sup>

सच्चे हिन्दुओं के लिये महामति कहते हैं कि तुम लोग स्नानादि के उपरांत शरीर पर छाये, मस्तक पर तिलक लगाकर, गले में तुलसी की माला धारणकर और ज्ञान की ऊँची-उँची बातें करके साधुओं की मंडली में बड़े साधु कहलाते हो पर तुम कैसी उलटी चाले चल रहे हो यह भी तुमने कभी सोचा है? बाह्या रूप से तो तुमने स्वच्छ और उत्तम वेष धारण कर लिया है परंतु अपने अंदर का मैल नहीं धो पाये। देखो कि तुम्हारा गंतव्य किधर है? तुम किस राह पर बढ़ते चले जा रहे हो? अपने अंतर की आँखे खोलकर देखो । काया को भल ही स्वच्छ करो मन का मैल तो तुमसे धोया नहीं गया। बेहद की राह यह नश्वर शरीर चलता नहीं। निर्मल चित एवं निर्विकार सूक्ष्म जीव ही वहाँ पहुँच पाता है।



महामति हिन्दुओं से कहते हैं कि बाह्य आचरण में कुछ नहीं रखा है। जो कुछ है वह है आंतरिक निर्मलता और शुद्धि । वे कहते हैं कि तुम्हारा मन तो निर्मल है नहीं लेकिन उपर से बार-बार स्नान करते हो। चाहे करोड़ों बार ऐसा कर लो तो भी अपने करतार, प्रियतम परमात्मा से मिलना नहीं हो सकेगा। करोड़ों बार प्रार्थना करो। ऊपर से चाहे शुद्धि के लिये कितने ही आचार-अनुष्ठान कर लो। जब तक मन को साधकर वश में नहीं करलेते, तब तक परब्रह्म स्वामी को मिलना असंभव है। तुम्हारी कायकितनी स्वच्छ है यदि मन भी ऐसा निर्मल हो जाये तो पलभर भी अपने प्रियतम से अलग न रहे। फिरतो रातदिन उनसे हिलमिलकर रहेगी-

" अंदर नहीं निर्मल, फेर फेर नहावे बाहेर।

कर देखाई कोट बेर, तांहे ना मिल करतार।।

कांह कर बंदगी, बाहर हो निर्मल।

तालोंने पीऊ पाईये, जो लो ना साधे दिल ।।

जैसा बाहर होत है, जो होए ऐसा दिल।

तो अधखिन पीऊ न्यार नहीं, माई रहे हिलमिल।। "१०

हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए महामतिने दोनों के धर्मग्रंथों के मर्म को दोनों को समझकर सत्य का साक्षात्कार कराया और यथार्थ ज्ञान दिया। महामति हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक कलह और वैमनस्य दूर करने के लिए जन्म-मरण की पहली और आखिरी सच्चाईयों से दोनों को प्रबोध देते हैं कि एक तरफ ब्राह्मण कुल में उत्पन्न व्यक्ति स्वयं को सबसे उत्तम जाति का जानकर सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। जब कि दूसरी और मुसलमानों का यह दावा है कि हम ही सबसे पवित्र हैं सच तो यह है कि दोनों ही मुट्टी या राख भर है- एक जलकर राख हो जाता है और दूसरा मिट्टी में मिलकर खाक बन जाता है।

"ब्राह्मण कहे हम उत्तम, मुसलमान कहें हम पाक ५ ।

दोऊ मुट्टी एक ठौर की, एक राख दूजी खाक ।। "११

बुंदेलखंड में यह पद प्रायः सुनने को मिलता है कि कृष्ण, मुहम्मद, देवचंद्र, प्राणनाथ, छत्रसाल- इन पाँचों को भजन करता है उसके दुःख तत्काल दूर हो जाते हैं।

" कृष्ण, मुहम्मद देवचंद्र, प्राणनाथ छत्रसाल।

इन पंचम् को सो भजे, सो दुःख हरे तत्काल।।"<sup>१२</sup>

यहाँ इस पद में हिन्दू-मुस्लिमान एकता के बारे में ईतना सारा कहा गया है कि इस में सबकुछ समा गया है। प्रणामी संप्रदाय तो हिन्दु-मुस्लिम एकता का जीवंत प्रतीक रहा है जिसके अनुयायी बिना किसी धर्म और जाति के भेदभाव के साथ मिलते और भोजन ग्रहण करते थे। जहाँ महामतिने वेद-दर्शन को मुसलमानों के लिये ग्राह्य बनाया वहाँ कुरान के संदेश हिन्दुओं के लिये अंततः हम कह सकते हैं कि प्रणामी संप्रदाय ने एक और जहाँ हिन्दु-धर्म की संकीर्णता को दूर किया वहीं दूसरी ओर मुसलमानों को भी उदार पंथी बनाया।

**हिन्दु-मुस्लिम एकता का कार्यान्वयन:-**

महामतिने हिन्दू-मुस्लिम एकता को एक महान् आदर्श के रूप में ही नहीं लिया बल्कि उसे अपने जीवन में कार्यान्वित भी किया। संभवतः पूरे मध्यकालीन भारत में महामति प्राणनाथ का एक ऐसा उदाहरण है जिसकी धार्मिक सभाओं में एक ओर भागवत् और दूसरी ओर कुरान का एक साथ एकही धार्मिक उत्साह के साथ पाठ होता था। सन् १९६४ ई. में एक अंग्रेज पन्ना में महामति के मंदिर में आया था। उसने लिखा है, "मैंने वहाँ एक छोटा-सा बिस्तर देखा, जिस पर पगड़ी रखी हुई थी जिसे प्राणनाथ की बैठक कहा गया। उसके दोनों ओर एक-एक स्टूल रखा हुआ था। हसमें एक कुरान की प्रति और दूसरे पर कुरान की प्रति रखी हुई थी। दोनों धर्मों के विद्वान वहाँ उपस्थित थे जो सारे प्रश्नों का उचित उत्तर दे रहे थे। अधिकांश उत्तर ईश्वर की एकता पर ही थे।"<sup>३</sup>

**भारतीय समाज के एकीकरण के प्रयास :**

महामति का युग संघर्ष का युग था। राजनिति, धर्म, समाज और संस्कृति हर क्षेत्र में संघर्ष में संघर्ष था। प्रमुखतः भारतीय समाज के दो वर्ग थे - हिन्दु और मुस्लिम।

ईसाइयों का तो उस समय प्रवेश मात्र हुआ था तो सब प्रकार से सुख और शांति से पल रहे थे लेकिन हिन्दु भय, असुरक्षा और अशांति में जी रहे थे। दोनों ही धर्मों में कट्टरपंथी दृष्टि थी जिससे विषमता की दिवारों दोनों के बीच खड़ी हो गई थी। सबसे पहल हम तत्कालीन हिन्दु समाज पर द्रष्टि डाले तो पायेंगे कि हिन्दु समाज में ऊँच-नीच जाति-पाँति और अशुश्रूयता की भावना जोरो पर थी जिसका कारण वर्ण व्यवस्था थी। समाज इस व्यवस्था के अंतर्गत चार वर्णों में बँद। हुआ था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ब्राह्मण सर्वाधिक शक्तिशाली और सम्मानीय थे। हिन्दु धर्म और कर्मकांड का दायित्व उन पर था। उनका हिन्दुओं पर एकछत्र राज्य था। क्षत्रिय अपनी वीरता और शौर्य के लिये प्रसिद्ध थे, लेकिन औरंगज़ेब के शासनकाल में हिन्दु राजाओं की स्थिति फूट के कारण बड़ी दयनीय थी। उदयपुर के राजा रायसिंह औरंगाबाद के राजा भावसिंह हाड़ा आदि राजाओं ने महामति को सहयोग नहीं दिया था। वैश्य संपन्न थे लेकिन ब्राह्मणों और क्षत्रियों से उन्हें काम सन्मान प्राप्त था। वे समुद्र से भी व्यापार करते थे इसके अनेक उदाहरण में जैसे कि लालदास जिनका ९९ जहाज़ों से व्यापार होता था। शूद्रों की दशा अत्यंत सोचनीय थी। ऊँची जाति के लोग इन पर अत्याचार करते थे। ये असंपृश्य समझे जाते थे। अशुश्रूयता हिन्दु समाज का कलंक था और अब भी है। 'एसी जनश्रुति रही है कि इनके कानों में अगर वेदमंत्र चला जाये तो उनमें शीशा पिघलाकर डाल ही। हिन्दु समाज में अशुश्रूयता बिगड़ी हुई जाति-व्यवस्था की देन है।

प्रारंभ में तो हिन्दु समाज की जाति का आधार कर्म था लेकिन धीरे-धीरे यह व्यवस्था सड़िगत होने लगी, जाति कर्म पर आधारित न होकर जन्म पर आधारित होने लगी। जिससे समाज में गत्ययावरोध पैदा हो गया। यही कारण है कि प्रत्येक उदारवादी धार्मिक व्यक्ति और समाज सुधारकने जन्म पर आधारित इस व्यवस्थाका विरोध किया, मध्यकालीन भारत में हिन्दु समाजने जाति व्यवस्था को जन्म पर आधारित मानकर अपनी प्रगतिशीलता पर चिह्न लगाकर उसे खो दिया। वे विदेशियों को अपने समाज में समाहित करने में असमर्थ रहे जबकि इसके पहल प्राचिन भारत में सारे विदेशी आक्रमणकारियों को

हिन्दु समाजने अपने में समाहित कर लिया था। इस समय मुस्लिम आक्रांताओंने बलात् धर्मप्रसार से जहिल्सा और बढ़ गई थी।

परिवार समाज की एक ईकाई है और नारी इस परिवार की द्युरी है। दुर्भाग्य है, अधिकांश मध्यकालीन संतो का दृष्टिकोण पारिवारिक जीवन के प्रति नकारात्मक ही बनारहा। समाज में नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। परदा प्रथा के कारण स्वतंत्र रूप से उसके आवागमन में बाधा थी। उसे समारोहों में भाग लेने या विचारों के आदान-प्रधान की स्वतंत्रता नहीं थी। विधवाओं की स्थिति तो और ख़राब थी। उन्हें धार्मिक सभाओं में आने-जाने, सत्संग करने या विचारों के आदान प्रधान करने का अधिकार नहीं था। हिन्दुओं ने एक पत्नी- प्रथा का पचलन था जब कि मुसलमानों में इसका बंधन नहीं था। हिन्दुविशेष परिस्थिति में दूसरा विवाहकर सकता था। जब कि उसकी पहली पत्नी का देहांत हो या संतान न हो रही हो या उसे कोई संक्रामक बीमारी हो। इस तरह की कई अवधारणाएँ समाज में प्रचलित थी।

मध्यकालीन संतो, विशेषकर कबीर नानक और दाद ने हस दूषित जाति व्यवस्था का विरोध किया। इस परंपरा की महामति प्राणनाथने आगे बढ़ाया। वे मध्ययुग में प्रगतिशील विचारकों में थे। जो जाति-व्यवस्था की कुरितियों पर खुलकर कुठाराघात करते हैं और व्यक्ति की उच्चता उसके कर्म से मानते हैं। उन्होंने सामाजिक समानता के सिद्धांत का प्रबल समर्थन किया। सामाजिक कुरीतियाँ, जातिवाद, कर्मकांड और रूढ़िवाद के वे घोर विरोधी थे। द्विजेत्तर वर्णों, अछूतों और मुसलमानों को उन्होंने 'तारतममंत्र' की दीक्षा देकर एक भेद-भाव विहीन और वर्ग विहीन समाज की संरचना की।

वास्तव में महामति धर्म, समाज और जातिय एकता के पक्षधर थे। उन्होंने यदि एक ओर हिन्दु और मुस्लिम के बीच की दरार पाटने का प्रयास किया तो दूसरी ओर हिन्दु समाज में व्याप्त कुरीतियों और रूढ़ियोंको समाप्त करने की चेष्टा की। मुस्लिम समाज की धर्मान्धता पर भी वे प्रहार करने में नहीं चुक। सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक एकता स्थापित करने के लिये वे सदैव कटिबद्ध रहे।

महामतिने एक सामाजिक चिंतक की तरह जन्म पर जाति-पाँति प्रथा का घोर विरोध तो किया ही लेकिन सामाजिक समानता के आदर्श को मानते हुए वह एक अछूत व्यक्ति, धाराभाई को निजानंद संप्रदाय में सम्मिलित करते हैं। गुरुपुत्र बिहारीजी की अप्रसन्नता और विरोध का विचार न कर वे उनके संबंध तोड़कर पीड़ित और परित्यक्त लोगों से संबंध जोड़ते हैं। उनकी सामाजिक गतिशीलता का यही सब से बड़ा प्रमाण है।

हिन्दु समाज में चांडाल जाति निम्नतर स्तर की मानी जाती है अतएव चांडाल के घर में उत्पन्न होनेवाले एक उत्तम, शुद्ध हृदय प्रभुप्रेमी चांडाल की अहंकारी ब्राह्मण से उत्तम बताते हैं। वे कहते हैं कि इस संसार में एक व्यक्ति ब्राह्मण बनकर उत्तम वेश धारण कर लेता है और दूसरा नीच जातिमें जन्म लेने से चांडाल कहलाता है। जिस चांडाल को छूने से कोई अपवित्र हो जाए-उसकी संगति से फिर क्या गति होगी?

महामति कहते हैं कि अब आप कहिए कि किसके स्पर्श से छूत लगती है? ब्राह्मण का शरीर स्वच्छ तो है किन्तु यदि उसकी प्रकृति नीच है तो वह अधम है। जब कि एक चांडाल के हृदय में उज्ज्वल ज्योति का निवास है-

" अब कहो काक छुए, अंग लागे छूत,

अधमतम बिप्र अंगे, चांडाल अंग उद्योत।।"<sup>१४</sup>

इस तरह महामति केवल एक धर्मपूवर्तक और प्रचारक ही नहीं थे अपितु एक सच्चे समाज सुधारक भी थे।

**महामति द्वारा सुंदर साथ में धर्मगत और जातिगत भेद नहीं:-**

महामति की प्रमुख शिक्षा और सिद्धांत थे- भातृत्व की भावना, सारे धर्मों की मूलभूत एकता, जातिविहीन और वर्गविहीन समाज और जाति वंश, संप्रदाय और लिंगभेद का भेद न करते हुए समानता। सत्रहवीं शताब्दी में इन सिद्धांतों का केवल कथन ही नहीं किया गया वरन् इन पर अमल भी किया गया। उन्होंने अपने प्रणामी संप्रदाय का प्रचार-प्रसार करते हुए एक जातिविहीन और वर्गविहीन समाज की रचना करने का भी प्रयास किया। उनका सुंदर साथ-अनुयायी भारतवर्ष के विभिन्न धर्मों और क्षेत्रों का

प्रतिनिधित्व करते थे। उनमें धर्म और जाति का कोई बंधन नहीं था। वे सब एक साथ उनकी धार्मिक सभाओं में भाग लेते थे और एक साथ भोजन ग्रहण करते थे। ऐसी बात मध्यकालीन भारत में अन्य किसी धर्म या संप्रदाय में देखने में नहीं आती। यह अपने आप में प्रशंसनीय आदर्श है।

महामति के इन उदारवादी धार्मिक विचार और समन्वयात्मक दृष्टिकोण का ही प्रभाव था कि तत्कालीन हिन्दु और मुसलमान दोनों की धर्मों के स्त्री-पुरुष उनके शिष्य बने। लालदास की बीतक में उनके मुस्लिम शिष्यों के नाम दिये गए हुए हैं जिनमें दिल्ली के शेखबादल और मुल्ला काहम प्रमुख हैं। दिल्ली में औरंगजेब को समाजाने को उनके बारह शिष्य गये थे, उनमें दो मुसलमान थे।

#### **साथमुक्ति या संघमुक्ति:-**

साथमुक्ति या संघमुक्ति का अर्थ है अपने अनुयायियों के साथ स्वयं की मुक्ति। यह महामति के जीवन का ध्येय था। वे केवल अपनी ही मुक्ति नहीं चाहते थे किन्तु अपने सारे अनुयायियों की मुक्ति अपने साथ चाहते थे। यह तो मध्यकालीन भारत या भारत के इतिहास में पहलीबार हुआ था।

व्यक्तिगत मोक्ष के साथ-साथ " सुंदरसाथ" के मोक्ष का भी ध्यान रखना चाहिये महामति इस जिम्मेदारी को कभी नहीं भूलते हैं। वे सिन्धिबाद में लिखते हैं कि आपने मुझे सुझाया कि यदि तू अकेलला हो जाये तो तुझ से बातें भी करूँ और तुझे दर्शन भी दूँ।

" तु मूके बुझाईओ, जे तू ऐकली थिए ।

तोसे करियाँ गालड़ी, दीदार पण डिए।।"<sup>१५</sup>

किन्तु महामति तो परमधाम के अखंड सुख की प्राप्ति के लिये भी 'सुंदरसाथ' को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। जिस परमधाम के अखंड सुख की प्राप्ति के लिये सारा जीवन लगा दिया सारे संसार के सुख को त्यागकर बड़ी ' कसनी' सही, बड़ी से बड़ी साधना की, यही सुख सामने है किन्तु महामति की आत्मा 'अखंड सुख' को भी पाकर यही कहती है कि

अगर सुंदर साथ को यह अखंड सुख न मिले तो मैं अकेली इस सुख को पाना नहीं चाहती। इसलिए मैं अकेली कैसे आपके पास आऊँ जब आपने दूसरी रूहों को मेरे साथ लगा दिया है। अतएव महामति प्रियतम ब्रह्म को यही उत्तर देते हैं.....

– 'थी न संगी हेकली।'

– मैं अकेली नहीं हो सकती।''<sup>१६</sup>

अपने 'सुंदरसाथ' की यही चिन्ता महामति को मध्यकालीन अन्य धार्मिक संतों से बहुत ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित कर देती है। मध्यकाल में व्यक्तिगत मोक्ष' पर अधिक बल था। यही मध्ययुग की कमी थी आधुनिक युग में 'संघमुक्ति' या 'साथमुक्ति' पर अधिक बल दिया जाता है। यही वर्तमान युग का महान् आदर्श है। इस आदर्श की दृष्टि से महामति प्राणनाथ मध्ययुग के सुधारकों से बहुत आगे थे।

#### नारी और परिवार की स्थिति :

मध्यकाल के कुछ धार्मिक संत हिन्दुसमाज में नारी को पुरुष के समान दर्जा देने के विरुद्ध थे लेकिन महामति ने उसे पुरुष के समान दर्जा देकर उसका सम्मान बढ़ाया। उन्होंने अपने ग्रंथ कुलजमस्वरूप में भी यहीं उदार दृष्टिकोण नारी जाति के प्रति अपनाया। उन्होंने अपने गुरुपुत्र बिहारीजी की इस सलाह को भी नहीं माना कि विधावओं और नीच जाति के व्यक्तियों को तरतममंत्र न दिया जाए। इस तरह महामति सामाजिक चेतना की दिशा में भी अग्रणी थे। उन्होंने नारियों के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाकर नारी जाति की सामाजिक मर्यादा और प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया, जिससे सामाजिक संतुलन बना रहे।

परिवार सामाजिक जीवन एक ईकाई है। एक स्वस्थ और सुख परिवार एक स्वस्थ और सुखी समाज का आधार है। यह एक शोचनीय बात है कि मध्यकालीन भारत के अधिकांश संतो ने पारिवारिक जीवन की निंदा की है कि यहाँ काँहो भरा जीवन और व्यर्थ की चीज़ है। उनका यह दृष्टिकोण नकारात्मक था, इसलिए उनका नारी के प्रति सम्मान का भाव नहीं था।

महामति का नारी के प्रति सकारात्मक और उदार दृष्टिकोण था। उन्होंने स्वयं विवाह किया था। उनकी पत्नी ने उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर उनके धार्मिक अभियान में उनका साथ दिया था। महामति के अनुयायी भी विवाह को नीची निगाह से नहीं देखते थे। उनका धार्मिक दृष्टिकोण परिवार या सामाजिक जीवन के विरोध में नहीं था। महामति का शिष्य बनने के लिये घर-परिवार छोड़ने की आवश्यकता नहीं थी। यही कारण है कि अनेक लोग परिवार सहित उनके शिष्य बन गये।

प्रणामी संप्रदाय में धर्मप्रचार का उत्तरदायित्व सद्गृहस्थ को दिया गया है। इस तरह समाज का उन्होंने बहुत बड़ा उपकार किया। पूर्ववर्ती नारीविरोधी संतो के कारण जो परिवार विघटित हो रहा था वह इस लौकिक और पारलौकिक समृद्धि और विकास का मुलकेन्द्र हो गया। नारी को महत्त्व मिला और उसके भी विकास की राहें खुली। वह व्यक्ति, परिवार और समाज के विकास में सहयात्री बनी। इस क्षेत्र में भी महामति अपने पूर्ववर्ती सुधारकों से कहीं अधिक प्रगीतशील चिंतक तथा समाज सुधारक थे।

**हिन्दुस्तानी भाषा:- भारतवर्ष को एक सूत्र में पिरोनेवाली संपर्क भाषा:**

महामति मूलतः एक समन्वयवादी थे। जिस तरह धर्म के क्षेत्र में उन्होंने हिन्दुओं, मुस्लिमों और ईसाइयों को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया, उसी तरह उन्होंने भारतवर्ष की भाषाओं और बोलियों को हिन्दी या हिन्दुस्तानी में समाहित करने का प्रयास किया। उनकी भाषाई एकता भी अनुकरणीय थी।

महामति की मातृभाषा गुजराती थी। वे हिंदी, सिन्धी राजस्थानी, संस्कृत अरबी, फारसी आदि भाषाओं से भी परिचित थे। उनकी वाणी का शुभारंभ गुजराती भाषामें हुआ परंतु जब सारे भारत को संबोधित करने का प्रश्न आया तो उन्हें लगा के भारतवर्ष की सारी भाषाओं में से वे किस भाषा में परमात्मा का संदेश दे जो सबसे सरल हो और जिसे साधारण लोग समझ सकें? वे लिखते हैं – समस्त विश्व में अनगिनत भाषाएँ हैं। इन तमाम भाषाओं में मैं हिन्दुस्तानी भाषा को सबसे, सहज, सरस और सुगम जानकर उसी भाषामें अपनी बात कहूँगी। यह एक महान् भाषा है और सबको समझ में आने के कारण भली है।



सब इसे जानते हैं। सबके मन को निर्मल और बाह्य रूप से पवित्र करने के लिये यह भाषा ही सर्वोत्तम माध्यम है।

"बिना हिसाबे बोलियाँ, मिने सकल जहान।

सबसे सुगम जान के, कहुँगी हिन्दुस्तान।।<sup>१७</sup>

बड़ी भाषा एही भली, जो सबमें जाहेर ।

करने पाक सबको, अंदर माँहे बाहेर।।<sup>१८</sup>

### महामति की उपादेयता और महत्त्व:

जैसा कि हमने देखा कि महामति प्राणनाथ अपने युग की परिस्थितियों से और हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाईयों के धर्मग्रंथों से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने सर्वधर्म समन्वय के द्वारा इसलिए भारतवर्ष के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक, देश की एकता और भाषाई एकता के लिये राह बनाई। सत्रहवीं शताब्दी के भारतवर्ष में उनका यह प्रयोग अनूठा और बेजोड़ था। भारतवर्ष और भारतीय समाज की एकता और अखंडता के लिये उनकी यह अनुपम देन थी।

आधुनिक भारत की परिस्थितियों में हिन्दु-मुस्लिम एकता और सर्वधर्म समन्वय के क्षेत्र में महामति की उपादेयता और महत्त्वका सही मूल्यांकन अत्यावश्यक है। आज के भारत की सांप्रदायिक एकता, धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता और अखंडता के परिपेक्ष्य में, जो कि आज की सर्वोपरि आवश्यकताएँ हैं, महामति प्राणनाथ की भारत की समन्वयात्मक संस्कृति को देने अपने अचप में स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण है।

अंततः हम कह सकते हैं कि महामति का व्यक्तित्व विराट था और चिन्तन है और उपलब्धियों विश्वव्यापी। उनका चिरंतन आदर्श सत्रहवीं शताब्दी में जितना महत्त्वपूर्ण था, उतना ही वह आज भी है। महामति केवल प्रणाली संप्रदाय तक ही सीमित नहीं वरन् सारी मानवता के चिरंतन आदर्श के प्रतीक हैं। वे भारतवर्ष की समन्वयात्मक संस्कृति की आत्मा है, जिन पर भारतवर्ष को गर्व है।

साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिध होता हैं। अपने समय के समाज में प्रचलित विचारधाराओं नियमों-उपनियमों आदि के प्रति उसकी दृष्टि सदैव सतर्क और जागरूक रहती हैं। इन सबमें जो व्यक्ति समन्वय कर सके वही लोकनायक कहा जा सकता हैं यह समन्वय करने की शक्ति उसी व्यक्ति में हो सकती है, जिसका दृष्टिकोण संकुचित न होकर विशाल, उदार एवं मानवतावादी होता है। साथ ही इसके लिए सुलझी हुई एवं निरीक्षण शक्ति व्यापक अध्ययन एवं गंभीर मनन और चिंतन भी आवश्यक होता है। युगधर्म से प्रभावित तो साधारण से साधारण व्यक्ति भी होते हैं परंतु इसके युग के विपरित चलने की शक्ति नहीं होती हैं। वह भक्ति को तो केवल "युगपुरुष" अथवा "लोकनायक" में ही होती हैं। ऐसा व्यक्तित्व जन्मतः स्वभाव से ही क्रांतिकारी होता है। उस के व्यक्तित्व में तत्कालीन युग और उसका समस्त संघर्ष साकार हो उठता हैं। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में अनेकानेक यशस्वी एवं प्रतिभावन कवि हुए हैं। कवियों के इस विशाल समूह में कबीर के व्यक्तित्व के विषय में कहूँगी। यहाँ तो केवल उनके विविध पद का ही अध्ययन करना है।

'व्यक्तित्व' शब्द से तात्पर्य व्यक्ति के आंतरिक व बाह्य स्वभाव की परिगणना से हैं। जिस प्रकार व्यक्ति का स्वरूप होगा उसी प्रकार वह अपने कार्यों को अपने स्वभाव से ढालता है, यह बात कबीरदासजी के लिए भी उचित हैं।

कबीरदास की वाणी तो योग और भक्ति का मेल हैं। कबीर के स्वभाव में स्पष्टतः योगियों की दृढ़ता और भक्तों की करुणा देखी जा सकती हैं। कबीरदासने यह अखंडता योगियों से विरासत में पायी थी। संसार में भटकते हुए जीवों को देखकर करुणा के अश्रु से वे निराश नहीं हो जाते थे बल्कि ओर भी कठोर होकर प्रतिकार करते थे। अखंडता के गुण का प्रयोग वे तब करते हैं जब उन्हें किसी आड़म्बरी मनुष्य सामाजिक कुरीतियों या आड़म्बरी योगी पर चयेह करती होती है।

कबीर स्वभाव से फक्कड़ भी है मोह-माया से कहीं ऊँचे। कोई सिद्धांत यदि उनकी कसौटी पर खरा उतरता है तो वह है सत्य का । जिस वे बिना संकोच अपनाते थे। अन्याय का विरोध करते थे, उन्हें किसी का भय नहीं था। हिन्दु हो या मुसलमान, राजा हो या प्रजा,

अधिकारी हो या योगी या अवधूत, द्वैत हो या अद्वैत के अनुयायी यदि कुछ भी गलत देखे तो बोल देते थे । वे कहते थे कि मेरे साथ वही चल सकता है जो अपनी मोह-माया ममता को त्यागकर चला ।

सबके लिए उनके मन में प्रेमभावना थी । बिना किसी वैर-स्वार्थ भावना को उन्होंने कहा है.....

"कबीरा खड़ा बाज़ार में, सबकी माँगे खेर, ।

ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर ।।"<sup>१९</sup>

मोह-माया न रखने और स्वार्थ -भावना न होने के कारण कबीरजी सिर से पैर तक मस्तमौला थे । उन्हें अपने लिए इस दुनिया से कुछ लाभ न लेना था, जो करना था बेधड़क कर गुजरत थे कबीर तो क्रान्ति दृष्टि थे। वे सचमुच सरस थे। वे तो प्रेमदिवाने थे जिन्हें अपने प्रिय का पलभर थी वियोग नहीं सहन करना पड़ता था। जिनका प्रिय सदा उनके साथ था।

" हमने हैं इश्क मस्ताना , हककी होशियारी क्या। रहे आजाद या जग से इकन दुनियाँ से यारी क्या।। जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर-बदर फिरते। हमारा पार हैं हककें, इमम को इन्तजारी क्या।।"<sup>२०</sup>

कबीर को प्रेममार्ग में अखंड विश्वास था। जो अंत तक न टूट। वे तो इस मार्ग के वीर साधक थे। इसके लिये उनके मन में कोई संशय या द्विधा नहीं थी। उनका प्रेम सिर्फ बातों का ही नहीं था, अपितु वे तो इस पर चल थे। उनके प्रेम में भावुकता नहीं है, पर मस्ती है, कर्कशता नहीं है पर कठोरता है, असंयम नहीं है पर मौज है, अश्रृंखलता नहीं है पर स्वाधिनता है। अंधानुकरण नहीं है पर विश्वास है, कबीर के प्रेम के आत्मसमर्पण है।

कबीरजी का जीवन अत्यंत महान एवं जहिल है। एक आरे से परम संतोषी, उदार निर्भीक, बाह्याङ्गम्वर विरोधी, सात्त्विक प्रकृतिवाले संत थे। दूसरी ओर वे नाथपंथियों तथा योगियों के सिद्धांतों पर भी गहरा विश्वास करते हैं। कबीर के बारे में एक वाक्य में इम कह सकते हैं कि वे सिर से पैर तक मस्तमौला थे।

कवि जिसे अपने अनुभव के आधार पर अभिव्यक्ति कहता है और अभिव्यक्ति को शब्दों संचार पर प्रस्तुत करता है। उसे काव्य कह सकते हैं काव्य में श्रेष्ठ माध्यम भाषा है और इसका क्षेत्र भी विशाल है। काव्य केवल भौतिक सुख-दुःख या आँखों की अनुभूति नहीं अपितु निश्छल और सहज आन्दानुभूति है। हिन्दी कवि में महात्मा कबीर निर्गुण काव्य धारा के प्रवर्तक माने जाते हैं। कबीरदाजी वैसे तो काव्य-कला से परिचित नहीं थे क्योंकि कविता करना उनका उद्देश्य नहीं था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि-

" तुम्ह बिनि जानो गीत हैं, यह निज ब्रह्म विचार  
केवल कहि समझाईया, आतम साधन सार रे।" <sup>२१</sup>

कविता करने में वे इस विचार से अनुप्राणित जाने पड़ते हैं कि.....

"हरिजी यह बिचरिया, साखी कहो कबीर  
... मो सागर में जीव है, जो कोई पकड़े तीर ।।" <sup>२२</sup>

इसके अतिरिक्त किसी अनय उद्देश्य से की गई काव्य रचना को कबीर 'कोरा कवि कर्म' मानते हैं।

### **कबीर का सुधारवादी स्वर:-**

सुधार के लिए यह आवश्यक है कि जिसे सुधारना है उसकी अथवा भर्त्सना की जाय और सामाजिकों की दृष्टि में उसे नीचे गिरा दिया जाय। सन्त लोग सुधारवादी थे। हमारे कबीर भी वैसे ही सुधारवादी थे। यें कर्मकाण्ड एवम् रूढ़ियों से धृणा करते थे। जिस नये समाज की उन्होंने परिकल्पना की थी, उस समाज के निर्माण के लिए गलत रूढ़ियों एवम् कर्मकाण्डों का अपनी खण्डन-मण्डनात्मक शैली के द्वारा कटू आलोचना करके वे उसे व्यर्थ सिद्ध कर देना चाहते थे। कबीर का यह सुधारवादी विचार बाह्याचारों की कटू आलोचना के रूप में प्रस्फूटित हुआ।

#### **(1) मूर्ति-पूजा का विरोध :**

प्रायः कबीर सुधारवादफी सन्त कवि थे सभी ज्ञानमार्गी सन्त-मूर्ति पूजा के विरोधी थे ये मंदिर और देवालय में जाना व्यर्थ समझते थे। यह परम्परा नामदेव से ही प्रारंभ हो गई

थी नामदेवने कहा है... 'में किस पूजे?' मुझे तो दूसरा दिखाई नहीं देता" हम एक पत्थर देवता हो सकते हैं तो हम भी देवता हैं-

" जो वो देव तो हम भी देव

कहे नामदेव हम हरि की देव ।।"<sup>२३</sup>

तत्कालीन समाज में प्रचलित बाह्याचारों में मूर्ति पूजा का स्थान प्रमुख था। धर्म के ठेकेदारों ने भगवान को केवल मंदिरों-मस्जिदों एवं मूर्तियों तक ही सीमित कर दिया था। वे भूल गए थे कि मूर्ति तो साधन मात्र है। उन्होंने तो साधन को ही साध्य बना लिया था। " जितने मानव उतने देव" की स्थिति बन गई थी। निर्गुण कवियोंने देखा और समूची स्थितियों का परिक्षण किया। कबीरदासने पत्थर की मूर्तिपूजा पर तीव्र पहार किया है, अनेक साखियों में उन्होंने इसकी कटु आलोचना की है, उनके मतानुसार " मूर्तिपूजा में समय नष्ट करने के बदले जीवित प्राणियों की सेवा करने से सामाजिक प्रगति हो सकती है। मानव सेवा ही सच्ची सेवा है और वही सच्ची ईश्वर की पूजा है पत्थर की पूजा तो निरर्थक है। जन्म भर भी उस पर पत्थर की पूजा करते रहे तो भी वह कोई जवाब नहीं देगा। मूर्ति पूजा कनेवाला मनुष्य अंधा है, जो भगवद प्राप्ति की आस में उसके सामने नत-मस्तक होकर अपनी प्रतिष्ठा को रख देता है। कबीरजी ने देखा था कि लो पत्थर को पत्थर न मानकर देव मान बैठे हैं और अपनी अपनी ईच्छा से अनेक देवों की कल्पना करके न केवल एक देवता को नष्ट कर रहे हैं, अपितु बहुदेव उपासना से सामाजिक एकता को भी नष्ट कर बैठे थे। पत्थर के देवता को पूजने से मन की भक्ति नष्ट हो जाती है कबीर ने अपनी एक साखी में लिखा है कि " उस पत्थर की पूजा का क्या लाभ, जिससे किसीका हित साध्य न हों सके ?"<sup>२४</sup> उपयोगिता एक आवश्यक गुण है, जो पत्थर की प्रतिमा से अधिक चक्की में पाई जाती है । इसी कारण वे कहते हैं....

" पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजु पहार

ताते केरी चकी-भली, पीसी खाए संसार।।"<sup>२५</sup>

बहुत से लोग पत्थक की मूर्ति को ईश्वर मानकर पूजते हैं जो तथ्यक की मूर्ति को पूजकर ही अपने उद्धार की कामना रखते हैं, वे इस संसार रूप भयानक मझधार में डूबकर नष्ट हो जाते हैं। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि उसके पूजने से अब किसी का भी उद्धार नहीं हुआ है। कबीरजी मूर्तिपूजा को सच्ची आराधना अथवा ईश्वर प्राप्ति का साधन न मानकर आड़म्बर मानते हैं। उसे कुछ स्वार्थी लोगों ने अपने उदर निर्वाह हेतु कार्यरत किया है इस कारण उसमें निरर्थकता परिव्याप्त है ऐसा उनका मानना है। यही वजह है कि सामान्य मनुष्य को तथा मूर्तिपूजा में व्याप्त पंडितों पर वे कड़ा प्रहार कर उन्हें चेतावनी देते हैं कि अगर तुम इस प्रकार की निरर्थक मूर्तिपूजा की आराधना करते रहे तो तुम्हारा यह बहुमूल्य जीवन व्यर्थही चला जायेगा जो बड़ी कठिनाईयों से हर एक ईन्सान को प्राप्त होता है।

## (2) यात्रा एवं पारम्परिक मान्यताओं का खंडन :

कबीरजी यात्रा की तुलना विष की बेलि के साथ करते हुए कहते हैं कि " तिर्थादि विष की बेलि के समान है, जिसने पूरे संसार को घेर रखा है । मैंने तो इस बेलि को समूल ही नष्ट कर दिया है। इसके झहरीले फलों को कौन खाता है?"<sup>२६</sup>

यात्रा की निरर्थकता को सम्बोधित करते हुए कबीरजी कहते हैं " तुम्हारा शरीर काम वासना से भरा हुआ है। तो फिर तुम शरीर को बाहर से क्यों धोते हो? कबीरजी का मानना है कि केवल मैं स्नान करने से कीया को साफ-सुथरा रखने से मोक्ष प्राप्ति नहीं होती यदि भाव शुद्ध नहीं है तो कितनी भी यात्रा करके स्नान करो वह व्यर्थ है। इन सब बातों का विचार कर कबीरदास भगवान से प्रार्थना करते हैं कि है मुरारी तुम मुझको इस संसार रूपी भवसागर से पार उत्तार दो अर्थात् आवागमन के चक्र से मेरा उद्धार कर दो ।

जिन दिनों कबीरदास का आविर्भाव हुआ था उन दिनों हिन्दुओं, मुस्लिमों बौद्धों, एवं जैन में पारम्परिक मत प्रबल था। संपूर्ण देश में नाना भाँति की साधनाएँ प्रचलित थी, उसमें वेदपाठ, योग-साधना, तंत्र-मंत्र साधना आदि प्रमुख थी। लेकिन आम जनता में सर्वाधिक प्रभाव हिन्दुमत का था, पारम्परिक धर्म का ही था। कबीरजीने इस पारम्परिकता के बेनाम आधुनिकता का समर्थन किया। कबीरदासने अपनी अनेक साखियों एवं पदों के माध्यम

से हिन्दु एवं मुसलमान धर्म की निरर्थक मान्यताओं का विरोध किया है। यह बात एकदम स्पष्ट है कि कबीर किसी भी बात पर आँखें मूड़ कर विश्वास करनेवालों में से नहीं थे। इसी कारण पारम्परिक मान्यताओं का उन्होंने खंडन किया है उनमें वेद पठन, केश मुंडन, श्राद्धविधि जप-तप एवं संन्यास आदि प्रमुख थी।

### **कबीरजी का स्त्री विषयक दृष्टिकोण :**

कबीरदास के समय में समाज का नारी की तरफ़ देखने का दृष्टिकोण पवित्र, स्वच्छ एवं निर्मल नहीं दिखाई देता था। प्रापंचिक अवस्था में जी रहे लोग जहाँ एक ओर उसे उपभोग की वस्तु मात्र मानते थे, वहीं दूसरी ओर ईश्वर भक्ति में विमुख संतो ने उसे मायावी शक्ति कहकर उससे समस्त संसार को दूर रहने का उपदेश दिया है। इन दोनों विचारधाराओं का प्रभाव कबीरदास के मानस पटल पर पड़ना सहज संभव था। इसके परिणाम स्वरूप कबीरजीने जहाँ एक ओर नारी को मायारूप मानकर उसकी निंदा की है वहीं दूसरी ओर उसके पतिव्रत रूप की अपने कंठ से मुक्त प्रशंसा भी की है। कबीरजीने नारी के विविध रूपों का अपने काव्यमें अभिव्यक्ति दी है, उसमें नारीका कामिनी रूप, पत्नी रूप, पतिव्रता रूप, माता रूप, सती रूप आदि प्रमुख हैं।

### **कबीरजी का आस्थावादी स्वर:**

कबीर सन्त कवि है । प्रायः सभी सन्त आस्थावादी हैं। उसमें परमसत्ता के प्रति पद-पद पर आस्था व्यक्त हुई है। कबीर का कथन है कि जिसका रक्षक भगवान है, उसका कोई भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता—

" जाको राखे साईया, मार सके ना कोय।

बाल न बाँका कर सकें, जो जग बैरी होय।।<sup>२७</sup>

उस परमतत्त्व की अति-व्याप्ति के विषय में कबीरजी ने कहा है कि सातों समुद्रों की स्याही बनाई जाय, सारी धरती को कागज़ बनाया जाय और संसार के समस्त वन लेखनी हो तो भी हरि-गुण लिखे नहीं जा सकते ।

" सात समुद्र की मसि करौं, लेखनि सब वनराय।

धरती सब कागज करों, हरि गुन लिख न जाय ।।"²⁷

कबीरने यहाँ तक कह दिया है कि- 'मेरा मुझ में कुछ भी नहीं है जो कुछ है, सो सब तेरा है, अतः तेरा तुझको सोंपते हुए मुझे क्या हानि है।

" मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा

तेरा तुझको सोंपते, क्या लागत है मेरा।"²⁸

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीरजी के विचार आस्थावादी भी हैं। जिसके अंतर्गत गुरु और गोविंद के प्रति आस्था व्यक्त की गई है साथ ही योग, निष्काम भक्ति तथा मानवजाति के प्रति भी आस्था व्यक्त हुई है।

#### **मानवतावादी स्वर :**

कबीर मूलतः मानवतावादी संत-कवि थे उनकी चिंता का एक ही विषय था मानव मात्र का सुख, उसकी कल्याण-कामना ही उनकी एकमात्र कामना थी। उनकी विचारधारा उनका अध्यात्म, उनकी जीवन-दृष्टि का मूल आधार था उपनिषद् का निम्नलिखित कथन-

" सर्वत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित दुःख माप्यानु पार।।"²⁹

कबीर का अध्यात्म मूलतः उनकी मनुष्य मात्र के प्रति समदृष्टि, प्रेमभाव, भक्तिभाव और व्यापक धर्मोत्तर दृष्टि से ही पनपकर निकला है। मानवमात्र की कल्याण-भावना से प्रेरित होकर ही कबीर भटकते हैं, सत्संग करते हैं, गुरु की खोज करते हैं। शास्त्रार्थ कर सच्च तत्त्व पाना चाहते हैं। उनकी यही चिंता उन्हें चैन से नहीं बैठने देती। जब संसार सोता है, चैन से मरता है, कबीर जागते हैं, चिन्ता में डूबे करवटें बदलते बदलते रात काटते हैं।

" सुखिया सब संसार है, खावें अरू सोवे।

दुखिया दास कबीर है, जागें अरू रोवे ।।"³⁰



वह पाना चाहते थे ऐसा मार्ग जिस पर सब चलकर इस जीवन में सुख शांति और मरने के बाद मोक्ष पा सके उन्हें ऐसे धर्माचार की तलाश है जो इन्सान को इन्सान से जोड़े एक-दूसरे से धृणा करने से रोके।

कबीरने मानवतावादी की बात के बारे में भीष्म साहनी द्वारा रचित " कबीर खड़ा बाज़ार मे कृति में कहा है कि- " सुनिये साहिब में तो बीच जात का अनपढ़ जुलाहा, पर एक बात तो मैं भी समझता हूँ । जबतक किसी की नज़र में अनपढ़ जुलाहा पर एक बात तो मैं भी समझता हूँ । जब तक किसी की नज़र में एक ब्राह्मण है और दूसरा तुच्छ जब तक वह इन्सान को इन्सान नहीं समझेगा। मैं इन्सान को इन्सान के रूप में देखना चाहता हूँ ।"<sup>३२</sup>

यहाँ कबीर का धर्म निरपेक्ष, मानवतावादी, जीवन-दर्शन जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके युग में था और भविष्य में भी रहेगा। अतः कबीर के विचार कालजयी है। युग का बंधन कबीर को बाँध नहीं सकता ।

### **समन्वयवादी कबीर :**

कबीर की विचारधारा किसी एक पक्ष की और झुकी हुई नहीं है। वे समन्वयवादी हैं। उन्होंने ऊँच-नीच, जाति-पाँति, हिन्दू-मुस्लिम और सगुण-निर्गुण आदि के भेदभावों को मिटाकर ऐकेश्वरवाद एवम् विराट मानव-धर्म की स्थापना की थी। ये समन्वयवादी सन्त किसी एक प्रान्त के न होकर समस्त भारत के थे । इसीलिए ही कबीरने एक प्रान्तीय भाषा तक सीमित न रहकर सर्वमुलभ सधुक्कड़ी भाषा को अपनाया है। कबीरने भारत के विभिन्न प्रदेशों के गाँव-गाँव में घर-घर में घूमकर निम्नवर्ग के लोगों की सेवा की। ऐसा लगता है कि जैसे ये गाँवों में खुदा की तरफ से भेजे गए फरिश्ते हों ।

इससे स्पष्ट होता है कि सुधार, उपदेश, वैराग्य, अध्यात्म, आस्था और मानवता के साथ साथ समन्वय संस्थापन भी कबीर का प्रमुख कार्य या विचार संपन्न है। इन महानुभाव ने ज्ञान और प्रेम के बीच में सगुण और निर्गुण, हिन्दु-मुस्लिम, ईश्वर और अल्लाह, काबा और कैलाश, ब्राह्मण और शूद्र, साधना और श्रम तथा कथनी और करनी के मध्य समन्वय-संस्थापन का प्रयास किया था।

कबीर ज्ञानमार्गी सन्त होते हुए भी प्रेम के महात्म्य को स्वीकार किया । कबीरजीने कहा है.....

" अकथ कहानी प्रेम की, काहू कही न जाय ।

गुंगे फेरी शर्करा , खए और मुसकाय "३३

ज्ञानमार्गी सन्त ज्ञान के साथ-साथ प्रेम और भक्ति को भी महत्त्व प्रदान करते थे । इसी प्रकार उन्होंने सगुण एवम् निर्गुण का समन्वय करने का भी प्रयास किया है।

अतः इससे स्पष्ट है कि कबीर मानवतावादी सन्त होने के साथ-साथ समन्वयवादी भी थे और उनके इस दृष्टिकोण से मध्यकाल में सामाजिक व्यवस्था को बड़ी सहायता मिली हैं अतः इन महान विचारों के कारण कबीर की विचारधारा के अनुसार आज समाज के लोग जी रहे हैं।

संक्षेप में कबीर और कबीर-साहित्य पर एक दृष्टि डालने के पश्चात हम कबीर में उसकी सहानुभूति के दर्शन पाते हैं। सत्यानुभूति में उनकी अलौकिक प्रतिमाने योग दिया जिसके फल स्वरूप कबीर के दर्शन और उसके सिद्धांतों का निर्माण हुआ। कबीर का जीवन हमें प्रयोगों और प्रतिभा द्वारा श्रृंखला- सा प्रतित होता है। शाश्वत आत्मतत्त्व का कबीर की अलौकिक प्रति द्वारा गुणगान नहीं किया गया बल्कि इतिहास लिखा गया है"३३ कबीर अपने युग के एक सबल प्रतिभाशाली क्रान्तिकारी थे। कबीर एक प्रतिभासम्पन्न क्रान्तिकारी विचारक के नाते कबीरने मध्य-युग की जनता को जनहित का मार्ग सुझाया। कबीर को बहुत-सी अच्छी बातें संग्रह करने का अवसर मिला, बहुतसे ताजे विचारों को वह संग्रहित कर सके और फिर अपनी वाणी द्वारा कबीरजी ने जनता तक पहुँचाया। आत्मा और परमात्मा की जटिल ग्रन्थियों को खोलने के साथ-ही साथ कबीरने व्यक्ति के जीवन की सच्चाई पर भी विशेष बल दिया है और आचरण को आदर्श जनता के सामने रखा। कबीरजी ने हर स्थान पर मिलनेवाले ऊँच विचार को अपनाया है उसका सम्मान किया है और यही विचार वास्तव में कबीर की वाणी की वह अमूल्य सम्पत्ति है जो युग-युग तक मानव के अन्धकारपूर्ण मार्ग के प्रकाशमान करते रहेंगे।

कबीर का समस्त जीवन उनके काल की परिस्थितियों की प्रतिक्रिया है। कबीरजी के जीवन की क्रान्तिमय भावना कभी भी युगीन अन्धकारपूर्ण प्रवृत्तियों का साथ नहीं दे सकती थी। अनेकों धर्म और साधनाओं के बीच बाह्याडम्बरों और स्वार्थ की पोल देखकर कबीर तिलमिला उठे। उसकी विचारधारा सहन न कर सकी और उनके विरुद्ध कबीरजीने प्रचण्ड रोष प्रकट किया। समाज धर्म, दर्शन और सभी विचारों, प्रवृत्तियों तथा साधनों पर कबीरजी की दृष्टि गई और कबीरने सभी को अपने दृष्टिकोण से पछोर कर देखा और परखा।

अतः हम कह सकते हैं कि स्वामी प्राणनाथजी पुरुषार्थवादी थे जब कि कबीरजी अनुभववादी थे। स्वामी प्राणनाथजी के संप्रदाय में आज भी एकता का समन्वय दिखाई देता है जब कि कबीरजी अनुयायी निर्गुण पंथ में आज कबीर की मूर्ति की स्थापना करके उसकी पूजा करते हैं। जबकि कबीरजीने मूर्ति पूजा का घोर विरोध किया था। आज निर्गुण पंथ में एकता में अनेकता दिखाई देती है। निर्गुणपं के लोग आज ऊँच-नीच के भेदभाव को प्रदर्शित करते हैं। प्रणामी संप्रदायमें साधु-संत अमीर-गरीब सब एक ही साथ खाना खाने बैठते हैं और एकही साथ सब रहते हैं। वहाँ हमें अनेकता में एकता के दर्शन होते हैं।

## संदर्भ संकेत

| क्रम | पुस्तक का नाम                          | लेखक का नाम               | प्रकाशन वर्ष                            | पृ.नं. |
|------|--|---------------------------|---|--------|
| १    | निजानंद चरितामृत                       | पं. कृष्णदत्त<br>शास्त्री | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | २०२    |
| २    | महामति प्राणनाथ बन्दना                 | डॉ. प्रवीणचन्द्र<br>परीख  | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ०२     |
| ३    | महामति प्राणनाथ बन्दना                 | डॉ. प्रवीणचन्द्र<br>परीख  | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ०३     |
| ४    | महामति प्राणनाथ बन्दना                 | डॉ. प्रवीणचन्द्र<br>परीख  | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ०३     |
| ५    | महामति प्राणनाथ बन्दना                 | डॉ. प्रवीणचन्द्र<br>परीख  | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ०४     |
| ६    | महामति प्राणनाथ बन्दना                 | डॉ. प्रवीणचन्द्र<br>परीख  | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ०४     |
| ७    | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ६२, ६३ |
| ८    | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ६३     |
| ९    | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ६४     |
| १०   | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ६५     |
| ११   | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ६८     |

|    |  |   |   |    |
|----|--|---|---|----|
| १२ | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया                           | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ६८ |
| १३ | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया                           | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ६९ |
| १४ | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया                           | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ७९ |
| १५ | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया                           | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ७६ |
| १६ | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया                           | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ७७ |
| १७ | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया                           | श्री ५- नवतनीपुरी<br>धाम<br>जामनगर-२००४ | ७९ |
| १८ | महामति प्राणनाथ और<br>प्रणामी संप्रदाय | डॉ. प्रतापसिंह<br>मुखारया                           | श्री ५-नवतनीपुरीधाम<br>जामनगर-२००४      | ७९ |
| १९ | कबीर पदावली: एक<br>अध्ययन              | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन<br>पौराणा<br>देवी आर. वाला | सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय,<br>राजकोट   | १७ |
| २० | कबीर पदावली: एक<br>अध्ययन              | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन<br>पौराणा<br>देवी आर. वाला | सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय,<br>राजकोट   | १८ |
| २१ | कबीर पदावली: एक<br>अध्ययन              | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन<br>पौराणा<br>देवी आर. वाला | सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय,<br>राजकोट   | २३ |
| २२ | कबीर पदावली: एक<br>अध्ययन              | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन<br>पौराणा<br>देवी आर. वाला | सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय,<br>राजकोट   | २३ |

|    |  |   |                                       |     |
|----|--|---|---------------------------------------|-----|
| २३ | कबीर पदावली: एक अध्ययन                             | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन<br>पौराणा<br>देवी आर. वाला | सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय,<br>राजकोट | ०४  |
| २४ | कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना       | डॉ. सुनील<br>कुलकर्णी                               | कानपुर-२००७                           | १३५ |
| २५ | कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना       | डॉ. सुनील<br>कुलकर्णी                               | कानपुर-२००७                           | १३५ |
| २६ | कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना       | डॉ. सुनील<br>कुलकर्णी                               | कानपुर-२००७                           | १४१ |
| २७ | स्वामी प्राणनाथ एवं गुरुनानक : एक तुलनात्मक अध्ययन | डॉ.सुधा पौराणा<br>हिन्दी विभाग,<br>राजकोट           | ईलाहाबाद-२००८                         | २४२ |
| २८ | कबीर पदावली: एक अध्ययन                             | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन<br>पौराणा<br>देवी आर. वाला | सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय,<br>राजकोट | १७  |
| २९ | कबीर पदावली: एक अध्ययन                             | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन<br>पौराणा<br>देवी आर. वाला | सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय,<br>राजकोट | १७  |
| ३० | कबीर पदावली: एक अध्ययन                             | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन<br>पौराणा<br>देवी आर. वाला | सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय,<br>राजकोट | ३०  |
| ३१ | कबीर पदावली: एक अध्ययन                             | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन<br>पौराणा<br>देवी आर. वाला | सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय,<br>राजकोट | ३०  |
| ३२ | कबीर पदावली: एक अध्ययन                             | निर्देशिका<br>डॉ.सुधाबहन<br>पौराणा<br>देवी आर. वाला | सौराष्ट्र<br>विश्वविद्यालय,<br>राजकोट | ३०  |
| ३३ | कबीर साहित्य और सिद्धांत                           | यक्षदत्त शर्मा                                      | दिल्ली-२००२                           | १०४ |

## परिशिष्ट-१

### आधारग्रन्थ

#### १. स्वामी प्राणनाथजी के ग्रन्थों का अनुक्रम

##### क्रमांक पुस्तक का नाम

१. श्री रास
२. श्रीप्रकाश
३. श्री षट्‌रितु
४. श्री कलश
५. श्री सनन्ध
६. श्री किरनतन
७. श्री खुलासा
८. श्री खिलवत
९. श्री परिक्रमा
१०. श्री सागर
११. श्री सिंगार
१२. श्री सिन्धी
१३. श्री मारकतसागर
१४. श्री कयामतनामा

#### २. कबीर के ग्रंथों का अनुक्रम

##### क्रमांक पुस्तक का नाम

१. कबीर ग्रन्थज्ञावली
२. बीजक
३. शब्द
४. रमैनी
५. कबीरवाणी

**परिशिष्ट-२**  
**संदर्भग्रन्थ - हिन्दी**

| क्रमांक | पुस्तक का नाम                                   | लेखक  | संस्करण  |
|---------|---|---|----------|
| १.      | श्री प्राणनाथजी और उनका साहित्य                 | डॉ. राजबाला<br>सिडाना, जामनगर                 | सं. १९६९ |
| २.      | निजानन्द चरितामृत                               | पं. कृष्णदत्त शास्त्री<br>जामनगर              | सं. १९९६ |
| ३.      | प्रणामी धर्म                                    | पं. कृष्णदत्त शास्त्री<br>सं.ओमप्रकाश सक्सेना | १९७७     |
| ४.      | महामति प्राणनाथ प्रेरित<br>कृष्णप्रणामी पाङ्मय  | डॉ. सूचित नारायण<br>प्रसाद                    | १९८७     |
| ५.      | महामति प्राणनाथ मनीषा                           | डॉ. वीणा भगत                                  | १९६६     |
| ६.      | संतश्री प्राणनाथ एक अध्ययन                      | डॉ. हसुता सेदाणी                              | १९९२     |
| ७.      | श्री निजानन्द दर्शन                             | डॉ. बुद्धिप्रकाश बाजपेयी                      | १९८२     |
| ८.      | प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य                   | डॉ.नरेश पंड्या                                | १९७२     |
| ९.      | स्वामी प्राणनाथ और गुरुनानक<br>तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सुधाबहन सी.<br>पौराणा                     | २००८     |
| १०.     | विचार विथिका                                    | डॉ. सुधाबहन सी.<br>पौराणा                     | २००९     |
| ११.     | महामति प्राणनाथ और प्रणामी<br>संप्रदाय          | डॉ. पी.एस. मुखरया                             | २०६२     |
| १२.     | सद्गुरु कबीर सचित्र जीवनदर्शन                   | महंत जगदीश दासजी<br>शास्त्री, जामनगर          | २००७     |
| १३.     | श्री सद्गुरु कबीर जीवन चरित्र                   | महंत जगदीश दासजी<br>शास्त्री, जामनगर          | २००९     |



|     |                                   |   |          |
|-----|-----------------------------------|---|----------|
| १४. | श्री कबीरस्वामी की अमृतवाणी       | स्वामी श्री ब्रह्मलीन मुनि                      | सने १९७२ |
| १५. | हसारे को गही रहे, थोथा देई उड़ाय' | महेता   |          |
| १६. | कबीर साहेब की साखियाँ             | शरद चन्द्रकान्त महेता<br>अशोक चन्द्रकान्त महेता | २००४     |
| १७. | कबीर समग्र                        | डॉ. युगेश्वर                                    | १९६१     |
| १८. | कबीर साहित्य की परख               | इलाहबाद   | २०२१     |
| १९. | कबीर का रहस्यवाद                  | डॉ. रामकुमार वर्मा                              | १९७२     |
| २०. | कबीर की भाषा                      | माता बदल जारचाल                                 | १९६५     |
| २१. | कबीर वचनामृत                      | सं.डॉ. विजयेन्द्र स्नातक                        | १९९१     |

### अंग्रेजी

|   |  |                     |                                |      |
|---|--|---------------------|--------------------------------|------|
| 1 | Discovery of India                     | Jawaharlal Nehru    | Asian Publishing House, Bombay | 1969 |
| 2 | Economic History of India              | T.B. Desai : Vord   | Publishers Pvt.Ltd., Bombay    | 1969 |
| 3 | The Contemporary Schools of Psychology | Roberts Wood Worths | Asia Publishing House, Bombay  | 1961 |
| 4 | The story of Indian Revolution         |                     | Allied Publishers, Calcutta    |      |

## पत्रपत्रिकाएँ :

- (१) हिन्दुस्तान जवान (त्रैमासिक) – संपादक डॉ. सुशीला गुप्ता
- (२) हंस संपादक : राजेन्द्र यादव, दिल्ली
- (३) शब्द शिखर – साहित्यिक संस्कृति संस्थान, फैजाबाद
- (४) दैनिक – गुजरात समाचार – राजकोट
- (५) दैनिक – गुजरात समाचार, राजकोट
- (६) दैनिक – दिव्यभास्कर, राजकोट
- (७) दैनिक – जय हिन्द, राजकोट